HSC-102

बाल विकास

Child Development

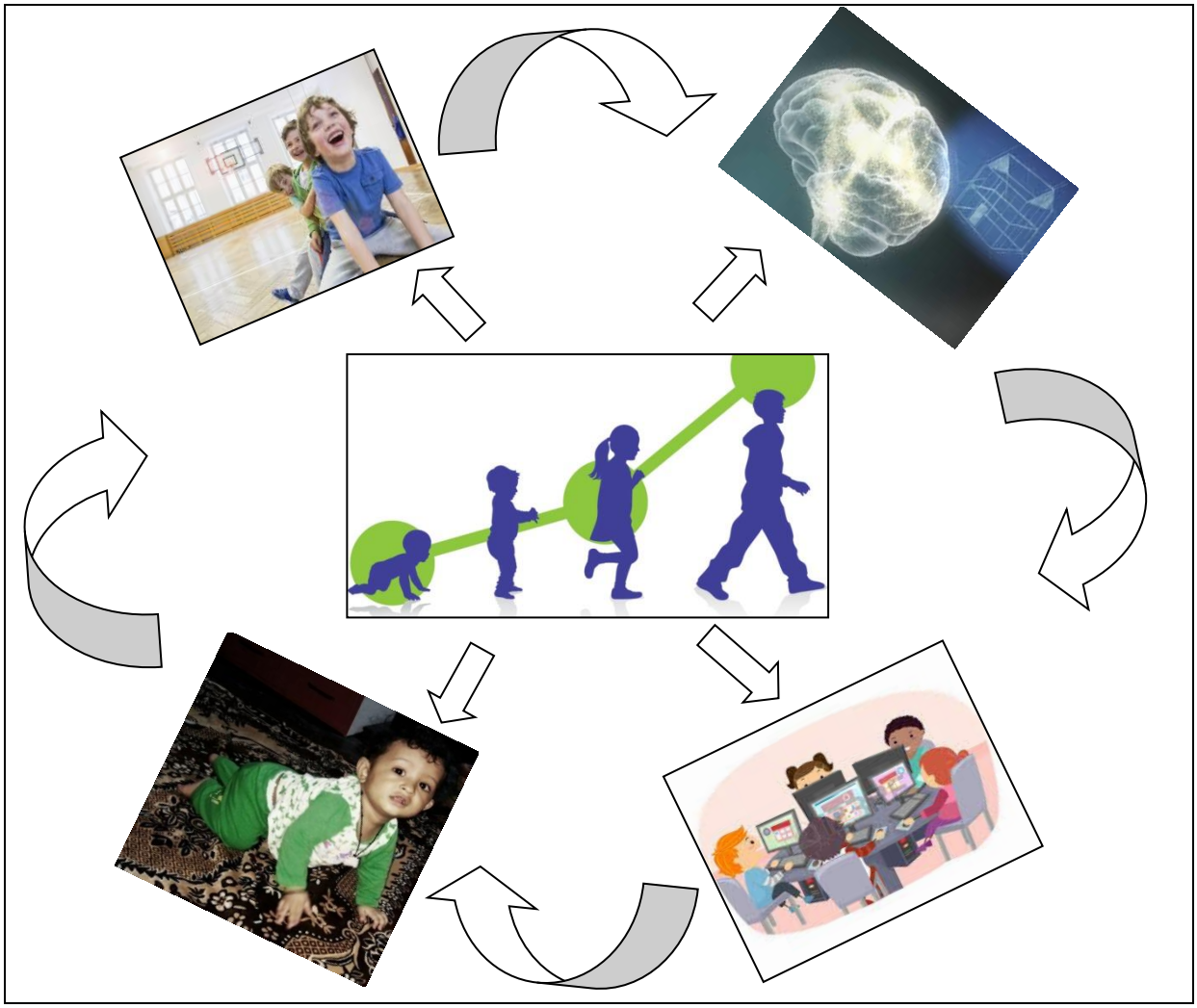

स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

HSC-102

बाल विकास

Child Development

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाई पास रोड, ट्रांसपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139

फोन नं. 05946- 261122, 261123

टोल फ्री नं. 18001804025

फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड			
प्रोफेसर आर0 सी0 मिश्र निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर रीता एस0 रघुवंशी अधिष्ठाता, गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर लता पाण्डे विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	डा0 हिना के0 बिजली सह- प्राध्यापक, सामुदायिक संसाधन प्रबंधन एवं विस्तार सतत शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी**,** उत्तराखण्ड			

पाठ्यक्रम संयोजन, संपादन एवं अनुवादन	
डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी**,** उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी**,** उत्तराखण्ड

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**
डॉ0 अर्चना शाह विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग हेमवंती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय एस0आर0टी0 कैम्पस, बादशाही थौल टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड	1, 3, 4	डॉ0 अनुपमा पाण्डे सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान प्रसार विभाग गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड	5,6
डॉ0 शुभ्रा रॉय पूर्व संविदा शिक्षक, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	8, 9, 10	सुश्री प्रांजलि देव परामर्शदाता, बाल विकास विभाग सतत शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली उत्तराखण्ड	2, 11, 12, 13
सुश्री नेहा शर्मा पूर्व परामर्शदाता, बाल विकास विभाग सतत शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली उत्तराखण्ड	**7**		

ISBN- 978-93-85740-50-3

समस्त लेखों/पाठों से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद के लिए जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कॉपीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय **प्रकाशन वर्ष: 2016**

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139 (नैनीताल)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

बाल विकास

Child Development

HSC-102

खण्ड	इकाई	पृष्ठ संख्या
1 मानव विकासात्मक मनोविज्ञान	इकाई 1: बाल विकास के सिद्धान्त	2-13
	इकाई 2: व्यवहारात्मक मनोविज्ञान	14-32
2 गर्भावस्था में विकास	इकाई 3: वृद्धि एवं विकास	34-49
	इकाई 4: गर्भावस्था में देखभाल	50-68
	इकाई 5: गर्भस्थ शिशु का विकास	69-101
3 शैशवावस्था	इकाई 6: शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास	103-133
	इकाई 7: संज्ञानात्मक विकास	134-148
	इकाई 8: भाषा विकास	149-162
	इकाई 9: सामाजिक विकास	163-177
	इकाई 10: संवेगात्मक विकास	178-195
4 पूर्व बाल्यावस्था	इकाई 11: शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास	197-214
	इकाई 12: संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास	215-236
	इकाई 13: सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास	237-253

खण्ड 1

मानव विकासात्मक मनोविज्ञान

इकाई 1: मानव विकास के सिद्धान्त

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मानव विकास के अध्ययन की विधियाँ
1.4 व्यवहार का वैज्ञानिक रूप में अध्ययन
  1.4.1 गैर प्रयोगात्मक विधि
  1.4.2 प्रयोगात्मक विधि
  1.4.3 स्वतंत्र एवं आश्रित चर
1.5 प्राकृतिक अध्ययन
1.6 नैदानिक अध्ययन
1.7 समकालीन एवं दीर्घकालीन अध्ययन प्रणालियाँ
1.8 मानवीय विषयों का अध्ययन करने में नैतिक मनन
1.9 सारांश
1.10 पारिभाषिक शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ सूची

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई के बाद आप मानव विकास के विभिन्न सिद्धांतों को समझ सकेंगे। मानव जीवन के विभिन्न स्तरों पर विकास के अध्ययन के लिए कई विधियां हैं। इसके अलावा कई वैज्ञानिक विधियां हैं जिनसे मानव व्यवहार में परिवर्तन का अध्ययन कर सकते हैं। इस इकाई में आप इन सभी विधियों के सम्बन्ध में विस्तार से पढेंगे। इस इकाई को पूरा करने के पश्चात आप उन नैतिक मुद्दों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे जिन्हें मानव जीवन में विकासात्मक परिवर्तनों के अध्ययन के समय ध्यान में रखना आवश्यक है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप निम्न को समझने में समर्थ होंगे:

- मानव विकास के अध्ययन की प्रमुख विधियां;

- वैज्ञानिक दृष्टि से मानव व्यवहार के अध्ययन के मुख्य स्तर;
- मानव विकास के अध्ययन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के अध्ययनों एवं अनुसंधान योजनाओं से परिचय;
- मानव अध्ययन के समय नैतिक मूल्यों के महत्व के सम्बन्ध में जानकारी; तथा

सबसे पहले हम मानव विकास के अध्ययन की विधियों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

1.3 मानव विकास के अध्ययन की विधियाँ

शोधकर्ता बाल विकास के सम्बन्ध में डेटा एकत्रित करने हेतु विभिन्न प्रकार की तकनीकों का प्रयोग करते हैं। आगे विभिन्न शोध विधियों का वर्णन है जो मानव विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करने में प्रयोग में लायी जाती हैं। आइये अब उन विधियों के बारे में पढ़ते हैं।

डेटा एकत्रित करने की तकनीकें

शोधकर्ता बुजुर्ग लोगों के समायोजन के तरीकों, किशोरों में युवावस्था के परिवर्तनों, उत्तर बाल्यावस्था के खेल, पूर्व बाल्यावस्था के दौरान सामाजिक व्यवहार आदि के अध्ययन में दिलचस्पी रख सकते हैं। इन सभी के लिए डाटा एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग कर सकते हैं:

I. अवलोकन

जब भी और जहां भी हों वहाँ पर ही गतिविधियों की व्यवस्थित रिकार्डिंग ही अवलोकन कहलाती है। शोधकर्ता वैज्ञानिक अवलोकन हेतु अपने विशिष्ट कौशल का प्रयोग करते हैं जो उन्होंने ट्रेनिंग द्वारा प्राप्त किया है तथा निरंतर अभ्यास से उसे और परिष्कृत कर लिया है। यह महत्वपूर्ण कौशल ही उन्हें बताते हैं कि क्या देखना है, जो देखा है उसे याद रखना, गतिविधि में आने वाले परिवर्तन को समझना तथा अपने अवलोकन का प्रभावी रूप से संचार करना आदि।

अवलोकन करने से पूर्व शोधकर्ता को निम्नलिखित मुद्दों के सम्बन्ध में स्पष्ट होना चाहिए :

- अवलोकन की जाने वाली गतिविधि की जानकारी अर्थात ये जानना कि वे क्या देखना चाहते हैं।
- व्यक्ति की पहचान (शैशवावस्था, उत्तर बाल्यावस्था, किशोरावस्था या वयस्क), अर्थात ये जानना कि वो किसे देख रहे हैं।
- अवलोकन का समय अर्थात अवलोकन कब किया जाए।
- अवलोकन का स्थान (प्रयोगशाला, वास्तविक दुनिया में स्थापित स्थान जैसे डे-केयर सेंटर, खेल के मैदान, कक्षाएं, सामाजिक मेल-जोल के स्थान आदि), अर्थात अवलोकन कहाँ किया जाए।

- अवलोकन को रिकॉर्ड करने की विधि (लिखकर, टेप रिकार्डिंग या वीडियो आदि) अर्थात अवलोकन कैसे किया जाए।

II. साक्षात्कार एवं सर्वेक्षण

इन दोनों विधियों में जिस गतिविधि का अध्ययन करना है, लोगों से उस सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करने के लिए कुछ प्रश्न तैयार किए जाते हैं। कभी-कभी ये जानकारी एकत्रित करने का सबसे अच्छा तथा तेज तरीका होता है। ये दोनों तकनीकें माता-पिता के अनुशासन की तकनीकों से लेकर विभिन्न उम्र के बच्चों द्वारा प्रयोग की जा रही अंकीय प्रौद्योगिकी तक के विषयों के विस्तृत क्षेत्र के अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं।

साक्षात्कार तथा सर्वेक्षण विधियों के कुछ गुण एक समान हैं। उदाहरण के लिए दोनों में व्यक्ति से फोन द्वारा या इंटरनेट द्वारा संपर्क किया जा सकता है। दोनों में ही दो प्रकार के प्रश्न हो सकते हैं, संरचित और असंरचित (structured & unstructured)। संरचित प्रकार के प्रश्नों में प्रत्येक प्रतिवादी की भिन्न प्रतिक्रिया होती है। असंरचित प्रश्नों के प्रकार में प्रतिवादी को दिए गए विकल्पों या प्रतिक्रियाओं में एक को चुनना होता है।

साक्षात्कार तथा सर्वेक्षण विधियों में प्रमुख अंतर यह है कि साक्षात्कार विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब एक समय में एक या दो व्यक्तियों से सूचना एकत्रित करनी होती है। दूसरी ओर सर्वेक्षण विधि मुख्य रूप से तब मत्वपूर्ण होती है जब बहुत सारे व्यक्तियों से एक साथ जानकारी लेनी होती है। इस विधि में एक साधन प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है जो कि सावधानीपूर्वक बनाए गए प्रश्नों का एक समूह होता है जिसमें प्रश्न साफ़, निष्पक्ष तथा स्पष्ट होते हैं।

इन दोनों की उपयोगिता के अतिरिक्त इनकी कुछ एक समान कमियां भी हैं। जैसे कई बार प्रतिवादी अपनी वास्तविक भावना को बताने के बजाय वह उत्तर या प्रतिक्रिया देते हैं जिसका उन्हें विश्वास होताहै कि वह सामाजिक रूप से स्वीकार्य है या समाज में वांछनीय है। उदाहरणार्थ जब किसी किशोर से यह पूछा जाए कि क्या वह नशा करता है तो वह सच को छुपा सकता है तथा उसका जवाब नहीं हो सकता है जबकि वास्तव में वह नशा करता होगा क्योंकि नशा करने वाले को समाज स्वीकार नहीं करता।

III. मानकीकृत परीक्षण

ये डेटा एकत्र करने की दूसरी विधि है जिसमें मानकीकृत परीक्षणों द्वारा मानव विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे बुद्धि, अनुभूति, रचनात्मकता, मनोभाव तथा तर्क से बुद्धि को मापा जा सकता है तथा तुलना की जा सकती है। परन्तु मानकीकृत परीक्षणों के बहुत नुकसान भी हैं, अत: इन परीक्षणों को सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

IV. केस स्टडी

डेटा एकत्र करने की इस विधि में व्यक्ति विशेष का गहराई से अध्ययन किया जाता है। इस विधि से हमें व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं, विश्वासों, ड़र, आशाओं, दर्दनाक अनुभवों, संबंधों, स्वास्थ्य तथा मानव जीवन के अन्य पहलुओं के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। ये डेटा हमें व्यक्ति के मन एवं व्यवहार को समझने में मदद करता है।

अभी तक हमने मानव विकास के अध्ययन की सामान्य विधियों के सम्बन्ध में पढ़ा, अब हम मानव विकास के अध्ययन हेतु प्रचलित कुछ वैज्ञानिक विधियों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

1.4 व्यवहार का वैज्ञानिक रूप में अध्ययन

यदि अध्ययन करने के लिए इस्तेमाल किया दृष्टिकोण वैज्ञानिक है तो व्यवहार का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जा सकता है। हम वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कुछ प्रमुख मुद्दों जैसे माता-पिता अपने बच्चों का पालन पोषण किस प्रकार करते हैं, बच्चा अपने साथियों से किस प्रकार बातचीत करता है, बच्चे की सोच, सीखने की प्रवृत्ति आदि में टी. वी. देखने से आए तथा बच्चे के खेलों में आए विकास परिवर्तनों का अध्ययन करने में कर सकते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे वैज्ञानिक विधि का प्रयोग यह जानने में करते हैं कि गुरुत्वाकर्षण किस प्रकार कार्य करता है या फिर किसी यौगिक की आण्विक संरचना।

विकास मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विधियों का प्रयोग बच्चों का अध्ययन करने किया जाता है। ये विधियां अनिवार्य रूप से वही विधियां होती हैं जो वैज्ञानिकों या शोधकर्ताओं द्वारा प्रकृति विज्ञान में प्रयोग की जाती हैं। किसी भी जानकारी को स्वीकार करने से पूर्व शोधकर्ता इस बात की जांच कर लेते हैं कि वह जानकारी एक अच्छे शोध से प्राप्त हुई है या नहीं। वैज्ञानिक शोध वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित तथा परीक्षण योग्य होते हैं। यह वैज्ञानिक विधियों पर आधारित होते हैं। सटीक जानकारी प्राप्त करने के लिए या किसी भी समस्या या मुद्दे का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा इस्तेमाल किया गया दृष्टिकोण वैज्ञानिक विधि कहलाता है। वैज्ञानिक विधि द्वारा अध्ययन के प्रमुख चरण निम्न हैं:

1. समस्या की अवधारणा

अध्ययन का प्रथम चरण है समस्या को समझना जिसमें समस्या के सामान्य विवरण के स्थान पर उसे विशिष्ट रूप से परिभाषित करके समस्या की पहचान की जाती है। ऐसा करने के लिए शोधकर्ता सिद्धांतों को ठीक प्रकार से समझते हैं तथा परिकल्पना तैयार करते हैं। सिद्धांत, कथनों का एक समूह होता है जो व्यवहार और उसे प्रभावित करने वाले कारकों के मध्य सम्बन्ध का वर्णन करता है। वह कथन जो इस सम्बन्ध को सिद्ध करता है, परिकल्पना कहलाता है। एक शोध अध्ययन आमतौर पर शोधकर्ता की परिकल्पना की जांच हेतु किया जाता है कि संसार में उपस्थित कोई विशिष्ट कारक किसी व्यवहार को कितना प्रभावित करता है। अच्छा शोध एक अंतर्निहित सिद्धांत द्वारा निर्देशित होता है।

2. आंकड़े एकत्रित करना

आंकड़े एकत्रित करने हेतु शोध समस्या के अनुरूप विशिष्ट एवं विभिन्न तकनीकों का प्रयोग किया जाता है जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली आदि। इन सभी तकनीकों के बारे में हम आने वाले अध्यायों में पढ़ेंगे।

3. निष्कर्ष

तीसरा चरण एकत्रित किए गए आंकड़ों का अर्थ समझना, उनका विश्लेषण करना तथा उसमें से निष्कर्ष निकालना है। यह सब एकत्रित किए गए आंकड़ों पर सांख्यिकी के प्रयोग द्वारा किया जाता है। इसके बाद शोधकर्ता अपनी खोज की तुलना उसी विषय पर दूसरों द्वारा की गयी खोजों से करता है।

4. शोध के सिद्धांत एवं निष्कर्ष में संशोधन

यह वैज्ञानिक विधि का अंतिम चरण है। इस चरण में प्राप्त निष्कर्ष की ठीक प्रकार से जांच की जाती है और यदि कोई संशोधन आवश्यक लगता है तो वह उसमें किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक शोध में इन चरणों के बाद एक महत्वपूर्ण विशेषता वस्तुनिष्ठता आती है जिसकी आवश्यकता होती है कि खोज का विषय एवं तरीका सिद्धांत के अनुसार होना चाहिए जिसमें सबकी सहमति हो। आसान शब्दों में कहा जाए तो अध्ययन इस प्रकार का होना चाहिए कि यदि आवश्यकता हो तो किसी अन्य शोधकर्ता द्वारा वही शोध उसी तरीके से करके उसकी प्रतिकृति बनायी जा सकती हो।

शोध की वस्तुनिष्ठता विभिन्न तरीकों से प्राप्त की जा सकती है। इसमें पहला तरीका है निरीक्षण किए जा रहे व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करना। दूसरा तरीका है यह देखना कि अध्ययन के अंतर्गत निरीक्षण किया जा रहा व्यवहार मापने योग्य है या नहीं। इसके अतिरिक्त शोध की वस्तुनिष्ठता बनाए रखने का एक तरीका यह भी है कि शोध में सब कुछ मात्रात्मक हो या मापने योग्य हो।

अब हम प्रयोगात्मक तथा गैर प्रयोगात्मक विधियों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

1.4.1 गैर प्रयोगात्मक विधि

गैर प्रयोगात्मक विधि दो प्रकार की हो सकती हैं:

वर्णनात्मक शोध विधि: इस प्रकार की विधि में केवल व्यवहार का अवलोकन कर उसे रिकॉर्ड किया जाता है। शोधकर्ता अवलोकन किए गए व्यवहार तथा अन्य कारकों के मध्य सम्बन्ध की पहचान करने की कोशिश नहीं करता है। वर्णनात्मक शोध विधि हेतु आंकड़े एकत्रित करने के लिए विभिन्न विधियों जैसे अवलोकन, सर्वेक्षण, साक्षात्कार, मानकीकृत परीक्षण तथा व्यक्ति अध्ययन आदि का प्रयोग किया जाता है। वर्णनात्मक शोध विधि द्वारा व्यक्ति के बारे में बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि इस विधि के द्वारा हमें उन विभिन्न कारकों के सम्बन्ध में पता

लगता है जिससे कोई व्यवहार या घटना होती है किन्तु ये विधि उसे निश्चितता से प्रमाणित नहीं करती है।

सह सम्बंधित शोध विधि: यह विधि केवल व्यवहार या घटना के वर्णन पर खत्म नहीं होती है। यह विधि हमें यह अनुमान लगाने में भी मदद करती है कि व्यक्ति कैसा व्यवहार या प्रतिक्रिया करेगा। यह विधि यह भी जांच करने में उपयोगी है कि क्या कोई दो या अधिक घटनाएं या विशेषताएं आपस में सम्बंधित हैं और यदि हैं तो यह सम्बन्ध कितना मजबूत है। यह सह सम्बन्ध जितना मजबूत होगा एक घटना से दूसरी घटना का अनुमान लगाना उतना ही प्रभावी होगा। सहसंबंध एक कथन है जो यह बताता है कि किस तरह दो कारक आपस में सम्बंधित हैं। सह सम्बंधित शोध से तीन प्रकार के संबंधों का पता लगता है जो निम्न प्रकार हैं:

- **धनात्मक सहसंबंध**: इस प्रकार के सम्बन्ध में दोनों कारक एक ही दिशा में बदलते हैं। अर्थात जब एक कारक घटता या बढ़ता है तो दूसरा कारक भी उसी क्रम में परिवर्तित होता है। उदाहरणार्थ आयु तथा लम्बाई दो ऐसे ही कारक हो सकते हैं जो आपस में धनात्मक सह सम्बन्ध रखते हैं। जब बच्चे की आयु बढ़ती है तो सामान्यतया उसकी लम्बाई भी बढ़ती है।
- **ऋणात्मक सहसंबंध**: इस प्रकार के सम्बन्ध में कारक एक दूसरे से उल्टी दिशा में परिवर्तित होते हैं। अत: यदि एक कारक बढ़ेगा दो दूसरा घटेगा। उदाहरण के लिए बच्चे की आयु तथा उसके द्वारा घर पर बिताया जाने वाला समय ऐसे कारक हो सकते हैं। बच्चे की आयु बढ़ने के साथ सामान्यतया उसका घर पर बिताया जाने वाला समय कम होता जाता है।
- **तीसरे प्रकार के सहसंबंध** में दो कारक आपस में सम्बंधित नहीं होते हैं तथा उनका आपस में कोई सहसंबंध नहीं होता है। उदाहरणार्थ बच्चे की लम्बाई का उसकी कक्षा में उपस्थित कुल बच्चों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है अत: ये इसी प्रकार के सहसंबंध को प्रदर्शित करते हैं।

गैर-प्रयोगात्मक विधियों को पढ़ने के पश्चात अब हम प्रयोगात्मक विधियों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

1.4.2 प्रायोगिक विधि

प्रयोग एक सावधानीपूर्वक निर्मित और नियंत्रित प्रक्रिया है जिसमें उस कारक में परिवर्तन किए जाते हैं जिससे व्यवहार को प्रभावित करने की अपेक्षा की जाती है तथा अन्य सभी कारकों को स्थिर रखा जाता है। प्रायोगिक विधि कारण तथा प्रभाव समझाने में मदद करती है। जब एक कारक में परिवर्तन किए जाते हैं तथा अवलोकित व्यवहार बदल जाता है तो यह कहा जाता है कि परिवर्तित कारक कारण है तथा बदला हुआ व्यवहार प्रभाव है। प्रायोगिक शोध में शोधकर्ता कारण तथा प्रभाव के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकाल सकता है। यह एक शक्तिशाली वैज्ञानिक साधन है जो ना केवल कारण तथा प्रभाव के सम्बन्ध को प्रकट करता है बल्कि इसे कई प्रकार की समस्याओं तथा समायोजनों के लिए लागू किया जा सकता है। प्रायोगिक शोध सामान्यतया प्रयोगशालाओं में किए जाते हैं जहां परिस्थितियों को सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जाता है तथा उनकी जांच की जाती है। प्रायोगिक

शोध प्राकृतिक परिस्थितियों में भी किए जाते हैं जहां पर बच्चे का व्यवहार अधिक स्वाभाविक होता है जैसे खेल का मैदान, कक्षा, घर आदि। आगे हम शोध अध्ययनों में प्रयोग होने वाले चरों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे। चर वह गुण है जिसके एक ही पैमाने पर विभिन्न मूल्य हो सकते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं:

1.4.3 स्वतन्त्र एवं आश्रित चर

स्वतन्त्र चर

स्वतन्त्र चर वह कारक हैं जिसे शोधकर्ता उसके प्रभाव को जानने तथा किसी निरीक्षित घटना से सम्बंधित करने के लिए घटाता या बढ़ाता है।

आश्रित चर

यह वह कारक है जो प्रयोग द्वारा स्वतंत्र चर के प्रदर्शन पर प्रदर्शित हो अर्थात स्वतंत्र चर को हटाने पर हट जाए या उसमें परिवर्तन करने पर खुद भी परिवर्तित हो जाए। अत: शोधकर्ता किसी प्रभाव या प्रतिक्रिया को देखने के लिए स्वतन्त्र चर में परिवर्तन कर आश्रित चर का अवलोकन करते हैं।

प्रायोगिक विधि में शोधकर्ता उपकल्पना के परीक्षण हेतु स्वतन्त्र चर में परिवर्तन करते हैं तथा उसके प्रभाव को आश्रित चर में देखते हैं। उपकल्पना दो या दो से अधिक कारकों के मध्य अनुमानित सम्बन्ध है जिनका परीक्षण प्रायोगिक अन्वेषण के दौरान किया जाता है।

कभी-कभी प्रायोगिक शोध विधि में दो अध्ययन समूह होते हैं, प्रायोगिक समूह तथा नियंत्रित समूह। प्रायोगिक समूह वह समूह होता है जिसमें स्वतन्त्र चरों में परिवर्तन करके तथा उसके प्रभाव को आश्रित चरों में देखकर उनके अनुभवों को घटाया या बढ़ाया जा सकता है। एक नियंत्रित समूह वह होता है जो हर प्रकार से प्रायोगिक समूह के समान होता है लेकिन केवल एक भिन्नता होती है कि नियंत्रित समूह में प्रायोगिक समूह की भांति स्वतंत्र चर को परिवर्तित नहीं कर सकते। इन दोनों समूहों की सहायता से दो कारकों के मध्य तुलना, प्रतिपादन तथा कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध को प्रमाण के साथ साबित किया जा सकता है।

1.5 प्राकृतिक अध्ययन

प्राकृतिक अध्ययन स्पष्ट तथा सरल अवलोकन पर निर्भर करता है। शोधकर्ता बच्चे को प्राकृतिक परिस्थिति या वास्तविक परिस्थिति में देखता है जिससे उसे प्रायोगिक फेरबदल कर व्यवहार में परिवर्तन करने का प्रयास ना करना पड़े। शोधकर्ता प्राकृतिक अध्ययन घर, डे केयर सेंटर, स्कूल, खेल के मैदान या अस्पताल में कर सकता है। प्राकृतिक अध्ययन हमें सामान्य सूचनाएं या उस व्यवहार की जानकारी देता है जो सामान्य रूप से सभी बच्चों द्वारा किया जाता है। यह आंकड़े व्यक्ति समूह के औसत पर या फिर व्यक्ति विशेष के इतिहास पर आधारित होते हैं।

प्राकृतिक अध्ययन के निम्न प्रकार होते हैं :

1. **बच्चे का चरित्र लेख**: इस विधि से बहुत उपयोगी और गहरी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। मुख्य रूप से सामान्य विकास से सम्बंधित जानकारियाँ। इस विधि द्वारा हमें प्रत्येक बच्चे के व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी कुछ कमियां भी सामने आती हैं जैसे अक्सर इसमें व्यवहार को केवल रिकॉर्ड किया जाता है, उसकी व्याख्या नहीं की जाती। यह रिकॉर्डिंग अक्सर माता-पिता द्वारा की जाती है जो पर्यवेक्षक पूर्वाग्रह या पक्षपात पूर्ण व्यवहार से प्रभावित हो सकते हैं जिसमे वो बच्चे के केवल सकारात्मक पहलुओं पर जोर देते हैं तथा नकारात्मक को रिकॉर्ड नहीं करते। इसके अतिरिक्त यह विधि एक बच्चे के सम्बन्ध में बहुत जानकारी देती है लेकिन क्योंकि प्रत्येक बच्चे की अपनी अलग विशेषता होती है अत: एक बच्चे से प्राप्त जानकारी को सभी बच्चों पर लागू नहीं कर सकते।
2. **प्राकृतिक अवलोकन**: प्राकृतिक अवलोकन करने के लिए शोधकर्ता बहुत सारे बच्चों का अवलोकन करता है तथा विभिन्न आयु वर्ग में उनके विकास से सम्बंधित जानकारियों को रिकॉर्ड करता है जिससे कि विभिन्न कौशल, व्यवहार, तथा वृद्धि के दिखायी देने की औसत आयु का पता लग सके। इस विधि में शोधकर्ता ना तो प्रायोगिक परिवर्तन करता है और न ही व्यवहार का वर्णन करने का प्रयास करता है।
3. **समय प्रतिदर्श विधि**: इस विधि में शोधकर्ता दिए गए समय में एक निश्चित प्रकार के व्यवहार के प्रकट होने को रिकॉर्ड करते हैं जैसे गुस्सा करना, बबलाना या रोना आदि। उदाहरणार्थ पिता-शिशु संबंधों का अध्ययन करने के क्रम में शोधकर्ता 24 घंटे का टेप बनाने के लिए छह अलग-अलग मौकों पर दस घरों पर जाते हैं तथा वह प्रत्येक 24 घंटे की अवधि में पिता अपने बच्चे से बात करने में कितने मिनट खर्च करता है उनकी संख्या गिनने के लिए टेप का विश्लेषण करते हैं।

1.6 नैदानिक अध्ययन

नैदानिक अध्ययन निम्न दो विधियों द्वारा किया जाता है:

a) नैदानिक विधि

इस विधि में शोधकर्ता अवलोकन को सावधानीपूर्वक पूछे गए व्यक्तिगत प्रश्नों के साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं। यह विचारों को मापने का एक लचीला तरीका है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न प्रश्न बनाए जाते हैं जिससे एक व्यक्ति से पूछे गए प्रश्न दूसरे व्यक्ति से उसी प्रकार से ना पूछे जाएँ। यह एक खुली तथा व्यक्तिगत विधि है जो प्रयोगकर्ता को यह अनुमति देती है कि वह बच्चे की उन प्रतिक्रियाओं को उसमें शामिल कर सके जो रोचक दिखायी देती हैं, ऐसी भाषा का प्रयोग कर सके जिसे प्रत्येक व्यक्ति समझ सके या उस भाषा में परिवर्तित कर सके जिसका प्रयोग बच्चा अनायास ही कर देता है।

b) साक्षात्कार विधि

इस विधि में अध्ययन के प्रतिभागियों तथा शोधकर्ता के मध्य आमने-सामने बातचीत होती है तथा शोधकर्ता प्रतिभागी से कई पूर्वनिर्धारित प्रश्न पूछता है। उदाहरणार्थ एक मध्यमवर्गीय महिला से बच्चे के पालन पोषण, भोजन, शौच प्रशिक्षण तथा अनुशासन आदि से सम्बंधित प्रश्न पूछे जा सकते हैं। कभी-कभी साक्षात्कार को अन्य परीक्षण विधियों के साथ जोड़कर भी प्रयोग किया जाता है जैसे शारीरिक परीक्षण (बच्चे का वजन तथा लम्बाई मापना) तथा मानक परीक्षण (बुद्धि मापना, रचनात्मकता तथा व्यक्तित्व की जांच) आदि।

1.7 समकालीन एवं दीर्घकालीन अध्ययन प्रणालियाँ

कभी-कभी शोधकर्ता यह जानने में उत्सुक होता है कि बच्चे का व्यवहार हर आयु क्रम में परिवर्तित क्यों होता रहता है। उदाहरण के लिए वह यह बताने में भी रुचि रख सकते हैं कि विकास के दौरान अर्थात नवजात अवस्था से किशोरावस्था तक बच्चे की भाषा का विकास किस प्रकार होता है? दूसरी ओर शोधकर्ता यह भी जानना चाह सकता है कि किसी व्यवहार का क्या कारण हो सकता है जैसे बच्चे की शैक्षिक उपलब्धि पर मातृ रोजगार का प्रभाव। इस प्रकार के शोधों के लिए दो प्रकार की शोध विधियां उपलब्ध हैं, दीर्घकालीन अध्ययन प्रणाली एवं समकालीन अध्ययन प्रणाली ।

दीर्घकालीन अध्ययन प्रणाली

यह विभिन्न आयुक्रमों में बच्चों के व्यवहार का अध्ययन करने की पद्धति है। इस शोध विधि में बार-बार एक ही व्यक्ति का लंबे समय तक अध्ययन किया जाता है, कई बार सालों तक। इसलिए यह विधि शोधकर्ता को यह जानने में सहायता करती है कि किस प्रकार उम्र बढ़ने के साथ विशिष्ट गुण (जैसे खेलना, भाषा, सामाजिक, नैतिक, शारीरिक तथा भावनात्मक आदि) परिवर्तित होते हैं। समकालीन अध्ययन प्रणाली प्रायोगिक या सह सम्बंधित हो सकती है क्योंकि ये विधि कई वर्षों तक चल सकती है, अत: इसमें कुछ बाधाएं भी आ सकती हैं। उदारणार्थ जिस व्यक्ति का अध्ययन किया जा रहा हो वह पलायन की वजह से, बीमारी या मृत्यु से, या फिर विभिन्न कारणों से जैसे अध्ययन में दिलचस्पी न होने के कारण, माता-पिता द्वारा स्वयं को छोड़ देने की वजह से अध्ययन से बाहर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस विधि में समय और धन का बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है।

समकालीन अध्ययन प्रणाली

इस विधि में शोधकर्ता विभिन्न आयु के बच्चों की एक ही समय में तुलना करते हैं तथा यह परीक्षण करते हैं कि आयु के साथ व्यवहार में किस प्रकार परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए इस तरह के शोध अध्ययन के लिए एक ही समय में 4 साल के, 7 साल के तथा 10 साल के बच्चों के समूह का अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन में बच्चों की आयु स्वतंत्र चर हो जाती है। शोधकर्ता यह परीक्षण करने में ध्यान केंद्रित करता है कि आयु किस प्रकार आश्रित चर जैसे स्नेह, गुस्सा, भावनात्मक नियंत्रण, बुद्धिलब्धि, खेल, तार्किक क्षमता, याददाश्त आदि को प्रभावित करती

है। समकालीन अध्ययन प्रणाली में दीर्घकालीन अध्ययन प्रणाली की अपेक्षा कम समय व्यय होता है क्योंकि इस विधि में अध्ययन के लिए बच्चे के बड़े होने का इंतज़ार नहीं करना पड़ता।

1.8 मानवीय विषयों का अध्ययन करने में नैतिक मनन

मानवीय विषयों के साथ शोध करने में हमेशा निष्कर्ष के संभावित मूल्यों तथा किसी भी जोखिम के मध्य संतुलन होना चाहिए। इसमें शोध के विषय (व्यक्ति) को होने वाली शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षति शामिल है। दूसरा सामान्य रूप से होने वाला जोखिम है। अध्ययन किए जा रहे व्यक्ति की एकान्तता तथा कानूनी एवं नैतिक अधिकारों का उल्लंघन। उदाहरण के लिए एक शोधकर्ता गुप्त रूप से अध्ययन किए जा रहे बच्चों के स्कूली रिकॉर्ड प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त शोधकर्ता अध्ययन के तहत किशोरों के ज्ञान के बिना साथियों के समूह से बातचीत का अवलोकन कर सकता है। शोध में एक बच्चे या परिवार के सम्बन्ध में एकत्रित किया गया डेटा या जानकारियाँ सार्वजनिक हो सकती हैं।

अत: मानवीय शोधों में अध्ययन को निष्पादित करने से पूर्व नैतिक मूल्यों का ठीक प्रकार से परीक्षण किया जाना आवश्यक है तथा उन्हें हटाने के लिए सभी महत्वपूर्ण कदम उठाने चाहिए। ये निम्न प्रकार हैं:

- **सहकर्मी समीक्षा**: शोध अध्ययन शुरु करने से पूर्व अनुसंधान या शोध योजना किसी अन्य शोधकर्ता या किसी वैज्ञानिक को प्रस्तुत करनी चाहिए जिससे उनकी टिप्पणी, सुझाव तथा अनुमोदन लिया जा सके। इस तरह के उपायों से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। इससे शोध के संभावित निष्कर्ष का मूल्य बढ़ जाता है तथा नकारात्मक प्रभाव तथा खतरों को कम किया जा सकता है।
- **सूचित सहमति**: शोधकर्ता को प्रतिभागियों से अध्ययन के लिए लिखित सहमति लेनी चाहिए। उन्हें अध्ययन का उद्देश्य, अध्ययन की विधि तथा अध्ययन में उनकी भूमिका के सम्बन्ध में पता होना चाहिए। इसके साथ ही साथ यदि प्रतिभागी शोध के मध्य में ही शोध छोड़कर जाने की इच्छा जाहिर करे तो उसे इसकी स्वतंत्रता होनी चाहिए।
- **गोपनीयता**: जहां तक संभव हो प्रतिभागी की पहचान तथा जानकारी गुप्त रखनी चाहिए तथा किसी के भी सामने प्रकट नहीं करनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. ..... विधि में शोधकर्ता दिए गए समय में एक विशिष्ट व्यवहार के दिखने को रिकॉर्ड करता है।

2. साक्षात्कार विधि में शोधकर्ता एवं प्रतिभागी के मध्य ..... बातचीत होती है।
3. विभिन्न आयु में एक बच्चे के व्यवहार का अध्ययन करने हेतु ..... अध्ययन प्रणाली की आवश्यकता होती है।
4. समकालीन अध्ययन प्रणाली में दीर्घकालीन अध्ययन प्रणाली की अपेक्षा समय का ..... व्यय होता है।

1.9 सारांश

इस इकाई में हमने मानव व्यवहार का विश्लेषण करने की विभिन्न विधियों के सम्बन्ध में पढ़ा। हमने विभिन्न शोध परिस्थितियों के लिए भिन्न-भिन्न शोध अध्ययनों के सम्बन्ध में पढ़ा। इसके अतिरिक्त हमने स्वतंत्र तथा आश्रित चरों के सम्बन्ध पढ़ा। विभिन्न अध्ययनों के लिए प्रयोग में लाये जाने वाली दो अध्ययन विधियों, समकालीन तथा दीर्घकालीन प्रणालियों के सम्बन्ध में भी जाना। अंत में इन सभी शोध विधियों को प्रयोग करने से पूर्व हमें किन-किन नैतिक मुद्दों को ध्यान में रखना चाहिए, इसके सम्बन्ध में भी विस्तार से जाना।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **सह-संबंध:** एक तथ्य जो दो कारकों के मध्य सम्बन्ध का वर्णन करता है।
- **स्वतन्त्र चर:** स्वतन्त्र चर वह कारक हैं जिसे शोधकर्ता उसके प्रभाव को जानने तथा किसी निरीक्षित घटना से सम्बंधित करने के लिए घटाता या बढ़ाता है।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. समय प्रतिदर्श विधि
2. आमने-सामने बातचीत
3. दीर्घकालीन
4. कम

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.
2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.

3. Marshall, M.H. and Janette B. Benson (2008), Encyclopedia of Infant and Early Childhood Development, Academic Press, San Diego.
4. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
5. Ruth Strang, (1971), An Introduction to Child Study, Fourth edition, The Macmillan Company, New York.
6. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
7. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.
8. http://www.en.wikipedia.org/wiki/infant (August 2014)
9. http://www.nlm.nih.gov/medlineplus/infant and newborn care.html (August 2014)
10. http://kidshealth.org/parent/newborn care/guide parents.html (August 2014)
11. MFN- 006, Public Nutrition (2006), Indira Gandhi National Open University, Laxmi Print India, New Delhi.

इकाई 2: व्यवहार का मनोविज्ञान

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मनोविज्ञान
  2.3.1 मनोविज्ञान की परिभाषा
  2.3.2 मनोविज्ञान की विचारधाराएं
2.4 संवेदना (अनुभूति) और धारणा
  2.4.1 संवेदना (सनसनी)
  2.4.2 अवधारणा
2.5 सीखना
  2.5.1 सीखने के प्रकार
  2.5.2 अवधारणा गठन
2.6 स्मृति (याददाश्त): याद रखना और भूलना
2.7 बुद्धिमता
2.8 कलात्मकता (रचनात्मकता)
2.9 प्रेरणा
  2.9.1 प्रेरणा के सिद्धांत
2.10 सारांश
2.11 पारिभाषिक शब्दावली
2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

मानव जाति हमेशा से ही स्वयं के बारे मे जानने हेतु उत्सुक रही है। हम स्वयं को जानने के साथ ही कई प्रश्नों के उत्तर जानना चाहते हैं। जैसे हम क्या करते हैं, क्यों करते है, हमारे विचार कहाँ से आते हैं और क्यों आदि। मनोविज्ञान हमें इन प्रश्नों का उत्तर देने में मदद करता है। इस इकाई द्वारा आपको यह समझने मदद मिलेगी कि कैसा हमारा मस्तिष्क एवं व्यवहार आपस में जुड़े हैं। इसके साथ ही आप समझेंगे कि कैसे हमारा व्यवहार हमारे मनोविज्ञान को समझने की कुंजी है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत:

- आप यह समझेंगे कि कैसे संवेदना एवं धारणा हमारे वातावरण को समझने में मदद करती है;
- आप यह जानेंगे कि सीखना क्या है और सीखने के विभिन्न तरीके क्या हैं;
- आप जानेंगे कि हम कैसे अवधारणाएं बनाते हैं;
- आप यह समझेंगे कि कैसे मस्तिष्क में स्मृति की प्रक्रिया होती है;
- आप बुद्धिमता एवं रचनात्मकता के बारे में जानेंगे; तथा
- आप समझेंगे कि कैसे प्रेरणा हमारे व्यवहार का निर्देशन करती है।

2.3 मनोविज्ञान

मनोविज्ञान का आरम्भ दर्शनशास्त्र, चिकित्साशास्त्र एवं शरीर क्रिया विज्ञान के संगम से हुआ है। दर्शन शास्त्र द्वारा प्रश्न पूछे जाते हैं जैसे मनुष्य को क्या प्रेरणा देता है, क्यों हम एक विशिष्ट तरीके से कार्य एवं व्यवहार करते हैं। इन प्रश्नों का उत्तर चिकित्सा विज्ञान एवं शरीर क्रिया विज्ञान वैज्ञानिक तरीकों के उपयोग द्वारा देते हैं। बाद में मनोविज्ञान अन्य विषयों जैसे मानव शास्त्र, समाज शास्त्र व रसायन विज्ञान के योगदान से उन्नत हुआ।

2.3.1 मनोविज्ञान की परिभाषा

मनोविज्ञान शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्दों मानस (आत्मा) व लोगो (अध्ययन) से हुई है जिसका अर्थ है, आत्मा का अध्ययन। हालांकि मनोविज्ञान के क्षेत्र के विस्तार के साथ ही मनोविज्ञान की परिभाषा को विकसित किया गया है। वैज्ञानिक पद्धतियों के बढ़ते उपयोग के साथ ही मनोविज्ञान क्षेत्र का केन्द्रबिन्दु आत्मा से मन, मस्तिष्क एवं व्यवहार में स्थानांतरित हो गया है।

आइये अब इन परिभाषाओं को समझें।

मनोविज्ञान, विज्ञान के रूप में- आपने इकाई 1 में जाना कि मनोविज्ञान को विज्ञान माना गया है, क्योंकि इसमें भी वैज्ञानिक तरीकों के प्रयोग और व्यवस्थित अवलोकन का जानकारी प्राप्त करने हेतु उपयोग होता है। इसके अलावा विज्ञान के अन्य विषयों की तरह मनोविज्ञान अवधारणाओं को समझने हेतु सिद्धांतों का उपयोग करता है।

मनोविज्ञान, मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के रूप में- मानसिक प्रक्रियाओं में हमारे विचार, विश्वास, स्मृति, भावनाएं व अन्य बातें शामिल हैं जो कि मन या मस्तिष्क से उत्पन्न होती हैं। चूंकि ये

सभी हमारे व्यक्तित्व एवं अन्तर्मन का निर्माण करती हैं, अत: इनको जानना अति आवश्यक है। मस्तिष्क की प्रक्रियाओं का अध्ययन सीधे नहीं किया जा सकता है, इस स्थिति में व्यवहार ही मन को समझने की कुंजी बन जाता है।

मनोविज्ञान, व्यवहार के अध्ययन के रूप में- एक व्यक्ति जो कुछ भी करते हुए दिखायी देता है या महसूस करता है, उसे व्यवहार कहते हैं। कोई व्यक्ति क्या सोच रहा है या क्या महसूस कर रहा है यह जानना कठिन है। दूसरी ओर व्यवहार को देखा जा सकता है तथा दर्ज किया जा सकता है एवं इसका अध्ययन भी किया जा सकता है। हम जो कुछ भी करते हैं वह हमारे भीतरी विचारों का परिणाम होता है। इसलिए मनोविज्ञान में व्यवहार की पद्धतियों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। वर्तमान में मनोविज्ञान, व्यवहार विज्ञान के अन्तर्गत ही माना जाता है।

2.3.2 मनोविज्ञान की विचारधाराएं

आइये अब मनोविज्ञान की विभिन्न विचारधाराओं को जानें जो समय के साथ विकसित हुई हैं। लोगों की मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अलग-अलग राय थी जैसे मनोविज्ञान क्या है, इसे कैसे समझा जा सकता है और कैसे इसका अध्ययन किया जा सकता है आदि। इसलिए मनोविज्ञान की विभिन्न विचारधाराओं का जन्म हुआ।

विल्हेम वुंड, मनोविज्ञान की खोज करने वालों में से एक मनोवैज्ञानिक थे। उन्हें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जनक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने 1879 में मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला स्थापित की जिसमें वे विभिन्न वैज्ञानिक विधियों द्वारा मस्तिष्क का अध्ययन करते थे। उन्होंने अपने छात्र एडवर्ड बी0 टिचनर के साथ मनोविज्ञान की प्रमुख विचारधारा संरचनावाद को प्रस्तुत किया। संरचनावाद, मनुष्य के मन की विभिन्न संरचनाओं या बुनियादी तत्वों पर केन्द्रित है। यह विचार शुरुआत में तो काफी लोकप्रिय हुआ परन्तु मनुष्य के मस्तिष्क एवं मन के बारे में कई उत्तर देने में असफल होने पर बहुत लम्बे समय तक नहीं चला।

एक और महत्वपूर्ण विचारधारा जिसे व्यवहारिकता कहते हैं, विलियम जेम्स द्वारा शुरु की गयी। व्यवहारिकता मस्तिष्क की संरचनाओं पर केंद्रित ना होकर मस्तिष्क के व्यवहार कार्य पर केद्रित थी। दूसरे शब्दों में ये यह जानने की कोशिश करना है कि हम जो करते हैं वह क्यों करते हैं?

1900 के दशक के शुरुआत में सिगमंड फ्रायड द्वारा एक और महत्वपूर्ण विचारधारा मनोविश्लेषण विद्याशाखा को प्रसिद्ध बनाया गया। फ्रायड मानते थे कि हमारे बालजीवन के अनुभव हमारे भविष्य को प्रभावित करते हैं। मनोविश्लेषण हमारे अचेत मन के साथ-साथ हमारे भीतर की इच्छाओं और सामाजिक मूल्यों के अन्तरद्वन्द का अन्वेषण करता है। मनोविश्लेषण ने कई विवाद पैदा किए जो आज भी चर्चा के विषय बने हुए हैं।

1950 के दशक के दौरान व्यवहारवाद काफी लोकप्रिय बन गया। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को देखकर उसके भीतर के विचार को समझा जा सकता है। जॉन वाटसन व स्कीनर के कार्यों से व्यवहारवाद को प्रोत्साहन मिला। मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवाद का कुछ गहरा प्रभाव पड़ा। इस विचारधारा से उत्पन्न अवधारणाओं व तकनीकों का प्रयोग आज भी हो रहा है। मनोविज्ञान की इन विचारधारओं और अन्य विचारधाराओं ने मनुष्यों को समझने में हमारी मदद की है।

मनोविज्ञान की शाखायें

मनोविज्ञान क्षेत्र के कई उपयोग हैं क्योंकि मुख्य रूप से यह जीवित प्राणियों को समझने में मदद करती है। यह न सिर्फ मनोवैज्ञानिकों के लिए बल्कि हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। मनोविज्ञान एक माँ को उसके बच्चे को समझने के लिए, शिक्षक को अपनी कक्षा का प्रबन्ध करने व एक सैनिक को युद्ध के मैदान में सबसे अच्छी रणनीति को समझने में मदद करती है। चूँकि मनोविज्ञान के विविध उपयोग हैं, अत: इसकी बहुत सारी शाखाएं हैं। इनमें कुछ निम्न हैं:

- **नैदानिक मनोविज्ञान**- इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक समस्याओं की समझ, रोकथाम, परामर्श एवं इलाज आता है।
- **असामान्य मनोविज्ञान**- यह मानसिक विकारों एवं असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित है।
- **शैक्षिक मनोविज्ञान**- यह मनोविज्ञान स्कूल, शिक्षण-शैक्षिक समस्याओं व छात्रों के मुद्दों पर केन्द्रित है।
- **विकासात्मक मनोविज्ञान**- समय के साथ मनुष्य में होने वाले परिवर्तनों को इसमें बताया गया है। मानव विकास के छात्र के रूप में किसी व्यक्ति के अध्ययन का क्षेत्र विकासात्मक मनोविज्ञान होगा।
- **सामाजिक मनोविज्ञान**- समाज से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं जैसे समूह के व्यवहार का अध्ययन, सामाजिक मापदंड आदि का अध्ययन।
- **विविध सांस्कृतिक मनोविज्ञान**- यह बताता है कि कैसे विभिन्न संस्कृतियाँ मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

अब तक आपने पढ़ा की कैसे मनोविज्ञान क्षेत्र उभरा और समय के साथ इसमें कैसे बदलाव आये। अब आप मनोविज्ञान के उन महत्वपूर्ण विषयों को जानेंगे जो मानव विकास का आधार हैं। तो आइये शुरूआत करते हैं, संवेदना और धारणा विषयों के साथ। किन्तु आगे बढ़ने से पूर्व आइये कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही मिलान करें।

(i) व्यवहारवाद	(a) विलियम जेम्स
(ii) सामाजिक मनोविज्ञान	(b) मस्तिष्क
(iii) जैव मनोविज्ञान	(c) सिगमंड फ्रॉयड
(iv) व्यवहारिकता	(d) जॉन वाटसन व बी0 एफ0 स्किनर
(v) असामान्य मनोविज्ञान	(e) समूह व्यवहार
(vi) मनोविश्लेषण	(f) मानसिक विकार

2. मनोविज्ञान को परिभाषित करें।

2.4 संवेदना (अनुभूति) और धारणा

कल्पना कीजिए कि जब एक बच्चा पहली बार गुलाब देखता है। वह अपनी आँखों से गुलाब के रंगों व आकार को देखेगा, अपनी नाक से फूल की सुगन्ध सूंघेगा, पंखुड़ियों को छूने पर बच्चे को उसके कोमल होने का एहसास होगा परन्तु काँटे को छूने पर दर्द का अनुभव होगा। इतनी सारी संवेदनाएं एकत्रित होकर बच्चे के मस्तिष्क को भेज दी जाती हैं। मस्तिष्क इस जानकारी की व्याख्या निम्न प्रकार से कर सकता है- गुलाब एक सुन्दर, अच्छी महक वाला फूल है, जो ऊपरी भाग से स्पर्श करने में अच्छा है परन्तु नीचे के हरे नुकीले भागों से स्पर्श करने से अच्छा नहीं है।

उपरोक्त उदाहरण में संवेदना एक प्रक्रिया है जिसमें एक बच्चे ने गुलाब के गुणों के बारे में जानने के लिये अपने विचारों का उपयोग किया। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया बहुत तेजी से होती है।

2.4.1 संवेदना (सनसनी)

संवेदना एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमारी इन्द्रियाँ हमारे पर्यावरण से जानकारी प्राप्त करती हैं।

आप अपनी पाँच प्रमुख इन्द्रियों से परिचित होंगे जो कि दृष्टि,श्रवण, स्वाद, गंध एवं स्पर्श हैं। यह पाँच प्रमुख इन्द्रियाँ हैं जिनके बारे में हम जानते हैं परन्तु मानव शरीर में कई और इन्द्रियाँ भी होती हैं, जिनमें प्रधाणिक व गतिशील इन्द्रियाँ सम्मिलित हैं। प्रधाणिक इन्द्रियाँ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये इन्द्रियाँ हमारे शरीर का संतुलन बनाये रखती हैं। गतिशील इन्द्रियाँ हमारे शरीर व माँसपेशियों की गति व स्थिति को बताती हैं।

यह इन्द्रियाँ विभिन्न संवेदी अंगों में स्थित होती हैं और पर्यावरण से संवेदनाओं (उत्तेजनाओं) का पता लगाती हैं। आप इसकी क्रियाशीलता को एक एण्टिना की तरह सोच सकते हैं जो वातावरण की विभिन्न तरंगों को हमारे मस्तिष्क में भेजती हैं। नीचे दी गई तालिका 2.1 हमें बताती है कि कैसे हमारी इन्द्रियाँ वातावरण से सूचनाएं ग्रहण करती हैं।

इन्द्रीयाँ	**ज्ञानेन्द्रियाँ**	**वातावरण से इन्द्रीयाँ क्या ग्रहण करती हैं।**	**इन्द्रियों के क्रियाशील होने पर क्या होता है।**
देखना	आँख	प्रकाश तरंगें	1. आखों द्वारा देखी गई वस्तु प्रकाश तरंगों में परिवर्तित होती है। 2. रेटिना में प्रकाश संवेदी कोशिकाओं- शंकु व छड़ द्वारा ट्रान्सडक्सन (पराक्रमण) होता है। 3. दृष्टि तन्त्रिकाओं द्वारा वस्तु का चित्र मस्तिष्क में भेजा जाता है।
सुनना	कान	ध्वनि तरंगें	1. ध्वनि तरंगें कान में प्रवेश करती हैं। यह बाहरी कान से होते हुए मध्य कान में जाती हैं और फिर अंदरुनी कान में जाकर बाल जैसी संरचना में कम्पन उत्पन्न करती हैं। 2. ध्वनि तरंगों के तन्त्रिका आवेग में बदलने से ट्रान्सडक्सन (पराक्रमण) होता है तथा यह मस्तिष्क मे भेजी जाती हैं।
स्पर्श	त्वचा	दर्द,दबाव, तापमान	1. शरीर के हर भाग की त्वचा की संवेदनशीलता दर्द, तापमान एवं दबाव के लिये भिन्न होती है। 2. त्वचा के भीतर की नसें तन्त्रिकीय सूचना को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं।
गंध	नाक	अणु/कण	1. गंध के कण हमारी नाक में प्रवेश करते हैं और नाक के ऊपरी हिस्से में उपस्थित गंध को ग्रहण करने की कोशिकाओं से टकराते हैं।

			2. गंध के बारे में सूचना मस्तिष्क को दी जाती है।
प्रधान इन्द्रिय	कान के अन्दर के प्रकोष्ठ	सिर की गति	1. जब हमारा सिर घूमता है तो उसमें उपस्थित तरल पदार्थ कान के अंदरुनी हिस्से की अर्ध चन्द्राकार नलिकाओं में घूमता है। 2. सिर के घूमने की सूचना मस्तिष्क तक भेजी जाती है।
गतिकी	जोड़ों व माँस पेशियों में खिंचाव के तन्तु	शरीर मुद्रा में परिवर्तन	1. खिंचाव के तंतु शरीर की मुद्रा में परिवर्तन की सूचना मस्तिष्क को भेजते हैं।

इस तालिका से आप इन्द्रियों के बारे में विस्तार से जान पायेंगे और समझेंगे कि कैसे इन्द्रियाँ पर्यावरण से जानकारियाँ एकत्रित करती हैं। हर मनुष्य के लिये उत्तेजनाएं अलग-अलग हो सकती हैं। जैसे कुछ लोगों को गन्ध का ज्ञान दूसरे व्यक्ति से अधिक होता है। अगर आप किसी उद्दीपन पर ज्यादा ध्यान देंगे तो आप इसे बेहतर समझ पायेंगे। जैसे आप आम खाते वक्त उसके स्वाद के साथ-साथ उसकी गंध का भी अनुभव करते हैं।

हमारी इन्द्रियाँ न केवल वातावरण का अनुभव करने में मदद करती हैं बल्कि इसका अन्य वस्तुओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए एक खास गंध हमारी पुरानी भावनाओं व यादों से जुड़ी होती है। यह देखा गया है कि समय से पहले पैदा होने वाले बच्चे को यदि लगातार मानव का स्पर्श मिले या मसाज की जाए तो उसके वजन में शीघ्र वृद्धि होती है।

अब हम यह जानेंगे की जब कोई सूचना हमारे मस्तिष्क में भेजी जाती है तो क्या होता है।

2.4.2 अवधारणा

अवधारणा एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हमारी इन्द्रियाँ पर्यावरण से जानकारी प्राप्त करती हैं, इसे व्यवस्थित करती हैं और इसे समझती हैं।

हमारी इन्द्रियाँ हमारे मस्तिष्क को लगातार पर्यावरण से सूचना प्राप्त कर भेजती रहती हैं। मनुष्य का मस्तिष्क इतना अधिक विकसित तथा तेज होता है कि बड़ी ही शीघ्रता से काफी अधिक सूचना को छाँट कर तथा व्यवस्थित कर उसका अर्थ निकाल लेता है। जैसे जब आप सड़क पार कर रहे होते हैं तो उस क्षण को याद करें कि कैसे हमारा मस्तिष्क काम करता है। दृश्य सूचना जैसे कारों की गति,

जेबरा क्रॉसिंग, ट्रैफिक सिग्नल, श्रृव्य सूचना जैसे गाड़ियों के हॉर्न और गति की सूचना, सड़क पार करते समय अन्य आवाजें जैसे नदियों के बहने की आवाज या लोगों की बातें करने की आवाज हमें सुनायी देती हैं, परन्तु मनुष्य का मस्तिष्क उपयोगी बातों को ग्रहण कर सड़क पार करने में मदद करता है और दुर्घटनाओं से बचाता है। मनुष्य का मस्तिष्क सूचनाओं की छंटनी कर उसे संगठित करता है। यह प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक कारकों से प्रभावित होती है, जैसे हम क्या देखना चाहते हैं, हमारे पूर्व के अनुभव क्या थे, हमारी संस्कृति कैसी है और हमारी मनोदशा कैसी है आदि।

चित्र संख्या 2.1 को देखें।

चित्र संख्या 2.1: तुरही बजाता व्यक्ति

उपरोक्त चित्र में शायद आपको एक व्यक्ति तुरही बजाता दिखे और ज्यादा ध्यान से देखने पर आपको एक औरत भी दिख सकती है। इस चित्र में शायद आप स्त्री से पहले पुरुष को देखेंगे। इसलिये यह कहा जा सकता है कि जो हम देखना चाहते हैं वही हमारा मस्तिष्क देखता है।

आपको खुशी का गाना सुनना है या दुखी गाना सुनना है, यह आपकी मनोदशा पर निर्भर करता है। आपकी संस्कृति और अनुभव भी आपकी अवधारणा को प्रभावित करते हैं। उदाहरणस्वरूप नीला रंग भारतीय क्रिकेट प्रशंसक को राष्ट्रवादी महसूस कराने के लिये प्रोहसाहित कर सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है हमारा मस्तिष्क किसी भी जानकारी को समझने हेतु विभिन्न नियमों का उपयोग करता है। मस्तिष्क उन वस्तुओं को एक समूह में रखता है जो एक जैसे गुण रखती हैं। इसके

लिये मस्तिष्क किसी भी सूचना की सरलता, स्थिरता (नियमितता) व समापन को ध्यान में रखता है (चित्र 2.2 देखें)।

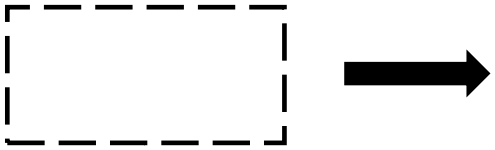

आपको चित्र में एक पूर्ण आयत दिखायी दे रहा होगा जबकि आयत के कुछ भाग अनुपस्थित हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि हमारा मस्तिष्क ऐसे चित्र को स्वयं ही पूरा कर लेता है।

चित्र संख्या 2.2 : अधूरा आकार

इसके अलावा अवधारणा की गहराई, पृष्ठभूमि व वातावरण की परिस्थिति का भी हमारे दृष्टिकोण में प्रभाव पड़ता है (चित्र 2.3 देखें)।

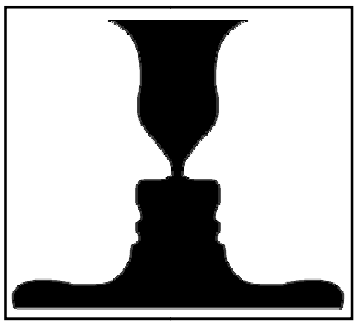

इस चित्र में आपको दो मानव चेहरे या फिर एक फूलदान दिखायी देगा। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप पृष्ठभूमि का रंग क्या लेंगे, काला या सफ़ेद।

चित्र संख्या 2.3

सामान्यतः यह नियम हमारे मस्तिष्क की बहुत मदद करते हैं परन्तु कई बार किसी सूचना का अर्थ गलत भी हो सकता है। इसको हम दृष्टि भ्रम द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं जिसमें हमारा मस्तिष्क ऐसी छवियों को देखता है जो वास्तव में नहीं होती हैं। इस प्रकार आप यह देख सकते हैं कि यह कैसे संभव है कि अलग-अलग व्यक्ति एक ही बात पर भिन्न मत रखते हैं।

हमारा मस्तिष्क निरन्तर इन्द्रियों के द्वारा हमारे वातावरण को समझने की कोशिश करता है। यह इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि अगर हम अपने आसपास के वातावरण को नहीं समझेंगे तो हम जीवित नहीं रह पायेंगे।

आइये अब सीखने के बारे में जानें।

2.5 सीखना

अनुभवों के माध्यम से व्यवहार या ज्ञान में स्थाई परिवर्तन की प्रक्रिया को सीखना कहते हैं। आइए, अब इस परिभाषा को समझें।

स्थाई परिवर्तन- यह तभी मान्य है जब जो हमने सीखा है वह कुछ समय तक हमारे साथ रहे। यह कुछ घंटे के लिये, दिनों के लिये या जीवनभर के लिये भी हो सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हमने क्या सीखा है।

ज्ञान व व्यवहार में परिवर्तन- अगर कोई व्यक्ति कुछ सीखता है तो वह अपने ज्ञान व व्यवहार को विकसित करता है। यह जरूरी नहीं है कि परिवर्तन केवल सकारात्मक हों (व्यक्ति बुरी आदतें भी सीख सकता है)। यह जानना आवश्यक है कि व्यक्ति किसी व्यवहार को बदल सकता है और नये व्यवहार को पुराने व्यवहार से बदल सकता है। उदाहरणस्वरूप कोई व्यक्ति अपनी धूम्रपान की आदत छोड़कर धूम्रपान नहीं करने की आदत को अपना सकता है।

अनुभवों के द्वारा- सीखना तथा योग्यता होना दोनों भिन्न भिन्न हैं क्योंकि मनुष्य में उम्र के साथ ही कोई परिवर्तन आता है या वह कुछ प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए किसी किशोर की आवाज में परिवर्तन होना सीखना नहीं है बल्कि यह उम्र का एक पड़ाव है। सीखना तब होता है जब मनुष्य अपने वातावरण व अनुभव से कुछ सीखे।

2.5.1 सीखने के प्रकार

सीखने की प्रक्रिया विभिन्न तरीकों से होती है और कई कारकों द्वारा प्रभावित होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या सीखना है, सीखने वाला कौन है और सीखने का वातावरण कैसा है। स्वयं को सीखने वाले के रूप में रखकर कभी आपने अनुभव किया होगा कि कुछ कार्य अन्य कार्यों की तुलना में आसान होते हैं।

इन निम्न तरीकों द्वारा मनुष्य में सीखने की प्रक्रिया होती है:

1. संबद्ध या साहचर्य सीखना (क्लासिकल कंडीशनिंग एवं आपरेन्ट कंडिशनिंग)
2. संज्ञानात्मक (बोध) ज्ञान

1. संबद्ध या साहचर्य सीखना

खण्ड 2.3.2 के उदाहरण को याद कीजिये जिसमें नीले रंग को देखने पर भारतीय क्रिकेट के प्रशंसकों के गर्वित होने की बात बताई गई है क्योंकि प्रशंसकों के दिमाग में नीला रंग क्रिकेट टीम की जर्सी से

जुड़ा है। सीखने की इस प्रक्रिया में व्यक्ति किसी खास घटना, वस्तु या व्यवहार को साथ में संयुक्त करता है, उसे (कंडिशनिंग) कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है:

(a) क्लासिकल कंडिशनिंग- सीखने की यह प्रक्रिया सर्वप्रथम एक रूसी मनोवैज्ञानिक इवान पावलोव ने खोजी जिन्होंने कुत्तों पर प्रयोग किए थे। उन्होंने देखा कि जब कुत्ता खाना देखता है तो उसकी लार टपकती है जो कि एक प्राकृतिक प्रतिक्रिया है। फिर उन्होंने खाना देने से पहले घण्टी बजाना शुरू किया। यही प्रक्रिया उन्होंने बहुत दिनों तक दोहराई। कुछ समय बाद उन्होंने देखा कि कुत्ता घण्टी बजने के बिना ही लार गिराना शुरु करने लगा। यही क्लासिकल कंडिशनिंग है जिसमें आप दो या दो से अधिक उद्दीपनों को आपस में जोड़ने की कोशिश करते हैं।

यह सिर्फ जानवरों के साथ ही नहीं मनुष्यों के साथ भी होता है। आप बारिश न होने पर भी बारिश के दिनों में छाता लेकर घर से बाहर जाते हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं? यह इसलिये क्योंकि आप घने बादलों को बारिश के साथ जोड़कर देखते हैं और सावधानी के तौर पर छाता लेकर जाते हैं ताकि आप न भीगें।

(b) ऑपरेन्ट कडिंशनिंग- इसे सहयोगी सीखना या इंस्ट्रूमेंटल लर्निंग भी कहते हैं। इस सीखने की प्रक्रिया के पीछे यह तथ्य है कि व्यक्ति का ज्ञान उसके सीखने पर निर्भर करता है। इसका तात्पर्य है कि यह सीखने की प्रक्रिया तब प्रारम्भ होगी जब व्यक्ति को वो मिले जो वह पाना चाहता है। उदाहरण स्वरूप एक व्यक्ति खाना खा सके इसलिये वह खाना बनाना सीखता है। ऑपरेण्ट कंडिशनिंग के केन्द्र बिन्दु प्रोत्साहित करना व दण्डित करना है। किसी खास तरह के व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाला कारक प्रबलन कारक कहलाता है। इसके विपरित दण्ड किसी भी गलत व्यवहार के दोबारा होने के मौके को कम करता है। इसको समझने के लिये निम्न उदाहरणों को समझें:

एक वर्ष के दीप ने जब पहली बार माँ पुकारा तो उसकी माँ बहुत खुश थी। वह मुस्कुराई और उसने ताली बजाकर अपने बच्चे को गले लगाया तथा फिर से वही शब्द बोलने के लिये प्रोत्साहित किया। अपनी माँ की खुश होने की प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर दीप फिर से माँ-माँ-माँ शब्द दोहराने लगा।

गीता दो वर्ष की जिज्ञासु बच्ची थी, जो अपने बगीचे में मिट्टी खाने ही वाली थी कि गीता की माँ ने उसे देख लिया तथा उसे मिट्टी से हटाया। उसने उसके हाथों में लगी मिट्टी को साफ़ किया। उसकी माँ ने सख्ती से उससे ऐसा नहीं करने को कहा। अपनी माता के इस व्यवहार से गीता खुश नहीं थी परन्तु उसने फिर मिट्टी खाने का प्रयास नहीं किया।

पहले उदाहरण में दीप को माँ की मुस्कान और माँ के गले मिलने से सकारात्मक प्रोत्साहन मिला। माँ का यह व्यवहार दीप के लिये एक पुरस्कार की तरह था जिसके कारण उसने अपना व्यवहार

दोहराया और बार-बार माँ बोला ताकि उसे और ज्यादा मुस्कुराहट मिले और उसकी माँ उसे बार-बार गले लगाए। दूसरे उदाहरण में गीता ने मिट्टी दोबारा नहीं खाई क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि उसकी माँ उस पर नाराज हों। अत: गीता ने दण्ड को नकारा और मिट्टी नहीं खायी।

दोनों उदाहरणों में आप देख सकते हैं कि बच्चे का पालन पोषण किस प्रकार बच्चे के सीखने से जुड़ा हुआ है। एक अभिभावक के रूप में ऑपरेन्ट कंडिशनिंग आपके लिये बच्चों को अनुशासन सिखाने, पालन पोषण करने और पाठ बनाने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है।

2. संज्ञानात्मक ज्ञान- अपने आस-पास की घटनाओं व चीजों को देखकर जानकारी एकत्रित करना ही संज्ञानात्मक सीखना होता है। साहचर्य शिक्षा (सीखने) में आपको खुद अनुभवों से सीखना होता है। इसके विपरीत संज्ञानात्मक शिक्षा (सीखने) में आप केवल देखने, सुनने व किसी और व्यक्ति के अनुभवों से भी सीख सकते हैं। उदाहारण स्वरूप, जंगल के बारे में जानने के लिये आपको जंगल जाने की आवश्यकता नहीं है, आप इस पर एक किताब भी पढ़ सकते हैं। आप जानते हैं कि बच्चे अपने माता-पिता के व्यवहार की नकल करते हैं। नकल करके सीखना संज्ञानात्मक सीखना होता है। भले ही आपकी माँ ने आपको सब्जी पुलाव बनाना नहीं सिखाया हो परन्तु एक पल के लिये आपको लग सकता है कि आप आपकी माँ जैसा सब्जी पुलाव बना सकते हैं। क्या आपको लगता है कि आप ऐसा कर सकते हैं? हाँ, वह इसलिये क्योंकि पूर्व में आपने अपनी माँ को सब्जी पुलाव बनाते देखा है और जब तक आप वास्तव में खाना नहीं बनायेंगे आप यह नहीं जान पायेंगे कि वास्तव में आप यह कार्य भी कर सकते हैं।

2.5.2 अवधारणा गठन

एक बच्चा कई चीजें एक साथ सीखता है। अपनी सीखी हुई बातों को बच्चा कैसे मानसिक रूप से आयोजित और व्यवस्थित करता है? वह यह सब अवधारणा निर्माण द्वारा करता है। अवधारणा एक मानसिक विचार है, जिसके द्वारा हम समान विशेषताओं के आधार पर चीजों व घटनाओं को वर्गीकृत करते हैं। इसका अर्थ है कि जो बच्चा लाल रंग को समझता है वह जानता होगा कि फूल व गेंद दोनों लाल हो सकते हैं तथा वह कई फूलों में से लाल रंग के फूलों को अलग कर सकता है। अवधारणा बनने से ना केवल हम चीजों को अलग कर सकते हैं या उनका सम्बन्ध बता सकते हैं बल्कि यह हमारी याददाश्त की प्रक्रिया को तथा कार्य करने की क्षमता को भी बढ़ाते हैं। हमारा मस्तिष्क हमें समझाता है कि जो भी चीजें हानिकारक हैं हमें उनसे दूर रहना है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. हमारी आँख कैसे पर्यावरण से चित्रों / छवियों को एकत्रित करती हैं? व्याख्या कीजिये।

---

2. सीखने के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

---

3. मनोवैज्ञानिक कारकों का हमारी धारणाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है?

2.6 स्मृति (याददाश्त): याद रखना और भूलना।

स्मृति मस्तिष्क की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम चीजें याद रखते हैं। यह प्रक्रिया निम्न तीन प्रकार से होती है:

(1) इन्द्रियों द्वारा संचित की गई जानकारी को समझना व आयोजित करना। इस प्रक्रिया को एनकोडिंग (Encoding) कहते हैं। उदाहरण के लिए एक बच्चे को पता होता है कि आग गर्म है और जला सकती है।

(2) मस्तिष्क जानकारी को संग्रहित करता है ताकि उस जानकारी को भविष्य में उपयोग में ला सकें, इसे भण्डारण कहते हैं।

(3) मस्तिष्क जब जानकारी को बाहर लाकर इसे उपयोग में लाता है, इस प्रक्रिया को पुन: प्राप्ति कहते हैं। उदाहरण के लिए किचन में रहने पर बच्चा आग से दूर रहता है।

हम चीजों को कैसे याद रखते हैं यह जानने के लिये कई विशेषज्ञों द्वारा कुछ सिद्धांत दिए गए हैं। इनमें से **सूचना प्रसंस्करण मॉडल** सर्वाधिक विख्यात है।

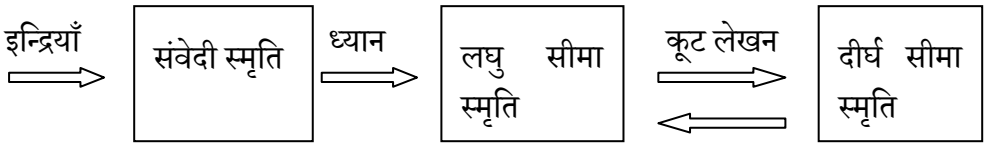

चित्र संख्या 2.5: सूचना प्रसंस्करण मॉडल

इस मॉडल के अनुसार हमारा मस्तिष्क एक कम्प्यूटर की तरह है। हमारी इन्द्रियाँ सूचना ग्रहण करती हैं जो संवेदी स्मृति में जाती हैं। संवेदी स्मृति में सूचना केवल कुछ सेकण्ड के लिये रहती हैं। स्मृति में सूचना ज्यादा समय रहे, इसके लिये हमें सूचना पर ध्यान देना होता है। यह प्रक्रिया पूर्ण होने पर सूचना लघु सीमा स्मृति में स्थानान्तरित हो जाती है। यहाँ पर सूचना कुछ ज्यादा समय (30 सेकेण्ड) के लिये रहती है। रिहर्सल (पुनरावृति) द्वारा सूचना लघु सीमा स्मृति से दीर्घ सीमा स्मृति में स्थानान्तरित होती है, और सूचना की पुनरावृत्ति होती है। ज्यादा ध्यान देने पर हमें सूचना लम्बे समय के लिये याद रहती है। हम जितनी बार (दिन, महीने या वर्षो) सूचना की पुनरावृत्ति करेंगे उतने लम्बे समय के लिये सूचना हमें याद रहेगी। दीर्घ सीमा स्मृति की भण्डारण क्षमता असीमित होती है। इसलिये यदि आप कोई पूर्व सूचना जानना चाहते हैं तो यह सूचना फिर से लघु सीमा स्मृति में चली जाती है, जहाँ से हम सूचना ग्रहण करते हैं। हमारे मस्तिष्क में जब यह सारी प्रक्रियाएं अच्छी तरह से हो जाती हैं तो हमें सूचना याद रहती है। अगर कोई एक भी चरण ठीक से मस्तिष्क में पूर्ण नहीं हो पाता है तो हम वस्तुओं या सूचनाओं को भूल जाते हैं जो कभी मस्तिष्क में उपस्थित थीं।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि स्मृति विज्ञान द्वारा हम अपनी याददाश्त बढ़ा सकते हैं, और भूलना रोक सकते हैं। स्मृति विज्ञान के अन्तर्गत कुछ खास सुझाव होते हैं जो हमें सूचना याद रखने में मदद करते हैं। जैसे विब्ग्योर(VIBGYOR) शब्द इन्द्रधनुष के सातों रंगो को याद करने में मदद करता है। चित्र तथा संगीत भी स्मृति विज्ञान के रूप में प्रयोग आते हैं। यह भी पाया गया है कि पर्याप्त नींद से हमारे मस्तिष्क की याद रखने की क्षमता बढ़ती है।

2.7 बुद्धिमत्ता

मनोविज्ञान के क्षेत्र में बुद्धिमत्ता पर लगातार समय-समय पर बहस होती रहती है। बुद्धिमत्ता से सम्बन्धित कुछ विवादास्पद प्रश्न हैं जैसे यह क्या समावेशित करता है, इसे कैसे मापते हैं एवं इसे कैसे परिभाषित करते हैं? आइये अब जानें कि यह प्रश्न विवादित क्यों हैं?

हम सब में यह जानने की एक आम सोच उपस्थित होती है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति कौन है। अगर आपको एक बुद्धिमान व्यक्ति को परिभाषित करना हो तो आप क्या कहेंगे? आप कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों के उदाहरण दे सकते हैं जैसे आर्यभट्ट, अब्दुल कलाम या चाणक्य। आप कुछ विशिष्ट शब्द भी उपयोग में ला सकते हैं जैसे चालाक, व्यवहारिक बुद्धि, समस्या सुलझाने वाला या होशियार व्यक्ति आदि।

बुद्धिमत्ता को परिभाषित करने मे कठिनाई इसलिये आती है क्योंकि हम इसे भार व लम्बाई की तरह सीधे नहीं माप सकते हैं। हमें अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के बुद्धिमत्ता वाले आचरण की तुलना व अध्ययन कर बुद्धिमत्ता को मापना पड़ता है। यह बुद्धिमत्ता की जाँच द्वारा मापा जाता है, जिसके द्वारा व्यक्ति का बुद्धिमत्ता अनुपात (IQ) मापते हैं। यह एक प्राप्तांक है जो बताता है कि अन्य समान आयु वर्ग के व्यक्तियों की तुलना में हमने कैसा प्रदर्शन किया है। परन्तु यह किसी व्यक्ति की पूर्ण बुद्धिमत्ता

का पता नहीं लगा सकता। अभी तक कोई भी ऐसा बुद्धिमत्ता परिक्षण/जांच नहीं है जिसे सभी मनोवैज्ञानिक सबसे बेहतर मानें।

बुद्धिमत्ता क्या है? बुद्धिमत्ता अनुभव से सीखने, कौशल सीखने, ज्ञान समस्याओं का समाधान व वातावरण को अपनाने की क्षमता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि वंशानुगत व पर्यावरण दोनों ही कारक बुद्धिमत्ता को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह अभी भी विवाद का विषय है कि दोनों में से कौन-सा कारक ज्यादा प्रभाव डालता है। यह भी एक विवादित विषय है कि बुद्धिमत्ता, सामान्य क्षमता है या कई क्षमताओं का संग्रह है। पारम्परिक बुद्धि परीक्षण इस विचार पर आधारित हैं कि व्यक्ति में एक प्रकार की बुद्धिमत्ता होती है। इस सामान्य बुद्धिमत्ता के अस्तित्व का एक प्रमाण यह है कि जो लोग किसी एक क्षेत्र में बहुत अच्छा करते हैं, उनकी अन्य क्षेत्रों में भी उत्तम कार्य करने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिये जो बच्चे अच्छी स्मृति रखते हैं उन्हें गणितीय समस्याओं को हल करने में अच्छा माना जाता है। सामान्य बुद्धिमत्ता सिद्धांत की एक कमी यह है कि यह केवल बुद्धिमत्ता परीक्षण पर आधारित है न कि लोगों की प्रतिभाओं पर। इस समस्या का समाधान करने के लिये यह सिद्धांत दिया गया कि बुद्धिमत्ता न केवल एक सामान्य क्षमता है बल्कि कई अन्य क्षमताओं का संग्रह है।

बुद्धिमत्ता के सर्वाधिक प्रचलित सिद्धांत **"विभिन्न बुद्धिमत्ता का सिद्धांत"** के अनुसार मनुष्य में 8 प्रकार की बुद्धिमत्ता होती हैं जो कई श्रेणियों में विभाजित होती हैं। ये श्रेणियाँ नीचे सूचीबद्ध हैं।

(1) मौखिक बुद्धिमत्ता: शब्दों में सोचने की क्षमता और भाषा का दक्षतापूर्वक प्रयोग। जैसे कवि, पत्रकार और वकील।
(2) तार्किक बुद्धिमत्ता: तर्कपूर्ण सोचना और अंकों के साथ कार्य करने की दक्षता। जैसे वैज्ञानिक, इंजीनियर, एकाउन्टेंट (सांख्यिकीकार)।
(3) स्थानिक बुद्धिमत्ता: स्थान व त्रिआयामी संरचना की कल्पना करने की क्षमता। जैसे कलाकार व आर्किटेक्ट।
(4) शारीरिक गतिशील बुद्धिमत्ता: शरीर पर अच्छा नियन्त्रण रखने की क्षमता। जैसे चिकित्सक, नर्तक व खिलाड़ी।
(5) संगीत बुद्धिमत्ता: संगीत के तत्त्वों जैसे तीव्रता, स्वर व ताल को समझने की क्षमता। जैसे संगीतकार।
(6) आत्म बुद्धिमत्ता: स्वयं को समझने की क्षमता। जैसे दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक।
(7) पारस्परिक बुद्धिमत्ता: दूसरों को भली प्रकार समझने व बातचीत करने की क्षमता। जैसे शिक्षक व समाज सेवक।

(8) प्रकृतिवादी बुद्धिमत्ता: लोगों व परिस्थिति को समझने व संवेदनशील होने की क्षमता। जैसे किसान, प्रकृति प्रेमी आदि।

शिक्षाविदों द्वारा इस प्रकार की बुद्धिमत्ता का स्वागत किया गया क्योंकि यह बच्चों में उपस्थित विभिन्न प्रकार की दक्षताओं को दिखाता है। कई विभिन्न बुद्धिमत्ताओं के अस्तित्व का प्रमाण प्रतिभाशील व्यक्तियों के मस्तिष्क के अध्ययन से मिलता है। जबकि कई विचारक इन क्षमताओं को केवल दक्षता मानते हैं किसी प्रकार की बुद्धिमत्ता नहीं। इसलिए आज भी बुद्धिमत्ता पर बहस जारी है।

2.8 कलात्मकता (रचनात्मकता)

कल्पना का उपयोग कर कुछ मौलिक और उपयोगी बनाने की क्षमता को रचनात्मकता कहते हैं।

व्यक्ति को रचनात्मक कब कहते हैं? कुछ रचनात्मक कार्य जैसे संगीतकार द्वारा नई धुन बनाना, वैज्ञानिक द्वारा नई खोज करना और नई दवाई बनाना और एक बच्चे का अपनी कल्पना द्वारा चित्र बनाना आदि हैं। यह गलत धारणा है कि रचनात्मकता केवल कला से सम्बन्धित विषयों का एक हिस्सा है। जबकि यह एक तथ्य है कि रचनात्मकता की आवश्यकता केवल कला से सम्बन्धित विषयों में ही नहीं अपितु विज्ञान, सांख्यिकी, वाणिज्य व अन्य विषयों, जिनमें मनुष्य सोचता है, में भी आवश्यक है। कैंसर के इलाज के लिये एक व्यक्ति को ऐसी नई खोज करनी पड़ेगी जो किसी और ने ना की हो। कोई सॉफ्टवेयर प्रोग्राम तभी सफल और प्रसिद्ध होगा जब वह एक नया विचार होगा। यह सच है कि हर एक व्यक्ति रचनात्मक बन सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि बच्चों में रचनात्मकता का विकास करना चाहिए क्योंकि एक नई खोज या निर्माण के लिये यह आवश्यक है।

2.9 प्रेरणा

ऐसी स्थिति में जब एक शिक्षक को लगे कि एक बच्चे में किसी कार्य को करने की क्षमता तो है लेकिन वह कार्य करना नहीं चाहता। इस स्थिति में प्रेरणा ही काम आती है। **कुछ विशिष्ट कार्य करने की इच्छा या किसी अलग ढंग में व्यवहार करने की जरुरत या इच्छा को प्रेरणा कहते हैं।** इसका अर्थ यह है कि आप जो भी करते हैं (जो भी खाते हैं, पढ़ते हैं या टेलीविजन देखते हैं) उसके पीछे कोई विशेष कारण या प्रेरणा होती है। प्रेरणा के भिन्न प्रकार निम्न हैं:

(1) शारीरिक प्रेरक: वे प्रेरक जिनका आधार मानव विज्ञान में है। जैसे,

- भूख (मुझे खाना चाहिए)
- प्यास (मुझे पानी चाहिए)

- कामुकता (मुझे शादी करनी है)

(2) सामाजिक प्रेरक: वे प्रेरक जो समाज द्वारा सीखे जाते हैं। जैसे,

- उपलब्धि प्रेरणा (मैं सफल कैरियर चाहता हूँ)
- शक्ति प्रेरणा (मैं जीतना चाहता हूँ)

मनोवैज्ञानिकों के लिये प्रेरणा का अध्ययन यह जानने के लिये एक प्रबल उपकरण का कार्य करता है कि हम जो करते हैं वह क्यों करते हैं? अगर हम किसी व्यक्ति की मनोदशा को समझें तो उसके द्वारा भविष्य में किए जाने वाले कार्यों का भी अनुमान लगा सकते हैं।

2.9.1 प्रेरणा के सिद्धांत

प्रेरणा से सम्बन्धित कई सिद्धांत हैं जो बताते हैं कि प्रेरणा क्यों महत्वपूर्ण है और कैसे हमारे कार्यों का निर्देशन करती है। कोई एक सिद्धांत प्रेरणा को अच्छी तरह नहीं समझा सकता है परन्तु सारे सिद्धांतों को समझकर हम इस विषय को भली-भाँति समझ सकते हैं। आइये इन्हें जानें।

प्रेरणा को हम सबसे पहले **प्रवृत्ति सिद्धांत** द्वारा समझ सकते हैं जिसके अनुसार हम अपनी प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होते हैं। परन्तु प्रवृत्ति हमारे सम्पूर्ण व्यवहार को प्रदर्शित नहीं करती।

एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत **प्रेरक सिद्धांत या ड्राइव रिडक्शन सिद्धांत** है। जिसके अनुसार हम जो भी करते हैं उसका उदेश्य हमारे शरीर के किसी तनाव को कम करना होता है। जैसे भूख लगने पर खाना व प्यास लगने पर पानी पीना। आपने कभी महसूस किया होगा कि भूख ना लगने पर भी कई बार हम खाते हैं। इसलिये केवल शरीर की जरूरत की पूर्ति पर ही हम नहीं खाते हैं।

प्रोत्साहन सिद्धांत (इंटेनसिव थ्योरी) इस कमी को पूरा करता है। इस सिद्धांत के अनुसार एक व्यक्ति कोई कार्य प्रोत्साहन पाने के लिये करता है। जैसे पेट भर जाने पर भी हम मीठा खाते हैं क्योंकि मीठा हमें पसन्द है।

एक अन्य सिद्धांत है **उत्तेजना सिद्धांत (एराउजल थ्योरी)।** इसके अनुसार व्यक्ति शारीरिक उत्तेजना के उच्चतम स्तर को प्राप्त करने के लिये कार्य करता है। जब व्यक्ति सहज और खुश होता है तो वह स्वयं को सर्वाधिक उच्चतम स्तर पर खुश महसूस करता है और प्रेरित होता है। हालांकि यह व्यक्ति और स्थान पर निर्भर करता है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. हार्वड माली द्वारा दिये गए बुद्धिमत्ता के विविध बुद्धिमत्ता के सिद्धान्त को समझाइये।

---

2. हम वस्तुओं को कैसे याद रखते हैं, सूचना प्रसंस्करण मॉडल द्वारा समझाइये।

2.10 सारांश

इस इकाई में आपने मनोविज्ञान क्षेत्र के साथ-साथ मानवीय व्यवहार को समझा। इस इकाई में आपने जाना कि क्यों मनोविज्ञान को व्यवहार व मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान कहा जाता है। आपने मनोविज्ञान की कई विचारधाराओं और मनोविज्ञान की शाखाओं के बारे में भी जाना। इसके अलावा मनोविज्ञान के कई बुनियादी शब्दों जैसे उत्तेजना, अवधारणा आदि को सीखा। इसके साथ-साथ आपने धारणा का बनना, याददाश्त, बुद्धिमत्ता, प्रेरणा व रचनात्मकता के बारे में भी पढ़ा।

2.11 पारिभाषिक शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक:** मनोविज्ञान का विशेषज्ञ।
- **काउंसलिंग (सलाह देना):** व्यक्तिगत, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक कठिनाईयों और समस्याओं को हल करने हेतु सलाह देना।
- **प्रेरक:** वातावरण में उपस्थिति कारक या ऊर्जा जो इन्द्रियों के माध्यम से प्रतिक्रिया का कारण बनता है।
- **पारगमन:** तंत्रिका संदेशों में किसी भी शारीरिक ऊर्जा व उत्तेजनाओं की प्रक्रिया।
- **प्रवृत्ति:** बिना सिखाया गया व्यवहार जो कठिन हो। जैसे, बिना सिखाये एक नवजात बच्चा माँ का दूध पीता है।
- **आत्मसम्मान:** हम खुद को और अपने मूल्यों को कैसे देखते हैं, उस पर निर्णय।

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1-d , 2-e , 3-b, 4-a , 5-f, 6-c
2. भाग 2.2.1 देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. भाग 2.3.1 देखें।
2. मनोवैज्ञानिक कारक जैसे पूर्व अनुभव, उम्मीद, संस्कृति, अवस्था और प्रेरक हमारी धारणा को प्रभावित करते हैं।
3. भाग 2.4.1 देखें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. भाग 2.6 देखें।
2. भाग 2.5 देखें।

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Berk, L.E. (2008). Exploring lifespan development. Pearson Education, Inc.: Boston.

2. Kaul V. (2010). Early Childhood Education Programme. NCERT: New Delhi

3. Roland, C. (2006). Young in Art: a developmental look at child art. Retrieved on 25th May from http://www.artjunction.org/young_in_art.pdf

4. Santrock, J.W. (2011). Child Development (13th ed.). McGraw-Hill: New York.

5. Shaffer, D. R., & Kipp, K. (2014). Developmental psychology: Childhood and adolescence (9th ed.). Cengage Learning: USA

खण्ड 2
गर्भावस्था में विकास

इकाई 3: वृद्धि एवं विकास

3.1प्रस्तावना
3.2उद्देश्य
3.3बाल विकास के अध्ययन की आवश्यकता
3.4 बाल विकास की परिभाषा
3.5 आनुवंशिक वंशानुक्रम
    3.5.1 निषेचन
    3.5.2 गुणसूत्र
    3.5.3 लिंग निर्धारण
3.6 वातावरण का प्रभाव: वातावरण तथा वंशानुक्रम के मध्य परस्पर क्रिया
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप गर्भावस्था के दौरान होने वाली वृद्धि एवं विकास के सम्बन्ध में पढ़ेंगे। यह इकाई आपको विकास के विभिन्न सिद्धांतों के सम्बन्ध में जागरुक करेगी। आप प्रत्येक विकास अवधि के लिए सामाजिक अपेक्षा के सम्बन्ध में पढ़ेंगे। इसके अतिरिक्त इस इकाई में आप वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले आनुवंशिक एवं वातावरणीय कारकों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे। तो आइये सर्वप्रथम इस इकाई के उद्देश्यों के सम्बन्ध में जानते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात आप;

- बाल विकास के अध्ययन की आवश्यकता को जान पायेंगे;
- मानव विकास के सिद्धांतों को समझेंगे;
- वृद्धि एवं विकास के अवरोधक एवं इसे सुगम बनाने वाले कारकों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे; तथा

- बाल विकास को प्रभावित करने वाले आनुवंशिक एवं वातावरणीय कारकों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 बाल विकास के अध्ययन की आवश्यकता

जैसे कि आप पहले ही समझ चुके हैं कि बाल विकास बाल्यावस्था में बच्चे के विकास का अध्ययन है। यह अध्ययन हमें समस्त मानव जाति को समझाने में सहायता करता है जिससे कि उनके जीवन को और अधिक सुगम बनाया जा सके। बच्चों का अध्ययन करना स्वाभाविक रूप से दिलचस्प होता है। बच्चे प्यारे, मन को आकर्षित करने वाले तथा अद्भुत प्राणी होते हैं। अत: इनका अवलोकन करना आनंददायक होता है।

निम्नलिखित कारणों से बाल विकास का अध्ययन करना आवश्यक है:

तीव्र विकास का समय: बच्चों एवं बाल विकास के अध्ययन के अंतर्गत उनके व्यवहार में होने वाले परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। मानव विकास के अंतर्गत शारीरिक वृद्धि, सामाजिक मेलजोल, भाषा का विकास, स्मरण शक्ति क्षमता तथा अन्य कई परिवर्तन आते हैं। बाल्यावस्था तीव्र विकास का समय होता है और ये सभी परिवर्तन बाल्यावस्था में अधिकतम होते हैं। अत: बाल विकास के अध्ययन द्वारा हम बच्चों में होने वाले परिवर्तनों को समझकर उनके इस तीव्र परिवर्तन के समय में उन्हें मानसिक तथा शारीरिक सहायता दे सकते हैं।

लंबे समय तक चलने वाला प्रभाव: बाल्यावस्था के दौरान होने वाले विकास एवं अनुभव व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण करते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि शुरुआत के वर्षों के अनुभवों एवं घटनाओं का व्यक्ति के बाद के विकास पर गहरा प्रभाव होता है। अत: बाल विकास का अध्ययन व्यक्ति के भविष्य के दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है।

बाल्यावस्था के दौरान होने वाली समस्याओं का समाधान: बाल विकास की मूलभूत प्रक्रियाओं का ज्ञान कभी-कभी बच्चे को वास्तविक सांसारिक समस्याओं जैसे गरीबी, निरक्षरता, नशा या जुर्म से बचाने में सहायता करता है।

पूर्व में बाल विकास को बच्चे के व्यवहार एवं उसमें होने वाले परिवर्तनों का अवलोकन करने पर केंद्रित किया गया था। किन्तु अब बाल विकास का आधुनिक विज्ञान का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें अब निम्न क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है:

1. प्रत्यक्ष व्यवहार परिवर्तनों का अध्ययन जो हम देख सकते हैं।
2. उस व्यवहार में परिवर्तन आने की वजह तथा उसका वर्णन।
3. व्यवहार में परिवर्तन के विभिन्न स्वरूप तथा इन स्वरूपों में अंतर का कारण।

व्यवहार में परिवर्तनों का अध्ययन शारीरिक वृद्धि, भावनाओं की अभिव्यक्ति में वृद्धि, भाषा विकास आदि को मापकर तथा उनका अभिलेख तैयार करके किया जाता है जो प्रत्येक बच्चे को समझने में सहायता करता है।

आइये अब हम यह जानें कि बाल विकास के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन किस प्रकार लाभदायक है :

1. **अपेक्षाएं:** बाल विकास के स्वरूपों का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि बच्चे से क्या अपेक्षाएं हैं, व्यवहार के नये स्वरूप के दिखने की अनुमानित आयु क्या है तथा सामान्यत: इन स्वरूपों के और अधिक परिपक्व रूप में परवर्तित होने का समय क्या है? बच्चे से एक ही समय में बहुत सारी अपेक्षाएं करना उचित नहीं होता है क्योंकि यदि बच्चा माता-पिता द्वारा बनाए हुए मानकों को प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसमें अपर्याप्तता की भावना विकसित हो जाती है। यदि अपेक्षाएं बहुत कम हों तो बच्चा अपनी पूरी क्षमता से कार्य नहीं कर पाता है।

2. **आयु मानदंड:** बच्चे से किस समय क्या अपेक्षाएं करनी चाहिए, इस बात की जानकारी बच्चे के विकास के अध्ययन में दिशा निर्देशों का कार्य करती है। जैसे लम्बाई-वजन पैमाना, आयु-वजन पैमाना, आयु-लम्बाई पैमाना, मानसिक आयु पैमाना तथा सामाजिक–भावानात्मक पैमाना। क्योंकि सभी बच्चों में विकास का लगभग एक ही स्वरूप होता है अत: प्रत्येक बच्चे का मूल्यांकन हम बच्चे की उम्र के लिए आदर्श अवस्था के आधार पर कर सकते हैं। यदि बच्चे में आदर्श अवस्था से कुछ परिवर्तन पाया जाता है तो उसका कारण जानने तथा उसमें सुधार करने की कोशिश की जा सकती है। उदाहरण के लिए एक ऐसे बच्चे के माता-पिता जिसका विकास धीमी गति से हो रहा हो, वे यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि उनका बच्चा सामान्य बच्चों की श्रेणी में आता है और उन्हें इस समस्या से बाहर आने की सलाह भी दी जा सकती है।

3. **मार्गदर्शन:** विकास के विभिन्न स्वरूपों की जानकारी से बच्चे के अभिवावक एवं अध्यापक को बच्चे का सही समय पर सही मार्गदर्शन करने तथा उसके विकास को आसान करने में मदद मिलती है। अवसर एवं उत्साहवर्धन की कमी सामान्य विकास में अवरोध उत्पन्न करती है। इसलिए एक ऐसे बच्चे के माता-पिता जो चलना सीख रहा हो उन्हें यह सलाह दी जा सकती है कि किस प्रकार बच्चे को उसके प्रयास में प्रोत्साहित किया जाए और यह तब तक किया जाना चाहिए जब तक कि वह इस कला में पारंगत ना हो जाए।

4. **तैयारी:** सामान्य विकास के सम्बन्ध में जानकारी अभिभावकों तथा अध्यापकों की बच्चे में होने वाले शारीरिक, रुचि सम्बंधित या व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तनों के लिए तैयार करने में मदद करती है। उदाहरणार्थ बच्चे को विद्यालय जाने से पूर्व उसे वहाँ के वातावरण एवं परिस्थितियों से अवगत कराना तथा उसे यह समझाना कि उसे वहाँ पर किस प्रकार के शिष्टाचार तथा व्यवहार का प्रदर्शन करना है। यह बच्चे के विद्यालय जाने पर होने वाले तनाव को कम करता है।

3.4 बाल विकास की परिभाषा

बाल विकास बच्चे के विकास के विभिन्न स्वरूपों तथा व्यवहार और क्षमताओं में परिवर्तन का वैज्ञानिक अध्ययन है। यह एक बहुत विस्तृत क्षेत्र है जिसके अंतर्गत मानव विकास तथा परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। यह एक विस्तृत क्षेत्र विकासात्मक मनोविज्ञान या मानव विकास का ही एक भाग है। विकासात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की ही एक शाखा है जिसमें मानव द्वारा अपने पूरे जीवनकाल में प्राप्त हुए अनुभवों का अध्ययन किया जाता है। बाल विकास अध्ययन का लक्ष्य उन कारकों की पहचान करना है जो जीवन के पहले दो दशकों में युवाओं में होने वाले परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं। यह विकास की विषय वस्तु या परिणाम की अपेक्षा विकास प्रक्रिया पर अधिक केंद्रित रहता है। उदाहरण के लिए भाषा विकास के अध्ययन में बाल विकास यह अध्ययन करने में केंद्रित रहता है कि बच्चे किस प्रकार बोलना सीखते हैं, उनके सीखने के विशिष्ट स्वरूप क्या हैं तथा वो परिस्थितियाँ जिससे उनके सीखने के स्वरूप में विविधता पैदा होती है बजाय इसके कि उनका शब्द संग्रह क्या है या वे क्या बोल रहे हैं।

बाल विकास अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं:

1. एक विकास अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने पर बनावट, व्यवहार, रुचि तथा लक्ष्य में होने वाले विशिष्ट परिवर्तनों का पता लगाना।
2. ये परिवर्तन कब हो रहे हैं, इस बात का पता लगाना।
3. ये परिवर्तन किस परिस्थिति में हो रहे हैं, इस बात का पता लगाना।
4. ये परिवर्तन बच्चे के व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, इसका पता लगाना।
5. यह पता लगाना कि इन परिवर्तनों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है या नहीं।
6. यह देखना कि क्या वह परिवर्तन व्यक्ति विशेष हैं या सभी बच्चों में पाया जाने वाला सामान्य परिवर्तन है।

बाल विकास एक विस्तृत क्षेत्र है जिसमें विकास की पूर्ण अवधि जो गर्भाशय से शुरू होती है से किशोरावस्था तक का अध्ययन किया जाता है।

विकास के सिद्धांत

विकास के प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. **विकास में परिवर्तन सम्मिलित है:** बाल विकास के अध्ययन में हम एक बढ़ते बच्चे में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं। ये परिवर्तन मात्रात्मक या गुणात्मक तथा शारीरिक या मानसिक कुछ भी हो सकते हैं। मात्रात्मक परिवर्तनों में आकार तथा संरचना में परिवर्तन आदि आते हैं। ये परिवर्तन अपेक्षाकृत मापने में आसान होते हैं। वृद्धि एक मात्रात्मक परिवर्तन है। इसके अतिरिक्त लम्बाई तथा वजन में वृद्धि, शब्दकोष विस्तार तथा शारीरिक क्षमताओं का अर्जन आदि मात्रात्मक परिवर्तन में आते हैं। बच्चे की वृद्धि के अंतर्गत शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ मानसिक परिवर्तन भी आते हैं। शारीरिक परिवर्तनों में सभी आतंरिक अंगों की वृद्धि आती है जिनमें मस्तिष्क भी शामिल है तथा शरीर परिधि, लम्बाई तथा वजन में परिवर्तन आदि आते हैं। मस्तिष्क के विकास से बढ़ते बच्चों में मानसिक परिवर्तन होते हैं जिससे अब उनकी रचनात्मक सोच, सीखने की क्षमता, याददाश्त, बोधज्ञान तथा तर्कशक्ति की क्षमता बढ़ जाती है।

   विकास क्रमिक तथा सुसंगत परिवर्तनों की प्रगतिशील श्रंखला है। ये परिवर्तन प्रगतिशील होते हैं क्योंकि ये दिशात्मक होते हैं तथा हमेशा आगे की दिशा को बढ़ते रहते हैं, कभी पीछे की दिशा में नहीं बढ़ते हैं। ये परिवर्तन क्रमिक तथा सुसंगत कहलाते हैं क्योंकि उससे पूर्व होने वाले परिवर्तन तथा उसके बाद में होने वाले परिवर्तनों में एक निश्चित सम्बन्ध होता है।

   वृद्धि एवं विकास दोनों भिन्न भिन्न हैं किन्तु उन्हें पृथक करना संभव नहीं है। ये दोनों साथ-साथ ही होते रहते हैं।

2. **विकास क्रमिक होता है:** यह एक स्पष्ट एवं पूर्वानुमानित पथ का अनुसरण करता है।

   a. विकास सरल से जटिल होता है: उदाहरण के लिए एक बच्चे में भाषा का विकास इसी क्रम में होता है। प्रारम्भ में भाषा विकास बच्चे के रोने से शुरू होता है जो धीरे-धीरे शब्दों में बदल जाता है तथा बाद में शब्द जटिल वाक्यों में परिवर्तित हो जाते हैं।

   b. विकास सामान्य से विशेष की ओर होता है: उदारणार्थ नवजात शिशु में संवेगों की शुरुआत उत्तेजना की व्यापक स्थिति से होती है जो धीरे-धीरे विभिन्न मनोभावों जैसे खुशी, प्यार, वात्सल्य,

उत्सुकता, डर, क्रोध आदि में परिवर्तित हो जाती है। शुरुआत में बच्चा अनजान एवं असामान्य व्यक्तियों के प्रति डर के रूप में प्रतिक्रिया देता है। बाद में उसका यह डर बहुत विशिष्ट हो जाता है तथा वह विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ जैसे रोना, छिपना तथा दूसरी ओर पलट जाना आदि देता है। जन्म के पश्चात बच्चे में केवल अपने हाथ और पैरों को लगातार हिलाने की ही क्षमता होती है और धीरे-धीरे यह क्षमता सरकने तथा फिर चलने में परिवर्तित हो जाती है।

c. शारीरिक विकास एवं वृद्धि में दो सिद्धांतों का पालन होता है।

- **मस्त्काधोमुखी सिद्धांत:** इस सिद्धांत के अनुसार विकास हमेशा सिर से पैर की ओर या ऊपर से नीचे को होता है। उदाहरण के लिए एक दो माह के भ्रूण का सिर उसके शरीर की कुल लम्बाई का आधा होता है। इसका अर्थ यह है कि भ्रूण का सिर शरीर के अन्य भागों के अनुपात में नहीं होता है क्योंकि मस्त्काधोमुखी सिद्धांत के अनुसार सिर, मस्तिष्क तथा आँखों का विकास धड़, हाथ तथा पैरों से पूर्व होता है। विकास का यही स्वरूप जन्म के बाद भी रहता है क्योंकि एक नवजात का सिर उसकी कुल शरीर लंबाई का एक चौथाई होता है। यह सिद्धांत हमें यह भी बताता है कि क्यों बच्चा अपने शरीर के ऊपरी भाग का प्रयोग निचले भाग से पूर्व करता है। जैसे बच्चा किसी वस्तु को पहले देखना सीखता है फिर उसे हाथ से पकड़ना, धड़ पर नियंत्रण सीखने से पहले वह सिर पर नियंत्रण करना सीखता है तथा पैरों का इस्तेमाल सीखने से पहले वह हाथों का प्रयोग सीख लेता है।

- **निकट दूर सिद्धांत:** इस सिद्धांत के अनुसार विकास नजदीक से दूर की ओर होता है अर्थात शरीर के केंद्रीय भागों से परिधि की ओर के भागों को होता है। जैसे बच्चा सबसे पहले कन्धे पर, फिर भुजाओं पर तथा सबसे बाद में उँगलियों पर नियंत्रण करना सीखता है। अत: शुरुआत में कोई भी शिशु अपने हाथ को आसानी से ऊपर उठा लेता है किन्तु किसी वस्तु को हाथ से नहीं पकड़ पाता।

3. मानसिक एवं शारीरिक विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है।

i. मानसिक एवं शारीरिक विकास एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने के लिए एक समान स्वरूपों का पालन करते हैं। जैसे सभी बच्चे खड़े होने या चलने से पहले बैठना सीखते हैं। यह क्रम कभी उल्टा नहीं होता है। इसके अलावा प्रत्येक बच्चे की विकास दर भिन्न होने का भी इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए एक तीव्र बुद्धि, एक सामान्य बुद्धि या एक मंद बुद्धि बच्चों की विकास दर भिन्न भिन्न होते हुए भी उनमें विकास का यही क्रम प्रदर्शित होता है।

एक सामान्य बुद्धि वाले बच्चे में विकास दर तीव्र बुद्धि वाले बच्चे से कम होगी तथा मंद बुद्धि के बच्चे से अधिक होगी।

ii. विकास गर्भाधान से मृत्यु तक की एक अविराम प्रक्रिया है। विकास की दर समय समय पर बदलती रहती है; कभी मंद कभी तीव्र।

iii. विभिन्न भागों का विकास विभिन्न दरों से होता है। उदाहरणार्थ, किशोरावस्था के दौरान पैर, हाथ तथा नाक का विकास अधिकतम होता है। कंधे तथा चेहरे का निचला हिस्सा बहुत धीमी गति से बढ़ता है। इसी प्रकार बौद्धिक क्षमता का विकास भी अलग-अलग दरों से होता है तथा यह अलग-अलग आयु में परिपक्व होता है। उदाहरण के लिए रचनात्मक सोच बाल्यावस्था में बहुत तीव्र गति से विकसित होती है तथा प्रारंभिक किशोरावस्था में ही अपनी परिपक्व अवस्था में पहुँच जाती है। तर्कशक्ति धीमी गति से विकसित होती है। सैद्धान्तिक तथा काल्पनिक धारणाओं की स्मरणशक्ति का विकास धीमी गति से होता है जबकि यथार्थपूर्ण वस्तुओं की स्मरण शक्ति तथा रटने की स्मरण शक्ति तीव्र गति से विकसित होती है।

4. विकास में व्यक्तिगत विभेद पाये जाते हैं: यद्यपि सभी बच्चों में विकास का क्रम समान होता है तथापि विकास की दर सभी के लिए भिन्न-भिन्न होती है।

5. मानव जीवनकाल की विकास की प्रमुख अवस्थाएं निम्न प्रकार हैं:

i. गर्भकालीन अवस्था (गर्भाधान से जन्म तक)

ii. नवजात अवस्था (जन्म से 2 सप्ताह)

iii. बचपनावस्था (2 सप्ताह से 2 वर्ष)

iv. बाल्यावस्था (2 वर्ष से किशोरावस्था)

   a. पूर्व बाल्यावस्था (2 से 6 वर्ष)

   b. उत्तर बाल्यावस्था (6 से 13 या 14 वर्ष)

v. वय: संधि (11 वर्ष से 16 वर्ष)

6. प्रत्येक विकासात्मक अवधि के प्रति सामाजिक अपेक्षाएं होती हैं: सामाजिक अपेक्षाओं का मतलब विकास कार्यों से है।

हेविगहर्ष्ट के अनुसार "कार्य वह हैं जो व्यक्ति विशेष के जीवल काल में एक निश्चित अवधि में सामने आते हैं जिनके सफलतापूर्वक पूर्ण हो जाने पर वो व्यक्ति को खुशी एवं सफलता के साथ बाद के मानकों की ओर ले जाते हैं तथा जिनमें असफल हो जाने पर व्यक्ति अप्रसन्न रहता है, वह समाज द्वारा स्वीकारा नहीं जाता तथा उसे बाद के कार्यों को पूरा करने में भी कठिनाई होती है।

यह विकासात्मक कार्य ही अभिभावकों एवं अध्यापकों को यह जानने योग्य बनाते हैं कि किस आयु में बच्चा उन व्यवहारों के विभिन्न स्वरूपों में कुशल हो जाएगा जो उसे सामंजस्य बनाने में मदद करेंगे। भिन्न-भिन्न विकास अवधियों के भिन्न-भिन्न कार्य होते हैं, हेविगहर्ष्ट के अनुसार ये निम्न हैं:

बचपनावस्था तथा पूर्व बाल्यावस्था (जन्म से 6 वर्ष)

- ठोस आहार लेना सीखना।
- चलना सीखना।
- बोलना सीखना।
- शरीर के अपशिष्ट पदार्थों पर नियंत्रण सीखना।
- लिंग भेद तथा लिंग के अनुसार विनम्रता आना।
- पढ़ाई के लिए तैयार होना।
- शारीरिक स्थिरता प्राप्त करना।
- सामाजिक या शारीरिक सत्यता की सामान्य धारणाएं बनाना।
- स्वयं को माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य व्यक्तियों से संबद्ध करना सीखना।
- सही तथा गलत के मध्य फर्क करना सीखना तथा अपना विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था (6 से 12 वर्ष)

- सामान्य खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक योग्यताएं सीखना।
- एक बढ़ रहे जीव के रूप में स्वयं के प्रति अच्छा रवैया बनाना।
- अपने हमउम्र साथियों के साथ आगे बढ़ना सीखना।
- पुरुष या स्त्री की उचित सामाजिक भूमिकाओं को विकसित करने की शुरुआत।
- पढ़ने, लिखने तथा गणना करने से सम्बंधित आधारभूत कौशलों का विकास।
- दिन प्रतिदिन के जीवन से सम्बंधित आवश्यक सिद्धांतों का विकास।
- विवेक, नैतिकता की भावना तथा मूल्यों के पैमाने का विकास।
- सामाजिक समूहों और संस्थाओं के प्रति रुख का विकास।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्राप्ति।

किशोरावस्था:

- दोनों लिंगों के हमउम्र साथियों के साथ नए तथा परिपक्व सम्बन्ध स्थापित करना।
- स्त्री या पुरुष की सामाजिक भूमिका प्राप्त करना।
- स्वयं की शारीरिक बनावट को स्वीकारना तथा स्वयं के शरीर का प्रभावपूर्ण प्रयोग।
- सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार की इच्छा करना, उसे स्वीकार करना तथा प्राप्त करना।
- माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से भावनाओं की स्वतंत्रता प्राप्त करना।
- एक लाभदायक आजीविका की तैयारी।

- विवाह एवं पारिवारिक जीवन की तैयारी।
- व्यवहार को निर्देशित करने हेतु मूल्यों के संग्रह तथा नैतिक प्रणाली की प्राप्ति।

7. शुरुआती विकास बाद के विकास की अपेक्षा अधिक नाजुक होता है।

प्रारंभिक वर्षों के दौरान स्थापित प्रवृत्ति, स्वभाव तथा व्यवहार का स्वरूप बच्चे द्वारा बाद के जीवन में किए जाने वाले व्यक्तिगत तथा सामाजिक सामंजस्य को प्रभावित करते हैं। शुरुआती निर्माण स्थायी प्रवृत्ति के होते हैं तथा बच्चे के व्यवहार तथा रवैये को जीवन पर्यन्त प्रभावित करते हैं।

वृद्धि एवं विकास के अवरोधक तथा सहजकर्ता

कई बच्चे कुछ प्रकार के जन्म दोषों के साथ पैदा होते हैं। इनमें से कुछ जन्म दोष आनुवंशिक होते हैं तथा कुछ वातावरणीय कारकों के कारण होते हैं। कुछ अन्य दोष इन दोनों कारकों के संयोग के कारण होते हैं। कुछ भ्रूणों का अनायास गर्भपात होता रहता है या वे मृत पैदा होते हैं। यहाँ तक कि जन्म से पहले भी कई वातावरणीय कारक जैसे गर्भवती महिला द्वारा लिया गया भोजन, उसके द्वारा ली गयी दवा, बीमारी, उसके शरीर पर पड़ने वाला विकिरण यहाँ तक कि उसे महसूस होने वाले मनोभाव, ये सभी माँ के गर्भ में भी बच्चे को प्रभावित कर सकते हैं। गर्भ में विकसित हो रहे भ्रूण को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:

1. **माँ का पोषण:** यहाँ कई शोध साक्ष्य हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि माँ के पोषण का बच्चे की मानसिक तथा शारीरिक स्वस्थता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ : यदि माँ के आहार में आयोडीन की कमी होगी तो बच्चे में बौनापन हो सकता है तथा जो कम सक्रिय थायरायड से भी ग्रसित हो सकता है जिससे बच्चे में शारीरिक तथा मानसिक विषमताएं पैदा हो सकती हैं। सामान्यतया जब कोई गर्भवती स्त्री स्वस्थ आहार लेती है तो उसे गर्भावस्था तथा बच्चे के जन्म के समय कम परेशानियों का सामना करना पड़ता है तथा वो एक स्वस्थ बच्चे को जन्म देती है। अपर्याप्त मातृ आहार या गर्भावस्था के दौरान कुपोषण से अपरिपक्व शिशु या कम वजन के शिशु या मृत शिशु या शिशु में बौद्धिक कमी हो सकती है।
2. **गर्भवती महिला द्वारा दवाओं का सेवन:** गर्भवती महिला जो कुछ भी खाती है वह प्लेसेंटा को पार कर भ्रूण तक पहुँच जाता है। अत: महिला द्वारा ली गयी दवा भी प्लेसेंटा को पार कर सकती है। यदि इन्हें गर्भावस्था की शुरुआत में लिया गया हो तो ये सर्वाधिक नुकसानदायक होती हैं। कुछ दवाएं ऐसी भी होती हैं जिन्हें गर्भावस्था के दौरान लेना सुरक्षित होता है तथा बहुत सारी ऐसी हैं जो नुकसानदायक होती हैं जैसे स्ट्रेपटोमायिसिन, टेट्रासाइक्लिन तथा विटामिन ए, बी 6, सी, डी एवं के का अत्यधिक सेवन। दवाएं गर्भस्थ शिशु को तीन प्रकार से प्रभावित करती हैं:

- दवा बिना कोई बदलाव हुए सीधे प्लेसेंटा को पार कर जाती हैं तथा उसी प्रकार प्रभवित करती हैं जिस प्रकार माँ को करती हैं जैसे हृदय एवं श्वास दर को कम कर देती हैं।
- दवाएं माँ के शरीर के भीतर या फिर प्लेसेंटा या भ्रूण में कुछ नए पदार्थों का निर्माण करती हैं तथा उनमें विषमताएं पैदा करती हैं।
- दवाएं मातृ शरीर क्रिया विज्ञान को परिवर्तित कर देती हैं जिससे शिशु जन्म के समय माँ को बेहोश करने पर उसका रक्त दाब कम हो सकता है तथा शिशु के लिए ऑक्सीजन की कमी हो सकती है।

नियम के अनुसार गर्भवती स्त्री को दवाओं का सेवन कम से कम करना चाहिए। तथा अति आवश्यक होने पर भी केवल ऐसी दवाओं का सेवन करना चाहिए जो भ्रूण को नुकसान न पहुंचाएं।

धूम्रपान: जब एक गर्भवती स्त्री धूम्रपान करती है तो तम्बाकू में उपस्थित निकोटीन उसके रक्त में प्रवेश कर जाता है तथा वह भ्रूण को प्रभावित करता है। शोध बताते हैं कि धूम्रपान करने वाली महिलाओं में अनायास ही गर्भपात या मृत शिशु या जन्म के तुरंत बाद शिशु की मृत्यु जैसी घटनाएं होती रहती हैं। इन महिलाओं में छोटे तथा कम वजनी बच्चे के होने की संभावना अधिक रहती है। धूम्रपान करने से बच्चे की हृदय दर भी बढ़ सकती है। यह शिशु के लिए ऑक्सीजन तथा पोषण को कम कर देता है। धूम्रपान से गर्भवती स्त्री की भूख कम हो जाती है जिससे उसके द्वारा लिया गया आहार उसके तथा शिशु के लिए पर्याप्त नहीं होता है। खराब पोषण से गर्भकालीन परेशानियाँ बढ़ सकती हैं तथा अवधिपूर्व शिशु के होने की संभावना बढ़ जाती है।

शराब का सेवन: शराब के अत्यधिक सेवन से बच्चे की वृद्धि अवरोधित हो जाती है जिसके कारण जन्म के समय बच्चा बहुत छोटा होता है तथा बाद में भी वह सामान्य होने में विफल रहता है। अवरोधकता में मंदबुद्धि तथा क्रियात्मक विकास में विलम्ब आते हैं। बच्चे का सिर असामान्य रूप से छोटा होता है, बच्चा हृदय रोग से पीड़ित हो सकता है, चेहरे की असामान्यता हो सकती है और जोड़ों में विकृति हो सकती है। जन्म के समय बच्चा असामान्य लक्षण जैसे कंपन, चिड़चिड़ापन, घबराहट तथा उदर विस्तार आदि प्रदर्शित करता है।

नशा करना: ऐसी गर्भवती स्त्री जो मोरफीन, हीरोइन तथा कोकीन आदि नशे करने की आदी हो, ऐसी स्त्री का बच्चा समय अवधि पूर्व ही हो जाता है। ऐसे बच्चे माँ के गर्भ से ही उस नशे के आदि हो जाते हैं जो नशा माँ करती है। ऐसे बच्चों में जन्म के समय कई लक्षण जैसे बेचैनी, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, उबासी लेना, छींकना, कांपना, बेहोशी, बुखार तथा उल्टी आदि दिखायी देते हैं। कभी-कभी ये लक्षण इतने गंभीर हो जाते हैं कि बच्चे की मृत्यु तक हो सकती है।

माँ की अस्वस्थता: संक्रामक रोगों जैसे चेचक, खसरा, गलसुआ, स्कार्लेट ज्वर आदि के जीवाणु माँ से बच्चे में पहुँच जाते हैं परिणामस्वरूप बच्चा बीमार पड़ सकता है या फिर उसकी

गर्भाशय के भीतर ही मृत्यु भी हो सकती है। यदि एक गर्भवती महिला क्षय रोग या मूत्र संक्रमण से ग्रसित है तो उसके बच्चे में जन्म दोष होने की संभावना रहती है।

माँ का विकिरण से संपर्क: एक्स-रे गुणसूत्रों को तोड़ सकते हैं। विकिरण जीन में परिवर्तन कर देते हैं जिससे नई विशेषताओं के जीव की व्युत्पत्ति होती है। यदि गर्भवती महिला दूसरे या छठे सप्ताह में विकिरण के संपर्क में आये तो बच्चे में कई प्रकार की विषमताएं जैसे मानसिक विकलांगता, सिर में असमानता, खण्डतालु, आपस में जुड़े हुए पैर, संवेदी क्षमता में कमी जैसे अंधापन, बहरापन आदि तथा अन्य मानसिक एवं शारीरिक विषमताएं हो सकती हैं।

आगे बढ़ने से पहले आइये कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 1

सही अथवा गलत बताइये।

1. उत्तर बाल्यावस्था 6 से 12 वर्ष की अवस्था है।
2. माँ के पोषण का बच्चे के विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. विकिरण के प्रभाव से गर्भ में पल रहे बच्चे में अंधापन, बहरापन तथा अन्य मानसिक एवं शारीरिक विषमताएं हो सकती हैं।
4. गर्भवती महिला द्वारा धूम्रपान करने से बच्चे की हृदय गति बढ़ने का खतरा रहता है।

3.5 आनुवंशिक वंशानुक्रम

3.5.1 निषेचन

मासिक धर्म शुरू होने के लगभग 14 दिन बाद निषेचन की प्रक्रिया होती है। यह पुरुष के शुक्राणु से स्त्री के अंडाणु का संयोग होने से होती है जिसमें एकाकी कोशिका का निर्माण होता है। यह एकाकी कोशिका आगे के विभाजन होने से पूर्व तक डिम्ब कहलाती है। अंडाणु मानव शरीर की सबसे बड़ी कोशिका होती है। प्रत्येक अंडाणु का अपना एक आवरण या कोष होता है जिसे फॉलिकल कहते हैं। एक यौन रूप से परिपक्व स्त्री में प्रत्येक 28 दिन में किसी भी एक अंडाशय में से एक परिपक्व फॉलिकल टूटकर एक अंडाणु को मुक्त कर देता है। निष्कासन की यह प्रक्रिया अंडोत्सर्ग कहलाती है। निष्कासित अंडाणु फैलोपियन ट्यूब की सहायता से गर्भाशय की ओर जाता है। फैलोपियन ट्यूब में ही निषेचन की प्रक्रिया संपन्न होती है। टैडपोल के समान दिखने वाला शुक्राणु शरीर की सबसे छोटी कोशिका है जोकि अंडाणु से कई गुना ज्यादा क्रियाशील होता है। शुक्राणुओं का निर्माण वृषण में होता है तथा एक परिपक्व पुरुष में लगभग 10 करोड़ शुक्राणु प्रतिदिन बनते हैं। एक वीर्यस्खलन के दौरान लाखों की संख्या में शुक्राणु स्त्री के शरीर में प्रवेश करते हैं जो योनिमार्ग से तैरते हुए

फैलोपियन ट्यूब तक पहुँच जाते हैं। बहुत कम शुक्राणु ही इस दूरी को तय कर पाते हैं। एक से अधिक शुक्राणु भी स्त्री के अंडाणु तक पहुँच सकते हैं किन्तु निषेचन केवल कोई एक शुक्राणु ही कर पाता है जिससे एक नए जीव की उत्पत्ति होती है। एक शुक्राणु उत्सर्जित होने के 24 से 48 घंटे तक निषेचन करने की क्षमता रखता है। जबकि एक अंडाणु उत्सर्जित होने के केवल 24 घंटे तक ही निषेचित किया जा सकता है। यदि गर्भाधान की प्रक्रिया नहीं होती है तो शुक्राणु स्त्री की श्वेत रुधिर कणिकाओं द्वारा समाप्त कर दिया जाता है तथा अंडाणु योनिमार्ग से होते हुए बाहर निकल जाता है।

3.5.2 गुणसूत्र

हमारे शरीर की आधारीय इकाई कोशिका है। प्रत्येक कोशिका का एक नियंत्रण केन्द्र होता है जिसे केन्द्रक कहते हैं। प्रत्येक केन्द्रक में कुछ छड़ी के आकार की संरचनाएं होती हैं जिन्हें गुणसूत्र कहते हैं। ये अनुवांशिक सूचनाओं को संग्रहित एवं संचारित करते हैं। मानव शरीर में गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है। ये जोड़े में होते हैं अर्थात 23 जोड़े। प्रत्येक जोड़े में एक पिता से तथा एक माता से विरासत में मिलता है। शुक्राणु तथा अंडाणु दोनों में 23 गुणसूत्र होते हैं। जब ये दोनों आपस में मिलते हैं तो एक कोशिकीय जीव बनाते हैं जिसे जायगोट या युग्मनज कहते हैं जिसमें 46 गुणसूत्र होते हैं।

3.5.3 लिंग निर्धारण

गर्भाधान की प्रक्रिया के दौरान बनाने वाले युग्मनज में 23 गुणसूत्र शुक्राणु से तथा 23 गुणसूत्र अंडाणु से आते हैं। ये गुणसूत्र स्वयं को जोड़ों में व्यवस्थित कर लेते हैं। इन जोड़ों में से एक जोड़ा लिंग गुणसूत्र कहलाता है जोकि बच्चे के लिंग का निर्धारण करता है। प्रत्येक अंडाणु में लिंग गुणसूत्र X गुणसूत्र होता है जबकि शुक्राणु में यह X या Y कुछ भी हो सकता है। जब एक शुक्राणु जोकि एक X गुणसूत्र का वाहक है वह X गुणसूत्र वाले अंडाणु से मिलता है तो युग्मनज X X होगा तथा होने वाला शिशु लड़की होगी और यदि कोई शुक्राणु Y गुणसूत्र वाला है तो वह अंडाणु से मिलकर X Y गुणसूत्र वाला युग्मनज बनाएगा तथा आने वाला शिशु लड़का होगा। अत: इससे स्पष्ट है कि पिता ही होने वाले बच्चे के लिंग निर्धारण के लिए जिम्मेदार होता है।

गुणसूत्र एक रासायनिक पदार्थ डी-ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल या डी एन ए से बने होते हैं। डी एन ए लंबे तथा आपस में गुंथे हुए सीढ़ी की संरचना के सामान अणु होते हैं। डी एन ए में खुद से अपनी प्रतिकृति बनाने की क्षमता होती है। इसी का परिणाम है कि गर्भाधान के दौरान निर्मित एक कोशिकीय युग्मनज की इतनी प्रतिकृतियां बन जाती हैं कि पूरे मानव शरीर का निर्माण हो जाता है। कोशिकाओं के इस प्रकार प्रतिकृति बनाने की प्रकिया सूत्री विभाजन या माइटोसिस कहलाती है जिसमें प्रत्येक कोशिका में मूल कोशिका के सामान ही गुणसूत्र होते हैं।

मानव शुक्राणु या अंडाणु बीज कोशिकाएं या युग्मक कहलाते हैं। जिनमें शरीर की अन्य कोशिकाओं की तुलना में आधे या 23 गुणसूत्र होते हैं। इन दोनों बीज कोशिकाओं के जुड़ने से एक नए जीव का विकास होता है। ये बीज कोशिकाएं एक कोशिकीय विभाजन मिओसिस या अर्धसूत्रीविभाजन द्वारा बनाती हैं। कोशिकीय विभाजन की इस प्रक्रिया के दौरान प्रत्येक कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या आधी हो जाती है। अर्धासूत्रीविभाजन के दौरान अगल बगल के गुणसूत्रों में जीन का स्थानांतरण भी होता है। वह विशेष प्रक्रिया जिसमें गुणसूत्र लम्बाई में दो या अधिक स्थानों से टूट जाते हैं तथा अगल बगल के गुणसूत्र इन टूटे हुए भागों को आपस में बदल लेते हैं, संकरण कहलाती है। इस प्रक्रिया के पश्चात जिसमें जीन की अदला बदली होती है एक नए वंशानुगत संयोजन का सृजन होता है। पुरुषों में प्रत्येक अर्धासूत्री विभाजन के पश्चात चार शुक्राणुओं का निर्माण होता है जबकि महिलाओं में केवल एक अंडाणु बनाता है।

जीनोटाइप एवं फीनोटाइप

जीनोटाइप: यह प्रत्येक व्यक्ति की आनुवंशिक रचना होती है।

फीनोटाइप: प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक एवं व्यवहारिक विशेषताएं आनुवंशिक एवं वातावरणीय दोनों विशेषताओं द्वारा निर्धारित की जाती हैं। यह एक तरीका है जिससे जीनोटाइप को देखने तथा मापने योग्य विशेषताओं द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। इनके अंतर्गत शारीरिक विशेषताओं में लम्बाई, वजन तथा बालों का रंग आदि आते हैं तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं में व्यक्तित्व तथा बुद्धिमत्ता आदि आते हैं।

यह समझने के बाद कि किस प्रकार आनुवंशिक गुण माता-पिता से बच्चों में हस्तांतरित होते हैं हम यह भी समझ जायेंगे कि जन्म दोष तथा आनुवंशिक बीमारियाँ किस प्रकार होती हैं।

असामान्य जीन सामान्य रूप से ही बच्चों में चले जाते हैं। जब माता-पिता में से किसी एक में एक विकृत जीन हो तथा दूसरे में दोनों जीन सामान्य हों अर्थात कोई विकार न हो तो उनकी हर संतान में विकार होने के 50% संभावना होगी तथा प्रत्येक संतान में सामान्य जीन आने की समान संभावनाएं हैं। यदि दोनों माता-पिता में एक एक जीन विकृत हो तो ये जुड़कर संतान में विकार पैदा करेंगे। माता-पिता विकार से अप्रभावित रहते हैं, वो केवल विकार के वाहक होते हैं। टे सैक एक ऐसी ही आनुवंशिक बीमारी है जिसमें मस्तिष्क कोशिकाओं में वसा को तोड़ने वाले एंजाइम की कमी हो जाती है जिससे मस्तिष्क का क्रमिक क्षय होता रहता है और बच्चे की 6 साल से पूर्व ही मृत्यु हो जाती है। एक अन्य आनुवंशिक बीमारी सिकल सैल अनीमिया है जो माता एवं पिता दोनों से विकृत जीन आने से होती है। इसमें बच्चे की लाल रुधिर कणिकाओं में हीमोग्लोबिन नहीं होता है।

3.6 वातावरण का प्रभाव: वंशानुक्रम तथा वातावरण के मध्य परस्पर क्रिया

बाल विकास के अध्ययन में सबसे विचारणीय विषय है गुण या स्वभाव और पालन पोषण। यहाँ वाद विवाद इस बात पर है कि बच्चे के विकास को प्राथमिक रूप से क्या प्रभावित करता है उसका स्वभाव या उसका पालन पोषण। स्वभाव या गुण से तात्पर्य बच्चे के जैविक वंशानुक्रम से है तथा पालन पोषण का तात्पर्य बच्चे को अपने आस-पास के वातावरण से मिलने वाले अनुभव से है। सामान्यतया ये माना जाता है कि विकास को केवल स्वभाव या केवल पालन पोषण के आधार पर समझाया नहीं जा सकता है। अत: स्वभाव – पालन पोषण विवाद दो मुद्दों पर आकर समाप्त हो जाता है पहला जैविक वंशानुक्रम या वातावरणीय अनुभवों में से विकास पर कौन अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है और दूसरा कि ये दोनों कारक विकास में किस प्रकार अपना सहयोग देते हैं। उदाहरण के लिए खेलते समय बच्चे के आक्रामक होने का क्या कारण है? क्या यह कि ये निराशा के प्रति एक जैविक प्रतिक्रिया है या यह कि उसने यह सब अपने आस-पास के वातावरण या अपने माता-पिता से सीखा है।

यहाँ बहुत सारे आनुवंशिक तथा शुरुआती वातावरणीय प्रभाव हैं जो विकास की कार्यप्रणाली को बदल सकते हैं। एक व्यक्ति अपने पूर्वजों से बहुत अधिक लम्बाई का गुण प्राप्त कर सकता है किन्तु वह किस हद तक उस लम्बाई को प्राप्त करेगा इस पर उसके द्वारा लिए गए आहार का बहुत प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि वातावरण तथा वंशानुक्रम दोनों ही बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं तथा दोनों ही विकास में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिये।

1. निषेचन की प्रक्रिया ..... में संपन्न होती है।
2. मानव शरीर में कुल गुणसूत्रों की संख्या ..... होती है।
3. कोशिकाओं की अपना प्रतिकृति बनाने की प्रक्रिया ..... कहलाती है।
4. सिकल सैल अनीमिया एक ..... बीमारी है।

3.7 सारांश

इस इकाई में आपने गर्भावस्था के दौरान होने वाले वृद्धि एवं विकास के सम्बन्ध में पढ़ा। इसके अतिरिक्त आपने विकास के विभिन्न सिद्धांतों के सम्बन्ध में पढ़ा। आपने प्रत्येक विकास अवधि के लिए सामाजिक अपेक्षा के सम्बन्ध में पढ़ा। साथ ही साथ इस इकाई में आपने वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले आनुवंशिक एवं वातावरणीय कारकों के सम्बन्ध में भी पढ़ा।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **बाल विकास:** बच्चे के विकास के विभिन्न स्वरूपों तथा व्यवहार और क्षमताओं में परिवर्तन का वैज्ञानिक अध्ययन।
- **विकासात्मक मनोविज्ञान:** मनोविज्ञान की ही एक शाखा है जिसमें मानव द्वारा अपने पूरे जीवनकाल में प्राप्त हुए अनुभवों का अध्ययन किया जाता है।
- **निषेचन:** पुरुष के शुक्राणु से स्त्री के अंडाणु का संयोग।
- **डी एन ए:** डी ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही
2. गलत
3. सही
4. सही

अभ्यास प्रश्न 2

1. फैलोपियन ट्यूब
2. ४६
3. सूत्री विभाजन
4. आनुवंशिक

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
2. Brisbane, H.E. (2010), The Devveloping Child, Mc Gram Hill, Glencoe.

3. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.

4. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.

5. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.

इकाई 4: गर्भावस्था में देखभाल

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 मातृ एवं शिशु देखभाल का महत्व
4.4 स्त्री प्रजनन तंत्र
4.5 गर्भावस्था
  4.5.1 गर्भावस्था के लक्षण
  4.5.2 गर्भावस्था की कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ
  4.5.3 प्रसवपूर्व देखभाल
4.6 शिशु जन्म के पश्चात माता एवं शिशु की देखभाल
4.7 सारांश
4.8 पारिभाषिक शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

किसी भी महिला के जीवन में गर्भावस्था एक महत्वपूर्ण तथा सुन्दर चरण है। इस अवस्था में महिला के शरीर के भीतर पल रहे अजन्मे शिशु अर्थात् भ्रूण की वृद्धि और विकास होता है। शारीरिक आवश्यकताओं की दृष्टि से किसी भी स्त्री के जीवन की यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इसलिए इस अवधि में गर्भवती स्त्री को सम्पूर्ण देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। प्रस्तुत इकाई में हम स्त्री के प्रजनन तंत्र का अध्ययन करेंगे। हम यह जानेंगे कि गर्भावस्था क्या है तथा इस अवस्था में एक स्त्री में क्या-क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं। गर्भावास्था कई मुख्य लक्षण होते हैं। इस अवस्था में गर्भवती स्त्री को आमतौर पर कुछ समस्याएं भी होती हैं जिनका विवरण प्रस्तुत इकाई में दिया गया है तथा यह भी बताया गया है कि इन समस्याओं का निवारण गर्भवती स्त्री की उचित देखभाल द्वारा किस प्रकार किया जा सकता है। गर्भावस्था तथा प्रसव के बाद स्त्री तथा शिशु की उचित देखभाल अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि एक स्वस्थ माँ से ही एक स्वस्थ शिशु का जन्म होता है तथा एक स्वस्थ शिशु ही भविष्य में एक स्वस्थ वयस्क बनता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात:

- आप माता तथा शिशु देखभाल के सम्बन्ध में जान पायेंगे;
- स्त्री प्रजनन तंत्र तथा गर्भावस्था को समझ पायेंगे;
- गर्भावस्था के लक्षणों तथा समस्याओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- गर्भवती स्त्री तथा प्रसव के बाद माता तथा शिशु की देखभाल के बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

4.3 मातृ एवं शिशु देखभाल का महत्व

भारत एक विकासशील देश है जहां अधिकतर गर्भवती महिलाएं खराब सेहत से प्रभावित हैं तथा उन्हें गर्भावस्था एवं शिशु जन्म के दौरान समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हमारे देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों, गरीबी तथा अपर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण कई गर्भवती महिलाएं जरूरी सुविधाओं से वन्छित रह जाती हैं। इसके फलस्वरूप कुपोषण, रक्तस्राव, गर्भपात, गर्भावस्था तथा शिशु जन्म में कठिनाइयाँ तथा संक्रमण आदि के कारण मातृ तथा शिशु मृत्यु के परिणाम सामने आते हैं। इसी कारण वर्तमान में भारत में मातृ एवं शिशु मृत्यु दर बहुत बढ़ गयी है। बहुत सारी महिलाओं की शिशु जन्म के समय ही मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार कई शिशु या तो जन्म लेते ही या जन्म के कुछ समय बाद मर जाते हैं। और यदि शिशु बच भी जाए तो खराब मातृ पोषण का उसकी सेहत, वृद्धि, विकास तथा अस्तित्व की समस्त संभावनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

इनमें से अधिकतर परेशानियाँ गर्भावस्था, शिशु जन्म के समय तथा बाद में आधारीय मातृ तथा शिशु देखभाल द्वारा दूर की जा सकती हैं। मातृ एवं शिशु देखभाल का उद्देश्य माता एवं शिशु दोनों की स्वास्थ्य सुरक्षा तथा सुगमता है। आजकल औद्यौगिकीकरण के फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे हैं तथा एकल परिवारों में बढ़ोत्तरी हो रही है। अत: परिवारों में वयस्कजनों के अभाव के कारण आज की पीढ़ी की लड़कियों को शिशु तथा मातृत्व देखभाल का ज्ञान होना अति आवश्यक है। यह ज्ञान उन्हें एक स्वस्थ शिशु को जन्म देने में मदद करेगा तथा शिशु एवं स्वयं को गर्भावस्था एवं प्रसव के समय होने वाली परेशानियों से बचायेगा। इसके साथ साथ शिशु जन्म के पश्चात विभिन्न विकास अवस्थाओं में होने वाले वृद्धि एवं विकास को आसान बनाएगा।

4.4 स्त्री प्रजनन तंत्र

स्त्री प्रजनन तंत्र शरीर के पैल्विक क्षेत्र में पेट की दीवार तथा निचले कशेरुक दंड के मध्य स्थित होता है। इसके मुख्य अंग अंडाशय, अण्डवाहिनी, गर्भाशय तथा योनि हैं।

a. अंडाशय

अंडाशय का जोड़ा गर्भाशय के दोनों और स्थित होता है। इनका कार्य प्रजनन के लिए आवश्यक अंडे उत्पन्न करना है। ये अंडे जन्म के समय अपरिपक्व तथा अक्रियाशील होते हैं। अण्डों के परिपक्व होने की प्रक्रिया यौवनावस्था के आरम्भ में ही शुरू हो जाती है। माह में प्रत्येक 28 वें दिन एक अंडाणु अंडाशय से मुक्त हो जाता है। यह प्रक्रिया अंडोत्सर्ग कहलाती है। यह अंडाणु आकार में गोल गतिविधि में असमर्थ, स्थिर,अक्रियाशील तथा नग्न आँखों से देखा जा सकने वाला होता है।

b. अण्डवाहिनी

अण्डवाहिनी पतली नलिका समान संरचना का एक जोड़ा होता है जो अंडाशय को गर्भाशय से जोड़ता है। अंडाशय से मुक्त हुआ परिपक्व अंडाणु अण्डवाहिनी से होता हुआ गर्भाशय में पहुँचता है तथा इस अंडाणु को गर्भाशय में पहुँचने में 3 से 4 दिन लगते हैं। अंडाणु स्वयं में अचल होता है तथा यह अण्डवाहिनी में होने वाले पेशीय संकुचन तथा यहाँ उपस्थित बालों के सामान संरचनाओं की गति द्वारा आगे को धकेला जाता है।

c. गर्भाशय

गर्भाशय नाशपाती के आकार का एक पेशीय अंग है जोकि मल मूत्र मार्ग के मध्य में स्थित होता है। इसका निचला भाग पतला तथा ऊपरी भाग चौड़ा होता है। गर्भाशय का पतला वाला भाग गर्भद्वार (cervix) तथा चौड़ा भाग गात्र (fundus) कहलाता है। गर्भाशय में तीन द्वार होते हैं जिनमे से दो अण्डवाहिनियों में खुलते हैं तथा एक योनि में खुलता है। गर्भाशय की दीवार में रक्त वाहिनियों का घना जाल होता है।

d. योनि

योनि गर्भाशय तथा अन्य प्रजनन अंगों तक पहुँचने का मार्ग है। इसे जनन मार्ग भी कहा जाता है क्योंकि शिशु इसी मार्ग से बाहर आकर जन्म लेता है। मासिक धर्म से समय रक्त का प्रवाह भी इसी मार्ग द्वारा होता है। सहवास के दौरान पुरुष प्रजनन अंग योनि के भीतर प्रविष्ट करता है तथा शुक्राणु निहित वीर्य यहाँ निकाल देता है। शुक्राणु गतिशील होते हैं तथा वे तैरते हुए अण्डवाहिनी में उपस्थित अंडाणु तक पहुँच जाते हैं।

पुरुष शुक्राणु तथा स्त्री अंडाणु के संयोग को निषेचन कहते हैं जिसके पश्चात एक नए जीव का विकास होता है। गर्भाशय दीवार की श्लेष्म ग्रंथियों में परिवर्तन के फलस्वरूप ही नए जीव के आने की तैयारी होती है। इसमें बहुत तीव्र रक्त प्रवाह होता है जिससे इसकी मोटाई बढ़ती जाती है। जब गर्भाधान की प्रक्रिया नहीं होती तथा अंडाणु का निषेचन नहीं होता, ये सभी प्राकृतिक परिवर्तन समाप्त हो जाते हैं तथा मासिक धर्म हो जाता है। यह वही प्रक्रिया है जिसके द्वारा गर्भाशयी श्लेष्म ग्रंथियां तथा इसमें जा रहा रक्त मासिक धर्म के रक्त प्रवाह के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

4.5 गर्भावस्था

गर्भावस्था वह अवस्था है जब स्त्री के शरीर में अजन्मे बच्चे अर्थात भ्रूण की वृद्धि एवं विकास होता है। इस अवस्था में स्त्री के शरीर में कई शारीरिक परिवर्तन होते हैं। मनुष्यों में गर्भावस्था (गर्भाधान से शिशु जन्म तक) लगभग 40 सप्ताह की एक लंबी अवधि होती है। स्त्री के अंडाणु तथा पुरुष के शुक्राणु के संयोजन से एक कोशिकीय युग्मनज अर्थात जायगोट का निर्माण होता है। यह जायगोट एक भ्रूण के रूप में विकसित होता है जो गर्भावस्था की समाप्ति पर शिशु के रूप में बाहर आ जाता है। गर्भावस्था के दौरान अजन्मे शिशु की वृद्धि तथा विकास के लिए स्त्री के गर्भाशय में कुछ विशिष्ट सहायक अंगों का विकास होता है। ये निम्नलिखित हैं :

1. **गर्भनाल (umblical cord)**: गर्भनाल शिशु की जीवन रेखा है। यह माँ और शिशु के मध्य की कड़ी होती है। इस नाल के माध्यम से शिशु के शरीर में रक्त संचार होता है। यह नाल बच्चे के लिए ऑक्सीजन तथा भोजन ले जाने तथा अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने का भी माध्यम बनती है।
2. **प्लेसेंटा:** भ्रूण के गर्भाशय में जुड़ने के साथ ही प्लेसेंटा का विकास होता है। यह गर्भाशय के अंदरूनी हिस्से से जुड़कर शिशु के परिसंचरण को माँ के परिसंचरण से अलग करता है। माँ के शरीर से ऑक्सीजन तथा भोजन प्लेसेंटा में प्रवेश कर शिशु के रक्त परिसंचरण तंत्र में गर्भनाल द्वारा पहुंचाए जाते हैं।
3. **गर्भ थैली (amniotic sac):** गर्भाशय के अंदर गर्भस्थ शिशु तरल पदार्थ से भरी हुई एक थैली में विकसित होता है जिसे गर्भथैली कहते हैं। शिशु जन्म के समय यह थैली फट जाती है तथा तरल पदार्थ के साथ शिशु भी बाहर आ जाता है।

अगले भाग में हम गर्भावस्था के लक्षणों के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। लेकिन आइये इससे पहले कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित वाक्यों के लिए एक शब्द लिखिए :

1. इनका कार्य प्रजनन के लिए आवश्यक अंडे उत्पन्न करना है।.....
2. अंडाशय को गर्भाशय से जोड़ने वाली नलिका।.....
3. स्त्री के शरीर में अजन्मे बच्चे अर्थात भ्रूण की वृद्धि एवं विकास की अवस्था।.....
4. स्त्री के अंडाणु तथा पुरुष के शुक्राणु के संयोजन से निर्मित एक कोशिकीय युग्मनज।.....
5. यह नाल बच्चे के लिए ऑक्सीजन तथा भोजन ले जाने तथा अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने का माध्यम है। .....

4.5.1 गर्भावस्था के लक्षण

गर्भावस्था के सम्बन्ध में शीघ्रता से निर्धारण करना आवश्यक है। मुख्य रूप से उस गर्भावस्था का जिसमें कोई खतरा हो जिससे कि खास देखभाल तथा चिकित्सकीय सहायता दी जा सके।

गर्भावस्था का निर्धारण :

निम्नलिखित गर्भावस्था के कुछ सामान्य लक्षण तथा संकेत हैं जो एक गर्भवती स्त्री स्वयं महसूस कर सकती है तथा उसे गर्भावस्था के निर्धारण हेतु डॉक्टर से परामर्श की आवश्यकता नहीं होगी।

1. **स्तनों में परिवर्तन:** बढ़े हुए रक्त प्रवाह के कारण स्तनों में चुभन तथा गुदगुदी जैसा महसूस होता है और यह निपल के आस पास की जगह में अधिक महसूस होता है। स्तन तने हुए लगते हैं तथा उनमे दर्द प्रतीत होता है। निपल के चारों तरफ के क्षेत्र गाढ़े हो जाते हैं। स्तनों में नीले रंग की रक्त वाहिनियाँ दिखायी देने लगती हैं।
2. **मासिक धर्म:** मासिक धर्म का रुक जाना गर्भावस्था का एक महत्वपूर्ण संकेत है। मुख्य रूप से उन महिलाओं में जिनमे मासिक धर्म सामान्य एवं नियमित होता है। कभी-कभी कुछ महिलाओं को अपने मासिक धर्म के समय पर हल्के रक्तस्राव की शिकायत रहती है। यह सामान्य है तथा यह निषेचित अंडाणु का गर्भाशय की दीवार पर आरोपण होने के कारण होता है।
3. **प्रात: काल जी मिचलाना:** प्राय: गर्भवती स्त्री को सवेरे उठने पर मिचली तथा उल्टी का अनुभव होता है। हालाँकि यह अहसास दिनभर में कभी भी हो सकता है। सामान्यतया ये अहसास प्रथम तिमाही के बाद समाप्त हो जाता है।
4. **बार-बार मूत्र त्याग होना:** गर्भवती स्त्री को मूत्रमार्ग में जलन महसूस होती है जिससे उसे बार बार मूत्र त्याग करने की इच्छा होती है।
5. **गतिविधियां:** गर्भावस्था के चार माह बाद गर्भवती महिला को पेट में पल रहे भ्रूण की गतिविधियां महसूस होने लगती हैं तथा जैसे-जैसे गर्भावस्था का समय बढ़ता जाता है ये गतिविधियां भी बढ़ती जाती हैं।

आइये अब कुछ तकनीकों के बारे में पढ़ते हैं जिनसे गर्भावस्था का पता लगाया जा सकता है:

1. **रक्त या मूत्र परीक्षण:** महिला के रक्त तथा मूत्र परीक्षण द्वारा गर्भावस्था का पता लगाया जा सकता है।
2. **आंतरिक परीक्षण:** यह चिकित्सक द्वारा किया जाता है जो कुछ प्रमुख संकेतों जैसे योनि का नीला रंग, गर्भद्वार का नरम होना तथा गर्भाशय के आकार में वृद्धि आदि के द्वारा गर्भावस्था की जांच करते हैं।

3. **अल्ट्रासाउंड:** यह एक आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक है जो गर्भावस्था के 6 माह के बाद की जाती है और यह तकनीक पेट में पल रहे भ्रूण को देखने में मदद करती है।
4. **उदर परीक्षण:** गर्भावस्था के प्रथम तिमाही में स्त्री का पेट बड़ा नहीं होता क्योंकि गर्भाशय पैल्विक गुहा में स्थित होता है। तीन माह बाद एक चिकित्सक या दाई पेट के परीक्षण द्वारा गर्भाशय के आकार में वृद्धि को माप सकते हैं। गर्भावस्था के छठे माह में भ्रूण के अंगों को पेट के परीक्षण में महसूस किया जा सकता है। आतंरिक परीक्षण का प्रयोग सामान्यतया गर्भावस्था का समय जानने, एम्नियोटिक द्रव्य (amniotic fluid) की कम या अधिक मात्रा की जांच, गर्भस्थ शिशु की स्थिति, एकल या जुड़वाँ शिशु तथा किसी भी प्रकार की विसंगति का पता लगाने में किया जाता है।
5. **शिशु हृदय दर:** गर्भावस्था के 20वें सप्ताह में गर्भवती महिला के पेट में स्टेथोस्कोप लगाकर शिशु की हृदय दर सुनी जा सकती है। सामान्यतया शिशु की हृदय दर 120 से 140 धड़कन प्रति मिनट होती है।

4.5.2 गर्भावस्था की कठिनाइयाँ एवं समस्याएं

एक गर्भवती महिला गर्भावस्था की लंबी अवधि के दौरान कुछ समस्याएँ महसूस कर सकती है। आइये इन्हीं समस्याओं के सम्बन्ध में पढ़ें :

1. **प्रात:काल जी मिचलाना:** यह गर्भावस्था के शुरुआती दिनों में होता है और सामान्यतया प्रथम तिमाही के समाप्त होते होते खत्म हो जाता है। इस समस्या से उबरने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं –
   - गर्भवती महिला को सवेरे बिस्तर से उठने से पूर्व भुने चने, बिस्किट आदि खा लेने चाहिए।
   - सब्जियाँ जैसे गाजर, मूली आदि सलाद के रूप में अधिक मात्रा में खानी चाहिए।
   - एक बार में अधिक भोजन करने के स्थान पर थोड़ा-थोड़ा भोजन बार-बार करना चाहिए।
   - कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन अधिक मात्रा में लेना चाहिए।
   - तरल पेय जैसे नींबू का जूस, नारियल पानी, गन्ने का जूस आदि अधिक मात्रा में लेने चाहिए।
   - अधिक तेलीय एवं वसीय पदार्थ नहीं लेने चाहिए।
   - चाय और कॉफी अधिक मात्रा में नहीं लेने चाहिए।
2. **छाती में जलन:** छाती में जलन की समस्या भोजन के ठीक प्रकार से न पचने के कारण होती है जब पेट से खाना वापस भोजन नली में आने लगता है। यह कई कारणों से होता है जैसे गर्भाशय आकार में बड़ा हो जाता है तथा आमाशय में दबाव डालता है जिसके कारण आमाशय में पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। दोषपूर्ण भोजन जैसे बहुत अधिक तला हुआ भोजन, बहुत मसाले

युक्त भोजन, चटपटा भोजन आदि खाने के कारण भी यह परेशानी हो जाती है। इस परेशानी में भोजन कई बार आमाशय से वापस भोजन नली में आ जाता है। यह भोजन नली में जलन पैदा करता है तथा छाती के निकट दर्द पैदा करता है। यह गर्भावस्था के अंतिम तिमाही में होने वाली सामान्य समस्या है।

निम्न उपायों से इस परेशानी को कम किया जा सकता है :

- पुदीने की पत्तियों का पानी पीयें।
- नींबू का रस पीएं।
- आराम से तथा अच्छे से चबाकर खाएं।
- पेट में गैस उत्पन्न करने वाले पदार्थ जैसे प्याज, फूलगोभी तथा कद्दू आदि न खाएं।
- अधिक तैलीय, चटपटा तथा मसालेदार भोजन न करें।
- देर रात खाना न खाएं तथा आवश्यकता से अधिक न खाएं।
- खाली पेट न रहें।
- हल्के व्यायाम जैसे ताजी हवा में घूमना करें।
- सिरहाना ऊंचा रखें।

3. **कमर दर्द:** यह सामान्यतया गलत आसन तथा गर्भावास्था में आखिरी के समय में वजन बढ़ जाने के कारण होता है। निम्न उपायों से इस परेशानी से निजात मिल सकती है:
   - शरीर मुद्रा में सुधार करें।
   - हलके व्यायाम करें जो कमर की मांसपेशियों को आराम पहुंचाते हों।
   - आराम के समय में वृद्धि करें।
   - दूध का प्रयोग अधिक मात्रा में करें।
4. **अपस्फीति शिरा (Varicose veins):** ये गहरे रंग की सूजी हुई शिराएं होती हैं जो त्वचा के ठीक नीचे स्थित होती हैं तथा गर्भवती महिला के पैरों में स्पष्ट तथा उभरी हुई दिखायी देती हैं। कभी-कभी ये गर्भावस्था के बाद भी दिखायी देती हैं तथा जीवन पर्यन्त रहती हैं। इन शिराओं में अशुद्ध रक्त होता है जिसे शुद्ध करने के लिए हृदय में ले जाया जाता है। कभी-कभी कुछ कारणों से जैसे गर्भ में पल रहे शिशु द्वारा पेट के निचले हिस्से में दिए जा रहे दबाव के कारण या शिराओं के वाल्व कमजोर होने के कारण पैरों में रक्त परिसंचरण धीमा हो जाता है जिसके कारण ये शिराएं रक्त को हृदय में ले जाने में असमर्थ हो जाती है, परिणामस्वरूप पैरों में रक्त एकत्रित हो जाता है जोकि शिराओं को फुला देता है तथा बहुत पीड़ादायक होता है और अत्यंत गंभीर स्थिति में शिराएं फट जाती हैं।

   इस समस्या से बाहर आने के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं:
   - बहुत देर लगातार खड़े होने से बचें।
   - फर्श पर पैरों को मोड़कर न बैठें।

- कुर्सी में बैठते समय पैरों को फर्श से कुछ उठाकर रखें इसके लिए स्टूल या तकिए का प्रयोग कर सकते हैं।

5. मांसपेशीय ऐंठन: कुछ महिलाएं मांसपेशीय ऐंठन के कारण पैरों में या पेट में दर्द का अनुभव करती हैं। यह सामान्यतया गर्भावस्था के अंतिम समय में होता है तथा बहुत पीड़ादायक भी हो सकता है। इस समस्या का सामान्य कारण रक्त प्रवाह का कम होना तथा कुछ खनिज लवणों जैसे कैल्सियम तथा विटामिन बी समूह का कम होना हो सकता है।

इस समस्या के निम्न समाधान हो सकते हैं:

- प्रभावित स्थान की हलके हाथ से मालिश करें।
- मांसपेशियों को आराम पहुंचाने के लिए प्रभावित स्थान पर गर्म पानी का सेक करें।
- अपने आहार में कैल्सियम तथा विटामिन बी समूह की मात्रा बढ़ाएँ।
- यदि आपका रक्त दाब सामान्य है तो अपने भोजन में नमक की मात्रा बढ़ाएँ।

6. अल्प श्वास: कई महिलाएं कुछ शारीरिक कार्य करने या सीढ़ियां चढ़ने में तुरंत हांफने लगती हैं। सामान्यतया ये गर्भावस्था के आखिरी कुछ महीनों में होता है तथा ये उस अवस्था में बहुत अधिक होता है जब महिला के गर्भ में जुड़वा बच्चे पल रहे हों। ऐसे समय में लगातार बहुत सारी गहरी साँसें लेनी चाहिए। अल्प श्वास का कारण गर्भ में पल रहा शिशु होता है जो इतना वृद्धि कर चुका होता है कि गर्भवती महिला को गहरी साँस लेने में कठिनाई होती है। इस स्थिति में गर्भवती महिला को सीधे बैठने को कहना चाहिए तथा महिला को आश्वस्त करना चाहिए कि यह परेशानी केवल गर्भावस्था तक ही है उसके बाद यह समस्या स्वयं दूर हो जायेगी।

7. कब्ज: यह गर्भावस्था के दौरान होने वाली सामान्य परेशानी है तथा यह अधिकतर इस समय स्रावित्र होने वाले एक हारमोन के कारण होती है जोकि आंत्रीय ऊतकों को शिथिल कर देता है। जिसके फलस्वरूप आँतों तथा पाचन तंत्र की क्रियाविधि धीमी हो जाती है। कुछ अन्य कारकों की वजह से भी कब्ज की शिकायत हो सकती है जैसे शौच की गलत आदतें, ज्यादा मसालेदार भोजन आदि। कब्ज के कारण कई अन्य परेशानियाँ भी हो सकती हैं जैसे सिर दर्द, नींद न आना, चेहरा पीला पड़ना तथा चमक चले जाना, बवासीर तथा चिड़चिड़ापन आदि।

निम्न के द्वारा कब्ज से राहत मिल सकती है:

- भोजन में रेशेयुक्त पदार्थों जैसे साबुत अनाज, दाल, मौसमी फल एवं सब्जियां,चोकर युक्त आटा आदि को शामिल करें।
- तरल पदार्थों जैसे पानी तथा जूस आदि का अधिक सेवन करें।
- ज्यादा मसालेदार या तले हुए भोज्य पदार्थ न खाएं।
- हलके व्यायाम करें जो पाचन तंत्र का संतुलन बनाए रखें।
- रात्रि को सोने से पूर्व मुनक्के या ईसबगोल के साथ दूध लेना चाहिए।

8. अनिद्रा: यह परेशानी गर्भावस्था के अंतिम तिमाही के समय अधिक तीव्र होती है। इसके लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं:

- गर्भस्थ शिशु की क्रियाशीलता में वृद्धि।
- अधिक थकान।
- फ़िक्र, चिंता तथा घर के प्रतिकूल वातावरण के कारण होने वाला भावनात्मक तनाव।
- रात को देर से भोजन करना या अधिक मसालेदार भोजन करना।

इन परेशानियों से बचने के लिए निम्न उपाय करने चाहिए:

- ज्यादा देर तक काम नहीं करना चाहिए जिससे थकान से बचा जा सके।
- भरपूर आराम करना चाहिए।
- घर का वातावरण शांत एवं खुशनुमा रखना चाहिए।
- रात को जल्दी भोजन करना चाहिए तथा कम मसाले वाला भोजन करना चाहिए।

9. भोजन के प्रति रुचि में परिवर्तन: गर्भावस्था के दौरान कुछ महिलाओं की खाने पीने की रुचि में परिवर्तन आ जाता है। गर्भवती महिला उन्हीं चीजों को अधिक पसंद करती है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। भोजन ही नहीं अन्य वस्तुओं को खाने के प्रति भी उनमें रुचि उत्पन्न हो जाती है जैसे मिट्टी, खड़िया तथा चौक आदि। यह अवस्था पिका कहलाती है। पिका एक लैटिन शब्द है जो मैगपाई (नीलकंठ पक्षी) से बना है जो एक पक्षी होता है जोकि लगभग सभी चीज खाता है। कुछ महिलाएं अचानक कुछ खाने पीने की वस्तुओं को बहुत नापसंद करने लगती हैं तथा उनकी मात्र गंध भी उन्हें परेशान कर देती है। ऐसी स्थिति में परेशानियों से बचने के लिए तथा गर्भवती महिला को संतुष्ट रखने के लिए उसे ऐसी चीजें खाने देनी चाहिए जो शरीर के लिए सामान्य रूप से हानिकारक न हों।

10. बार-बार मूत्र त्याग की इच्छा होना: गर्भावस्था के शुरुआती दो-तीन महीनों में गर्भवती महिला का बार-बार मूत्रत्याग के लिए जाना सामान्य बात है। यह इस कारण यह है कि गर्भ में पल रहा शिशु आकार में बढ़ रहा होता है तथा वह मूत्राशय पर दबाव डालता है। जिससे बार-बार मूत्र त्याग के लिए जाना पड़ता है। यह समस्या चौथे माह से कुछ कम हो जाती है तथा पांचवे तथा छठे माह तक पूरी तरह से समाप्त हो जाती है। इसके बाद यह समस्या गर्भावस्था के अंतिम दिनों में पुन: होने लगती है क्योंकि इस समय भ्रूण नीचे की ओर गतिशील हो जाता है तथा इससे पुन: मूत्राशय पर दबाव हो जाता है। लेकिन इस वजह से गर्भवती स्त्री को अपने आहार में पानी की मात्रा कम नहीं करनी चाहिए अपितु रात के भोजन के बाद पानी की मात्रा तथा पानी पीने के समय में कुछ परिवर्तन अवश्य कर लेने चाहिए।

11. योनि स्त्राव: गर्भाशय ग्रीवा में कई ग्रंथियों से सदैव एक चिपचिपा पदार्थ स्त्रावित होता रहता है जिसे श्लेष्मा (mucus) कहते हैं। गर्भावस्था के दौरान इसका स्त्राव बढ़ जाता है जिससे योनि मार्ग में चिकनाई बनी रहे। इस बढ़े हुए श्लेष्मा में कभी-कभी योनि में सामान्य रूप से उपस्थित सूक्ष्म जीव वृद्धि करने लगते हैं। अत: यदि यह स्त्राव सामान्य से अधिक पीला और गंधयुक्त हो तो तुरंत चिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए। यदि समय पर इलाज न कराया जाए तो यह योनि संक्रमण का रूप ले लेता है।

गर्भावस्था की प्रमुख कठिनाइयाँ

गर्भावस्था के दौरान कई कठिनाइयाँ हो सकती हैं। इनके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं

1. योनि से रक्त स्त्राव होना: यह एक गम्भीर समस्या है जिसे तुरंत चिकित्सक को दिखाना चाहिए। बहुत अधिक रक्त स्त्राव से माँ तथा शिशु किसी की भी मृत्यु हो सकती है। यह परेशानी होने पर निम्न उपाय किए जा सकते हैं:

- गर्भवती महिला को पैर सीधा करके लेटा देना चाहिए।
- उसे गर्म रखना चाहिए।
- उसे तुरंत चिकित्सकीय सहायता प्रदान करनी चाहिए।

जब यह रक्त स्त्राव गर्भावस्था के प्रथम पांच माह में हो तो यह गर्भपात का एक सामान्य लक्षण है इसके लिए तुरंत चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए। गर्भपात तब होता है जब शिशु समय से बहुत पहले पैदा हो जाए जिसके फलस्वरूप बच्चा पूर्ण विकसित नहीं होता है। वह अपरिपक्व अवस्था में होता है तथा माँ के गर्भ के बाहर जीवित नहीं रह पाता है। इसका कारण शरीर में हार्मोन्स का असंतुलन होना है। जब रक्त स्त्राव गर्भावस्था के अंतिम तिमाही में होता है यह प्लेसेंटा के गर्भाशय की दीवार से अलग हो जाने या गर्भाशय में चोट लगने के कारण होता है। इस स्थिति में गर्भवती महिला को बिना देर किए चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए। यह उन महिलाओं में अधिक होता है जिनके पहले से दो तीन बच्चे हों या जो गर्भकालीन विषाक्तता से ग्रसित हों।

2. असामयिक जन्म: सामान्य परिस्थितियों में गर्भावस्था 40 सप्ताह या 280 दिन की होती है। असामयिक जन्म में गर्भावस्था इस समय से पहले पूर्ण हो जाती है तथा 7वें माह में या 280 दिन से पूर्व ही शिशु का जन्म हो जाता है। गर्भ के अंदर शिशु एक द्रव्य भरे हुए बैग में रहता है। जब शिशु जन्म के लिए तैयार हो जाता है तब यह द्रव्य से भरा हुआ बैग फट जाता है तथा योनि के रास्ते तीव्र गति से बाहर आ जाता है। कभी-कभी ये शिशु जन्म के समय से बहुत पहले हो जाता है और इसका परिणाम असामयिक जन्म होता है और यह प्रक्रिया तुरंत हो जाती है क्योंकि अविकसित भ्रूण बहुत

छोटा होता है जो आसानी से जनन मार्ग से बाहर आ जाता है। इस प्रकार के स्थिति में शिशु की खास देखभाल करनी पड़ती है क्योंकि शिशु शारीरिक रूप से इतना परिपक्व नहीं हुआ होता है कि माँ के पेट के बाहर के वातावरण से सामंजस्य कर सके तथा जीवित रह सके। असामयिक जन्म की समस्या उन महिलाओं में होने की अधिक संभावना होती है जो किसी संक्रमण से या खराब पोषण से या फिर किसी यौन संक्रमण से पीड़ित होती हैं।

3. **शिशु की खराब स्थिति:** सामान्यतया शिशु की गर्भाशय में स्थिति सिर नीचे की होती है। कभी-कभी शिशु की स्थिति अलग भी हो जाती है। शिशु उल्टी स्थिति में होता है अर्थात पैर नीचे सिर ऊपर या फिर आड़ी स्थिति। इस बात का पता नियमित स्वास्थ्य परीक्षण से ही चल सकता है नहीं तो यह जन्म के समय एक गंभीर समस्या का रूप ले सकता है।

4. **रक्ताल्पता:** मानव शरीर में लाल रक्त कणिकाएं होती हैं जिनमें हीमोग्लोबिन पाया जाता है जिनका कार्य महिला तथा गर्भ में पल रहे बच्चे को ऑक्सीजन पहुंचाना है। एक गर्भवती महिला में हीमोग्लोबिन की मात्रा प्रत्येक 100 ग्राम में 12 ग्राम होती है। यह मात्रा भ्रूण की सामान्य वृद्धि एवं विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। रक्ताल्पता की स्थिति में महिला का हीमोग्लोबिन स्तर सामान्य से नीचे आ जाता है। रक्ताल्पता से पीड़ित एक महिला को निम्न लक्षण महसूस होते हैं जैसे जल्दी थकान महसूस करना, साँस लेने में तकलीफ महसूस करना, चक्कर आना, अनिच्छा आदि। रक्ताल्पता के उपचार के लिए गर्भवती महिला को अपने भोजन में आयरन की मात्रा बढ़ानी चाहिए इसके लिए उसे ऐसे भोज्य पदार्थ खाने चाहिए जिनमें आयरन प्रचुर मात्रा में हो। इसके अतिरिक्त उसे आयरन तथा फोलिक एसिड की गोलियाँ भी लेनी चाहिए।

5. **लंबे समय तक उल्टी होना:** गर्भावस्था के समय सवेरे के समय उल्टियां होना लगभग सभी महिलाओं में सामान्य बात है। कभी-कभी ये परेशानी 6 से 7 माह तक चलती है। लंबे समय तक उल्टियाँ होने की इस स्थिति को हायपरमेसिस ग्रेविटेटेरम कहा जाता है जिससे माँ तथा शिशु दोनों का पोषण स्तर खराब हो जाता है। यह स्थिति दोनों के लिए हानिकारक होती है क्योंकि गर्भवती महिला में पोषक तत्वों का अवशोषण पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाता है तथा दोनों में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। लंबे समय तक उल्टी होने के कई कारण हैं जैसे परिवार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ तथा माँ की भावनात्मक अवस्था जैसे प्रसव पीड़ा का डर, भावनात्मक असंतुलन तथा बहुत अधिक डर या तनाव आदि।

6. **पौलीहाईड्रेमिओस:** यह वह अवस्था है जिसमें गर्भाशय के भीतर द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है तथा यह मात्रा प्रसव के समय तक बढ़ती रहती है। यह गर्भावस्था के 7वें माह से होता है। यह एक गंभीर समस्या है जिसमें तत्काल चिकित्सकीय परामर्श की आवश्यकता होती है। द्रव्य की मात्रा बढ़ने से गर्भाशय पर अतिरिक्त दबाव पड़ने लगता है जिसके कारण एम्निओटिक द्रव्य भरे बैग के समय पूर्व फटने का खतरा रहता है। इस सबसे गर्भनाल के अपने स्थान से खिसकने का खतरा रहता है जोकि शिशु के लिए जानलेवा भी हो सकता है। इस समस्या के प्रमुख लक्षण एवं संकेत निम्न हैं:

   - पेट के आकार में असाधारण वृद्धि।
   - पेट की त्वचा खिंची हुई तथा पतली हो जाती है।
   - पेट की त्वचा पर लाल या नीले निशानों का दिखायी देना।
   - भुजाओं में सूजन आना।

7. गर्भकालीन विषाक्तता: यह एक बहुत गंभीर अवस्था है जो माँ तथा शिशु दोनों के लिए हानिकारक है। यह अवस्था सामान्य रूप से गर्भावस्था के 7वें माह या 30 सप्ताह के बाद दिखायी देती है। इसके होने की संभावना पहली बार की गर्भावस्था में अधिक होती है। विषाक्तता की दो अवस्थाएं हो सकती हैं:

प्री एक्लेम्पसिया: इसके सामान्य लक्षणों में पैरों तथा एड़ी में सूजन, लगातार उच्च रक्त दाब तथा मूत्र में प्रोटीन का उत्सर्जन आते हैं।

एक्लेम्पसिया: इस गंभीर अवस्था के लक्षण सिर दर्द, पूरे शरीर में सूजन तथा चक्कर आना या दौरे पड़ना होते हैं।

प्री एक्लेम्पसिया आगे आने वाले खतरे की चेतावनी होती है तथा इस स्थति में गर्भवती स्त्री को तुरंत चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए तथा उसे चिकित्सकीय उपचार दिया जाना चाहिए। यदि उपचार नहीं किया जाए तो उसे एक्लेम्पसिया होने का खतरा होता है जो माँ तथा गर्भ में पल रहे बच्चे दोनों के लिए नुकसानदायक होता है।

8. **आर एच कारक:** आर एच कारक अधिकतर लोगों में लाल रक्त कणिकाओं में पाया जाता है। ऐसे लोग आर एच पॉजिटिव कहलाते हैं। वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों के रक्त में इस कारक की कमी पायी जाती है ऐसे लोग आर एच निगेटिव कहलाते हैं। इस तत्व की उपस्थिति पॉजिटिव चिन्ह (+) से तथा अनुपस्थिति निगेटिव चिन्ह (-) से दर्शायी जाती है। यह पूर्ण रूप से प्राकृतिक

तथा आनुवंशिक स्थिति है जिसे बदला नहीं जा सकता। आर एच कारक गर्भाधान की प्रक्रिया को प्रभावित करता है तथा इससे शिशु के जीवन को भी खतरा होता है। जब माता एवं पिता के आर एच कारक भिन्न होते हैं तो यह अवस्था शिशु की वृद्धि एवं विकास को बाधित करती है। अत: यदि माता आर एच निगेटिव तथा पिता आर एच पॉजिटिव होता है तो शिशु के आर एच पॉजिटिव होने की संभावना होती है। अवस्था तब गंभीर हो जाती है जब माता आर एच निगेटिव होती है तथा उसका रक्त आर एच पॉजिटिव शिशु के रक्त में पहुँचता है तथा उसकी लाल रक्त कणिकाओं को नष्ट कर देता है। यह अवस्था एरिथ्रोब्लास्ट कहलाती है। यह अवस्था नुकसानदायक है क्योंकि इसके कारण रक्ताल्पता हो जाती है जोकि भ्रूण की वृद्धि एवं विकास को अवरोधित करती है जिसके परिणामस्वरूप गर्भपात होने का खतरा होता है। इस अवस्था का शुरुआत में ही पता लग जाना चाहिए जिससे शिशु के स्वास्थ्य तथा जीवन को सुरक्षित किया जा सके।

4.5.3 प्रसव पूर्व देखभाल

प्रसव पूर्व का समय गर्भाधान या निषेचन से प्रसव की शुरुआत तक होता है। अत: इस समय गर्भवती स्त्री तथा पेट में बढ़ रहे भ्रूण की स्वास्थ्य देखभाल हेतु प्रसव पूर्व देखभाल अत्यंत आवश्यक है। प्रसव पूर्व देखभाल के निम्न मानक हैं:

- गर्भावस्था का शीघ्र पता लगाना एवं उसकी पुष्टि करना।
- गर्भावस्था में जोखिम की पहचान।
- नियमित प्रसव पूर्व जांच।
- भ्रूण विकास में अवरोध का शुरुआत में पता लगाना।
- नियमित टिटनेस के टीके लगवाना।
- गर्भवती महिला को पूरक आहार प्रदान करना।

प्रसव पूर्व देखभाल का उद्देश्य गर्भवती महिला को पर्याप्त चिकित्सकीय, पोषण संबंधी, शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा शिक्षात्मक देखभाल द्वारा स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करना है। प्रसवपूर्व देखभाल के प्रमुख लक्ष्य निम्न हैं:

- गर्भवती महिला की स्वास्थ्य देखभाल करना तथा स्वास्थ्य स्तर को ऊंचा उठाना।
- एक स्वस्थ, जीवित तथा पूर्ण विकसित नवजात के जन्म को सुनिश्चित करना।
- गर्भवती महिला तथा शिशु के लिए नुकसानदायक स्थितियों की पहचान एवं उनका निदान।
- महिला को प्रसव पीड़ा तथा शिशु जन्म के लिए तैयार करना।

- महिला को नवजात की देखभाल करना सिखाना।
- महिला को परिवार नियोजन के सम्बन्ध में शिक्षित करना।

गर्भवती महिला का नियमित परीक्षण गर्भावस्था की देखभाल का प्रमुख भाग है। गर्भावस्था के दौरान प्रथम परीक्षण में निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

1. स्वास्थ्य इतिहास: गर्भवती महिला के सम्बन्ध में विस्तृत एवं पूर्ण जानकारी सावधानीपूर्वक रिकॉर्ड करनी चाहिए। गर्भवती महिला की पिछली तथा वर्तमान गर्भावस्था के इतिहास के साथ साथ उसकी व्यक्तिगत, पारिवारिक, स्वास्थ्य तथा सामाजिक इतिहास सम्बंधित जानकारी भी एकत्रित कर लेनी चाहिए। इससे डॉक्टर को आगे आने वाले महीनों में गर्भवती महिला को दी जाने वाली देखभाल तथा परामर्श देने में सहायता मिलती है।

2. स्वास्थ्य परीक्षण: डॉक्टर को एक बार गर्भवती महिला का पूर्ण स्वास्थ्य परीक्षण करना चाहिए। इस परीक्षण से गर्भवती महिला को सम्भावित स्वास्थ्य सम्बन्धित किसी भी खतरे के प्रति जानकारी प्राप्त हो जाती है। इसके अंतर्गत निम्न परीक्षण आते हैं:

i. एल्बुमिन तथा शर्करा की उपस्थिति की जांच हेतु मूत्र परीक्षण।
ii. हीमोग्लोबिन स्तर, रक्त समूह तथा आर एच कारक की जांच हेतु रक्त परीक्षण।
iii. शारीरिक तापमान, श्वसन तथा स्पंद दर का मापन।
iv. रक्त दाब, शरीर भार तथा लम्बाई का मापन।

3. शारीरिक परीक्षण: सामान्य स्वास्थ्य परीक्षण के पश्चात डॉक्टर द्वारा गर्भवती महिला का विस्तृत एवं व्यवस्थित शारीरिक परीक्षण अवश्य किया जाना चाहिए। सामान्य परीक्षणों में सामान्य बनावट, भावनात्मक स्थिति, शरीर प्रकार, लम्बाई तथा चाल-ढाल आदि आते हैं। इन सामान्य परीक्षणों के पश्चात शरीर के सम्पूर्ण भागों का पूर्ण परीक्षण किया जाना चाहिए जैसे सिर, चेहरा, स्तन, पेट तथा योनि आदि का परीक्षण। पहली जांच के पश्चात गर्भवती महिला को कम से कम 3 से 5 जांचें और करवानी चाहिए मुख्य रूप से 24 वें, 30 वें, 34 वें तथा 36 वें सप्ताह में। इन जांचों के दौरान नियमित शारीरिक परीक्षण किए जाने चाहिए जैसे मूत्र परीक्षण, शरीर के वजन में वृद्धि, रक्त दाब, भ्रूण की वृद्धि एवं उसकी स्थिति, एमनियोटिक द्रव्य की मात्रा तथा शिशु हृदय दर आदि। प्रसव समय के नजदीक आने पर एक आतंरिक परीक्षण भी किया जाना चाहिए जिससे श्रोणि क्षमता तथा गर्भाशय ग्रीवा की स्थिति का पता लगाया जा सके। इन सब परीक्षणों के अतिरिक्त गर्भवती महिला

को गर्भावस्था के दौरान आने वाले विभिन्न परिवर्तनों के सम्बन्ध में जानकारी देनी चाहिए तथा उसे गर्भावस्था के दौरान होने वाली विभिन्न परेशानियों तथा प्रसव पीड़ा आदि के लिए शारीरिक तथा मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए।

प्रसव पीड़ा के नजदीक होने के संकेत

गर्भस्थ शिशु की स्थति में तब परिवर्तन होता है जब शिशु गर्भाशय में नीचे को खिसकता है। यह प्रसव पीड़ा शुरू होने के कुछ ही दिन पहले होता है।

योनि स्त्राव: योनि से थोड़ा थोड़ा लाल रंग के श्लेष्म का स्त्राव होता है। यह प्रसव पीड़ा शुरू होने के कुछ घंटे पहले होता है।

प्रसव संकुचन: यह शिशु जन्म के ही दिन या उससे कुछ ही दिन पहले होता है। प्रत्येक संकुचन के साथ गर्भाशय भी सिकुड़ता है अत: शिशु को होने वाली रक्त एवं पोषक पदार्थों की आपूर्ति कुछ समय के लिए प्रभावित होती है। फिर दो संकुचनों के मध्य गर्भाशय पुन: अपने आकार में आ जाता है।

पानी की थैली: पानी की थैली जिसमें शिशु तैरता है प्रसव पीड़ा के आरम्भ होते ही स्वयं ही फट जाती है तथा बहुत बड़ी मात्रा में द्रव्य योनि से बाहर निकलता है।

प्रसव का समय

प्रसव पीड़ा आरम्भ होते समय गर्भवती महिला को नियमित तथा पीड़ायुक्त संकुचन होते हैं जिनसे शिशु तथा प्लेसेंटा दोनों बाहर आते हैं। गर्भवती महिला को प्रसव की चार विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है

प्रथम अवस्था: यह गर्भाशय के तीव्र संकुचन से शुरू होती है तथा यह गर्भाशय के मुँह के खुल जाने पर समाप्त हो जाती है जिसका परिणाम जन्म मार्ग का खुल जाना होता है। यह सबसे बड़ी अवस्था है जो 12 से 14 घंटे की हो सकती है।

द्वितीय अवस्था: यह गर्भाशय के मुँह के खुलने से शुरू होती है तथा शिशु जन्म पर समाप्त होती है। यह अवस्था 4 से 6 घंटे की होती है।

तृतीय अवस्था: यह शिशु जन्म से शुरू होकर प्लेसेंटा के निष्कासन पर समाप्त होती है। यह सबसे छोटी अवस्था है जो 30 से 45 मिनट से बड़ी नहीं होती है। प्लेसेंटा सामान्यतया शिशु जन्म के 5 से 15 मिनट के बाद बाहर आ जाता है।

चतुर्थ अवस्था: यह बहुत महत्वपूर्ण समय है तथा यह तीसरी अवस्था के समाप्त होने के 1 घंटे बाद तक चलती है। इस समय नवजात शिशु तथा माता को दी जाने वाली देखभाल बहुत महत्वपूर्ण होती है।

4.6 शिशु जन्म के पश्चात माता एवं शिशु की देखभाल

शिशु जन्म के पश्चात देखभाल में प्रसव तथा शिशु जन्म के समय दी जाने वाली देखभाल आती है अर्थात गर्भवती महिला की प्रसव के बाद तुरंत तथा आवश्यक देखभाल तथा वही देखभाल आगे भी दी जानी चाहिए। शिशु को जन्म के समय के सभी खतरों से बचाने के लिए सभी आवश्यक तैयारियां प्रसव से पूर्व ही कर लेनी चाहिए। इनके अंतर्गत निम्न बिंदु आते हैं:

- प्रसव हेतु एक अनुभवी एवं कुशल चिकित्सक या नर्स का चयन करना चाहिए।
- प्रसव के लिये उपयुक्त स्थान का चुनाव करना चाहिए जैसे घर या चिकित्सालय।
- प्रसव के लिए आवश्यक धन का प्रबंध।
- यदि प्रसव घर पर कराया जाना है तो उसके लिए आवश्यक औजारों तथा अन्य सामान का प्रबंध।
- नवजात शिशु तथा माता के लिए वस्त्रों का प्रबंध।

नवजात की देखभाल जन्म के तुरंत बाद ही शुरू हो जाती है जोकि निम्न प्रकार है:

- नवजात का सिर शरीर की अपेक्षा कुछ नीचे रखना चाहिए। ऐसा करने से शिशु के गले, मुँह तथा नाक में एकत्रित श्लेष्म निकल जाता है। ऐसा करने से बच्चा रोता है तथा ठीक प्रकार से श्वास लेने लगता है।
- यदि शिशु इसके पश्चात भी श्वास लेना आरम्भ नहीं करता है तो उसकी पीठ को तुरंत रगड़ना चाहिए।
- नवजात को माँ से कुछ नीचे रखना चाहिए जब तक की गर्भनाल काट नहीं दी जाती।
- नवजात का शरीर रक्त तथा श्लेष्म से ढका हुआ होता है। इसे तेल की सहायता से निकाल लेना चाहिए। जन्म के 12 से 14 घंटे बाद नवजात को गर्म पानी तथा मृदु साबुन की सहायता से नहलाना चाहिए।
- नवजात शिशु को साफ़ कपड़े में लपेटकर रखना चाहिए जिससे उसे ठंडे तापमान से बचाया जा सके।
- नवजात शिशु को जितना शीघ्र हो सके माँ का दूध पिलाना चाहिए। यह नवजात के शरीर को गर्म रखने में मदद करता है।

प्रसव के बाद नयी माता की निम्न प्रकार से देखभाल की जानी चाहिए:

- गर्भवती माहिला की योनि को ठीक प्रकार से साफ किया जाना चाहिए तथा उसे अच्छे प्रकार से सुखाकर कोई रोगाणुनाशक क्रीम लगानी चाहिए।
- महिला को स्वच्छ तथा नए कपड़े पहनने को देने चाहिए।
- उसे पर्याप्त आराम करने देना चाहिए।
- प्रसव यदि घर पर हुआ हो तो निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए तथा निम्न बिंदुओं पर ध्यान देना चाहिए:
  - गर्भाशय दृढ़ न होकर मुलायम हो गया हो।
  - शिशु जन्म के एक घंटे बाद भी गर्भवती मूत्र त्याग करने ना गयी हो।
  - रक्त दाब में कमी से अधिक रक्त स्त्राव हो गया हो जिसके कारण गर्भवती महिला बेहोश हो गयी हो।
  - रक्त दाब अचानक से बढ़ गया हो।
  - गर्भनाल से रक्त स्त्राव हो रहा हो।
  - नवजात को माँ का दूध पीने में कठिनाई हो रही हो।

माँ तथा शिशु की जन्म के तुरंत बाद की देखभाल करने के पश्चात गर्भावस्था के बाद की देखभाल शुरु कर दी जाती है। इसमें निम्न बातों को ध्यान में रखा जाता है:

- माँ को विभिन्न प्रकार के संक्रमणों से बचाना चाहिए क्योंकि प्लेसेंटा के निकल जाने के कारण एक खुला घाव हो जाता है जिसमें आसानी से संक्रमण हो जाता है। अत: इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि महिला को बुखार ना आये क्योंकि यह संक्रमण का ही एक लक्षण होता है।
- सामान्य प्रसव के बाद गर्भवती महिला को कम से कम 3 माह तक लगातार व्यायाम करने चाहिए।
- प्रसव के पश्चात महिला के स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखना चाहिए तथा उसे संतुलित तथा पौष्टिक आहार देना चाहिए जिससे वह शिशु को अच्छी तरह से अपना दूध पिला सके।
- जन्म के एक घंटे बाद ही शिशु को माँ का दूध पिलाना चाहिए।
- माँ एवं शिशु दोनों के लिए पूरी नींद अत्यंत आवश्यक है।

अत: निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखकर हम माँ तथा शिशु की उचित देखभाल कर सकते हैं एवं उन्हें एक स्वस्थ्य जीवन दे सकते हैं। आइये इकाई के अंत में कुछ प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिये।

1. …… वह अवस्था है जिसमें गर्भाशय के भीतर द्रव्य की मात्रा बढ़ जाती है।

2. जब माता एवं पिता के…….. भिन्न होते हैं तो यह अवस्था शिशु की वृद्धि एवं विकास को बाधित करती है।
3. गर्भवती महिला को प्रसव की ……विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।
4. सामान्यतया शिशु की हृदय दर ……धड़कन प्रति मिनट होती है।

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने मातृत्व देखभाल के सम्बन्ध में जाना। गर्भावस्था एक ऐसी अवस्था है जब स्त्री को अधिक देखभाल तथा ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। इस इकाई में हमने गर्भावस्था के दौरान माँ की देखभाल के विषय में चर्चा की। गर्भावस्था के लक्षणों तथा इस दौरान होने वाली परेशानियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की तथा यह भी जाना कि कैसे इन परेशानियों से बचा जा सकता है। हमने प्रसव के पश्चात माँ तथा शिशु की देखभाल से सम्बंधित आवश्यक तथ्यों की चर्चा भी इस इकाई में की तथा यह जाना कि मातृत्व अवस्था में पूर्ण तथा उचित देखभाल अत्यंत आवश्यक है।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **गर्भद्वार:** गर्भाशय का पतला वाला द्वार।
- **हायपरमेसिस ग्रेविटेटेरम:** लंबे समय तक उल्टियाँ होना।
- **पौलीहाईड्रेमिओस:** गर्भाशय के भीतर द्रव्य की मात्रा बढ़ जाना।
- **गर्भनाल (umblical cord):** यह माँ और शिशु के मध्य की कड़ी होती है।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. अंडाशय
2. अंड़वाहिनी
3. गर्भावस्था
4. जायगोट
5. गर्भनाल

अभ्यास प्रश्न 2

1. पौलीहाईड्रेमिओस
2. आर एच कारक

3. चार
4. 120 से 140

4.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.
2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
3. Marshall, M.H. and Janette B. Benson (2008), Encyclopedia of Infant and Early Childhood Development, Academic Press, San Diego.
4. http://www.en.wikipedia.org/wiki/infant (August 2014)
5. http://www.nlm.nih.gov/medlineplus/infant and newborn care.html (August 2014)
6. http://kidshealth.org/parent/newborn care/guide parents.html (August 2014)
7. नीता अग्रवाल, बाल विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

इकाई 5: गर्भस्थ शिशु का विकास

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 गर्भकालीन विकास के लक्षण एवं संकेत
  5.3.1 गर्भावस्था की पहचान
  5.3.2 मुख्य गर्भकालीन विकास
  5.3.3 गर्भकालीन विकास का अवलोकन
5.4 गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं
  5.4.1गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
    5.4.1.1मातृक कारक
    5.4.1.2 पैतृक कारक
  5.4.2 गर्भाकालीन देखभाल
  5.4.3 जन्म प्रक्रिया
5.5 नवजात शिशु के आगमन की तैयारी
5.6 नवजात
  5.6.1 नवजात से तात्पर्य
  5.6.2 नवजात शिशु की विशेषताएं
  5.6.3 नवजात शिशु की देखभाल
5.7 शिशु के पालन पोषण की विधियां
5.8 शिशु के स्वाथ्य की देखभाल एवं टीकाकरण
5.9 सारांश
5.10 पारिभाषिक शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने विकास के सिद्धांतों तथा वृद्धि एवं विकास की प्रकृति एवं विस्तार के साथ साथ वृद्धि एवं विकास में आने वाली बाधाओं तथा सुगमता के बारे में पढ़ा। वृद्धि एवं विकास जोकि गर्भावस्था से ही शुरू हो जाता है वह आनुवंशिक वंशानुक्रम के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के वातावरण से सम्बन्ध से प्रभावित होता है।निषेचन की प्रक्रिया से पूर्व माँ का पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं ठीक होना आवश्यक है जिससे कि वो मातृत्व को सफलतापूर्वक पूरा कर सके। माँ को गर्भावस्था के लक्षण, गर्भावस्था की परेशानियाँ तथा जटिलताएं तथा प्रसव के बाद माँ और शिशु की देखभाल के बारे में जागरुक होना चाहिए।

इस इकाई में हम गर्भकालीन विकास के विभिन्न लक्षणों के बारे में पढ़ेंगे जिससे कि इसकी प्रक्रिया की निगरानी की जा सके तथा गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक, जन्म प्रक्रिया तथा प्रसव के प्रकार के विषय में चर्चा करेंगे। शिशु के जन्म के बाद उसकी विशेषताओं तथा देखभाल के साथ-साथ शिशु के स्वास्थ्य एवं टीकाकरण के बारे में जानकारी होना आवश्यक है जिससे कि शिशु का जन्म के बाद स्वस्थ विकास हो सके। इसलिए यह आवश्यक है कि हमें गर्भकालीन विकास, प्रसवपूर्व देखभाल, नवजात शिशु के आगमन हेतु तैयारी, नवजात शिशु की देखभाल के विभिन्न तरीके, शिशु के पालन पोषण की विधियों तथा शिशु की स्वास्थ्य सुरक्षा आदि के बारे में अच्छी जानकारी हो। यह सब जीवन चक्र के विभिन्न चरणों में बच्चे के विभिन्न प्रकार के विकास में मदद करते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप निम्न के बारे में जान पायेंगे:

- गर्भकालीन विकास की विभिन्न अवस्थाएं;
- गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व;
- जन्म प्रक्रिया एवं प्रसव के प्रकार;
- माता-पिता को नवजात के आगमन के लिए तैयार करना;
- नवजात की विशेषताओं की पहचान; तथा
- बालक के पालन पोषण की विधियाँ एवं शिशु की स्वास्थ्य सुरक्षा।

5.3 गर्भकालीन विकास के संकेत एवं लक्षण

गर्भकालीन विकास गर्भकालीन अवस्था द्वारा होता है जोकि मानव जीवन की सबसे प्रथम एवं मुख्य विकास की अवस्था है। यह अवस्था गर्भाधान से बच्चे के जन्म के समय तक होती है। जन्म से पहले

गर्भकालीन विकास बहुत तीव्र होता है, मुख्य रूप से शारीरिक विकास, जिसमें समस्त शारीरिक अंगों का विकास आता है जो माँ के शरीर के अंदर ही हो जाता है। मनुष्य में गर्भ का समय औसतन 266 दिन या 38 हफ्ते या 9 माह का होता है।

गर्भकालीन विकास के दौरान, जो गर्भधान से शुरू होता है, गर्भावस्था की पहचान के बहुत सारे लक्षण एवं संकेत होते हैं तथा इस अवधि के दौरान भ्रूण में कई महत्वपूर्ण विकास होते हैं। आइये उनके बारे में पढ़ें।

5.3.1 गर्भावस्था की पहचान

माँ के पेट में गर्भकालीन विकास शुरू हो गया है इसका पहला संकेत गर्भावस्था की पहचान से मिलता है। बहुत सारे संकेत एवं लक्षण हैं जो गर्भावस्था की ओर इशारा करते हैं, जैसे:

- मासिक चक्र का रुक जाना।
- स्तनों में परिवर्तन
- मूत्र विसर्जन की आवृत्ति बढ़ना।
- जी मिचलाना तथा उल्टी होना।
- आधारीय शरीर तापमान।
- गर्भाशय में निरंतर वृद्धि तथा गर्भावस्था की पहचान के लिए अन्य जैविक जांचें।

आइये अब इन लक्षणों एवं संकेतों के विषय में विस्तार से पढ़ें।

- **मासिक चक्र का रुक जाना:** यदि एक स्त्री स्वस्थ है तथा पूर्व में उसके मासिक चक्र नियमित रहे हैं, यदि ऐसी स्त्री के मासिक चक्र में रुकावट आती है तो उसके गर्भवती होने की प्रबल संभावना है।
- **स्तनों में परिवर्तन:** स्तनों के बड़े होने के साथ-साथ उनमें जलन का एहसास भी हो सकता है तथा स्तनों के आकार में वृद्धि पूरी गर्भावस्था के दौरान होती रहती है। निपल्स और अधिक काले तथा उन्नत हो जाते हैं। ये सभी परिवर्तन पहले भी गर्भ धारण कर चुकी महिलाओं की अपेक्षा प्रथम गर्भावस्था वाली महिलाओं में अधिक दिखाई देते हैं।
- **मूत्र विसर्जन की आवृत्ति में वृद्धि:** गर्भावस्था की शुरुआत में मूत्र विसर्जन की आवृत्ति में वृद्धि हो जाती है क्योंकि गर्भाशय के स्थान में परिवर्तन से मूत्राशय के आधार में खिंचाव आ जाता है। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह में यह महसूस होता है कि मूत्राशय भरा हुआ है। हालांकि अकेले इस लक्षण को गर्भावस्था का संकेत नहीं मान सकते क्योंकि इस प्रकार का मूत्र विसर्जन किसी तंत्रिका तनाव के कारण भी हो सकता है।

- **जी मिचलाना तथा उल्टी होना:** सवेरे के समय जी मिचलाना तथा उल्टियां होना एक सामान्य लक्षण है जो 3 या 4 हफ्ते से शुरु होता है। ये अक्सर तभी शुरु होता है जब भ्रूण क्रियाएँ महसूस होने लगती हैं।
- **आधारीय शरीर तापमान:** आधारीय शरीर तापमान में वृद्धि गर्भावस्था का पता लगाने में एक मददगार संकेत होता है यदि गर्भाधान से पूर्व तथा गर्भाधान के बाद ये नापा जाए।
- **गर्भाशय में वृद्धि:** गर्भाशय के रूप, आकार और स्थिति में परिवर्तन गर्भावस्था के संभावित संकेतक हैं।
- **वजन में वृद्धि:** सामान्यतया एक स्त्री का गर्भावस्था के दौरान कुल 10 से 12 किलो वजन बढ़ जाता है। वजन में यह वृद्धि भ्रूण, नाल, झिल्ली और तरल पदार्थ, स्तनों में वृद्धि तथा शरीर के कुछ अन्य ऊतकों में वृद्धि के कारण होती है।
- **जैविक जांच:** गर्भावस्था की शुरुआत में रक्त एवं मूत्र जांच की जाती हैं जिससे ये पता लगता है कि स्त्री गर्भवती है या नहीं।

आप गर्भावस्था के संकेत एवं लक्षणों के प्रति जागरुक हो चुके हैं। अब हम गर्भावस्था के दौरान होने वाले गर्भकालीन विकास के बारे में पढ़ेंगे।

5.3.2 मुख्य गर्भकालीन विकास

भ्रूणावस्था के दौरान शारीरिक अनुपात में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। दूसरे माह में भ्रूण का सिर उसकी कुल लम्बाई का आधा होता है। 8वें हफ्ते के अंत में भ्रूण की लम्बाई केवल 1 इंच होती है जो 5 वें माह के अंत में लगभग 1 फीट हो जाती है तथा वजन लगभग 1 पाउंड हो जाता है। शिशु का तंत्रिका तंत्र तंत्रिका कोशिकाओं से भरा हुआ होता है। 28 वें हफ्ते (7वाँ माह) में शिशु का श्वसन तंत्र इतना विकसित हो जाता है कि यदि उसका समय से पूर्व जन्म हो जाए तो भी वह जीवित रह सकता है। गर्भकालीन अवस्था के अंत में अर्थात जन्म के समय हड्डियों, तंत्रिकाओं, मांसपेशियों की आधारभूत संरचनाओं के साथ-साथ श्वसन तंत्र, परिसंचरण तथा पाचन तंत्र इतने विकसित हो चुके होते हैं कि वो माँ के शरीर से बाहर कार्य कर सकते हैं।

जन्म से कुछ समय पहले अर्थात गर्भावस्था की समाप्ति के आस पास विभिन्न प्रणालियों के अधिकतर अंग प्राथमिक स्तर पर कार्य शुरु कर देते हैं जैसे हृदय में धड़कन, पाचन प्रणाली में क्रमाकुंचन तथा फेफड़ों तथा छाती का समय से पूर्व फैलना तथा सिकुड़ना।

विभिन्न अंगों के विकास एवं कार्य के अतिरिक्त भ्रूण कुछ विशिष्ट प्रतिक्रियाएं करता है जैसे मुँह खोलना एवं बंद करना। यहाँ तक कि भ्रूणावस्था के अंत में यदि उचित उत्तेजना हो तो स्वाद तथा सूंघने के तंत्र भी कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अधिकतर अनैच्छिक क्रियाएँ जन्म के समय उपस्थित होती हैं तथा दबाव, ऊष्मा, ठण्ड, तेज आवाज तथा तेज दर्द के लिए प्रतिक्रिया भी जन्म के

समय से होने लगती है। प्रयोग बतलाते हैं कि मानव भ्रूण की यह प्रवृत्ति होती है कि वो ध्वनि पर प्रतिक्रिया करता है जोकि जन्म का समय निकट आने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। आँखें भी जन्म से पहले ही पर्याप्त विकसित हो चुकी होती हैं जिससे वह अँधेरे तथा प्रकाश में फर्क कर सकता है। यह देखा जा सकता है कि गर्भावस्था के सभी विकास क्रमिक होते हैं। तालिका 5.1 में गर्भावस्था के दौरान होने वाले प्रमुख विकास दिए गए हैं:

तालिका 5.1: गर्भावस्था के दौरान होने वाले प्रमुख विकास (गर्भाधान से जन्म तक)

शारीरिक विकास	मानसिक विकास	मनोसामाजिक विकास
• गर्भाधान होना • आनुवंशिक पदार्थों की वातावरणीय प्रभावों से परस्पर क्रिया। • आधारीय शरीर संरचना तथा अंगों का निर्माण। • मस्तिष्क का विकास। • शारीरिक विकास बहुत तेज होता है।	• सीखने और याद करने की क्षमताओं का विकास। • संवेदी उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया का विकास।	• भ्रूण माँ की आवाज पर प्रतिक्रिया करता है तथा इसके लिए वरीयता भी विकसित हो जाती है।

5.3.3 गर्भकालीन विकास का अवलोकन

पिछले भाग में हमनें मुख्य गर्भकालीन विकास, उनके लक्षण एवं संकेतों के बारे में पढ़ा। अब यह सीखना आवश्यक है कि गर्भकालीन विकास का अवलोकन किस प्रकार किया जा सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि ये विकास सही दिशा में हो रहे हैं। अब हम यह सीखेंगे कि किस प्रकार भ्रूण अवलोकन तकनीक द्वारा गर्भकालीन विकास का अवलोकन किया जा सकता है जिसके द्वारा माँ के पेट में भ्रूण के सटीक विकास का पता लगाया जा सके। इसके द्वारा यदि कोई असामान्य विकास हो रहा है तो उसका भी पता लगाया जा सकता है। अल्ट्रासाउंड द्वारा भ्रूण की गतिविधियों का अवलोकन किया जा सकता है। उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों द्वारा भ्रूण के प्रारूप का पता लगाया जा सकता है।

अल्ट्रा साउंड

यह गर्भकालीन विकास के अवलोकन की सबसे सामान्य एवं सरल तकनीक है। अल्ट्रासाउंड एक नैदानिक उपकरण है जो गर्भ में पल रहे भ्रूण का तत्कालीन चित्र प्रदर्शित करता है। अल्ट्रासाउंड को माँ के पेट की ओर निर्देशित किया जाता है जिससे माता-पिता अपने बच्चे का चित्र उससे जुड़ी मॉनीटर स्क्रीन पर देख सकते हैं। अल्ट्रासाउंड का प्रयोग निम्न के लिए किया जाता है:

- भ्रूण विकास
- गर्भावधि
- एकाधिक गर्भ
- गर्भाशय असामान्यताएं
- भ्रूण संरचना में असामान्यता
- भ्रूण जीवित है या मृत, यह पता लगाने के लिए।

अल्ट्रासाउंड द्वारा ऊपर लिखे इन अवलोकनों के अतिरिक्त भ्रूण के विशिष्ट व्यवहारों का अवलोकन सोनोग्राफी द्वारा भी किया जा सकता है, जैसे:

- अंगूठा चूसना
- भ्रूण गतिविधि
- भ्रूण की क्रियात्मक गतिविधि
- भ्रूण की संरचना एवं आकार
- एम्निओटिक द्रव्य की मात्रा
- भ्रूण की हृदय दर
- भ्रूण के चेहरे के हाव भाव
- हस्त गतिविधियां
- लिंग का पता लगाना

कुछ अन्य उपकरण भी प्रयोग में लाये जाते हैं जिनके द्वारा हृदय दर, सक्रियता स्तर में बदलाव, नींद की अवस्था एवं जागृत अवस्था तथा हृदय प्रतिक्रियाशीलाता का अवलोकन किया जा सकता है। गतिविधि तथा क्रियाशीलता का स्तर प्रत्येक व्यक्ति तथा लिंग विभिन्नता को चिन्हित करता है। सम्पूर्ण गर्भावस्था में नर भ्रूण की प्रवृत्ति मादा की अपेक्षा अधिक शक्तिपूर्वक गतिविधियाँ करने की होती है।

5.4 गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं

जैसे की हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं गर्भकालीन विकास माँ के गर्भाशय में एक निश्चित समय के लिए होता है जिसे गर्भावस्था या गर्भ का समय कहते हैं। यह गर्भ का समय गर्भाधान से शुरु होता है तथा शिशु के जन्म पर खत्म होता है। यह समय आमतौर पर 266 दिन या 38 हफ्ते या 9 माह का होता है।

गर्भकालीन विकास को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है जो तालिका 5.2 में दिया गया है:

तालिका 5.2: गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं

क्रम संख्या	अवस्था का नाम	समय अवधि
1.	डिम्बावस्था	शुरुआत के 2 हफ्ते
2.	भ्रूणावस्था	2 हफ्ते से 2 माह
3.	गर्भस्थ शिशु की अवस्था	2 माह से जन्म तक

इन अवस्थाओं के दौरान मूल एक कोशीय जायगोट पहले भ्रूण में विकसित हो जाता है फिर बाद में गर्भस्थ शिशु में। जन्म से पहले तथा जन्म के बाद दोनों में विकास दो आधारीय सिद्धांतों के अनुसार अग्रसर होता है :

- **मस्ताकधोमुखी सिद्धांत (अर्थात सिर से पैर की ओर):** इसका अर्थ है कि विकास सिर से धड़ के निचले हिस्से को होता है। उदाहरण के लिए भ्रूण का सिर, मस्तिष्क तथा आँखें शरीर के अन्य भागों की तुलना में जल्दी विकसित हो जाते हैं।
- **निकट दूर दिशा में (अर्थात नजदीक से दूर):** इस सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रक्रिया शरीर के केंद्र से बाहर की ओर होती है। उदाहरणार्थ सबसे पहले भ्रूण का सिर और धड़, फिर पैर तथा भुजाएं और अंत में हाथों की तथा पैर की अंगुलियाँ विकसित होती हैं।

गर्भकालीन विकास की तीनों अवस्थाओं के विशिष्ट गुण नीचे बॉक्स में दिए गए हैं:

बॉक्स 1: गर्भकालीन विकास की विशेषताएं	
बीजवस्था या डिम्बावस्था (गर्भाधान से 2 हफ्ते तक)	• आकार अपरिवर्तित रहता है क्योंकि बाहर से पोषण की कमी रहती है। • तीव्र आतंरिक विकास। • निषेचन के लगभग 10 दिन बाद निषेचित अंडे का गर्भाशय की दीवार पर आरोपण।
भ्रूणावस्था (दूसरे हफ्ते से 2 माह तक)	• सभी मुख्य आतंरिक एवं बाह्य अंगों का निर्माण एवं कार्य आरम्भ हो जाता है। • यौन अंग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं जिससे कि शिशु का लिंग पता किया जा सकता है। • भ्रूण की लम्बाई डेढ़ से दो इंच तथा वजन 2-3 ऑन्स होता है। • गर्भनाल, नाभि रज्जु तथा एमनीओटिक सैक विकसित हो जाता है।

गर्भस्थ शिशु की अवस्था	• सभी मुख्य आतंरिक एवं बाह्य अंगों का निर्माण एवं कार्य चलता रहता है। • आतंरिक अंग लगभग अपनी पूर्ण विकसित अवस्था तक पहुँच जाते हैं। • व्यवहारिकता की उम्र 6 से 7 महीने में आ जाती है। • शिशु क्रियाविधि शुरु हो जाती हैं (जैसे पैर चलाना)।

बीजावस्था या डिम्बावस्था (गर्भाधान से 2 हफ्ते तक)

बीजावस्था या डिम्बावस्था जो गर्भकालीन विकास की पहली अवस्था है, के दौरान निषेचित अंडा तीव्र कोशिका विभाजन से गुजरता है जिससे वो और अधिक जटिल हो जाता है तथा गर्भाशय की दीवार पर प्रत्यारोपित हो जाता है। अन्य कोशिकाओं की भांति निषेचित अंडा भी 2-2 में विभाजित होकर बढ़ता जाता है। एक प्राकृतिक गर्भधान के 3 या 4 दिन बाद विभाजित कोशिकाओं का समूह जिसे ब्लास्टूला कहते हैं फैलोपियन ट्यूब में नीचे की ओर आता है। उसके बाद वह गर्भाशय में प्रवेश कर जाता है जैसा कि नीचे चित्र 5.1 में दिखाया गया है।

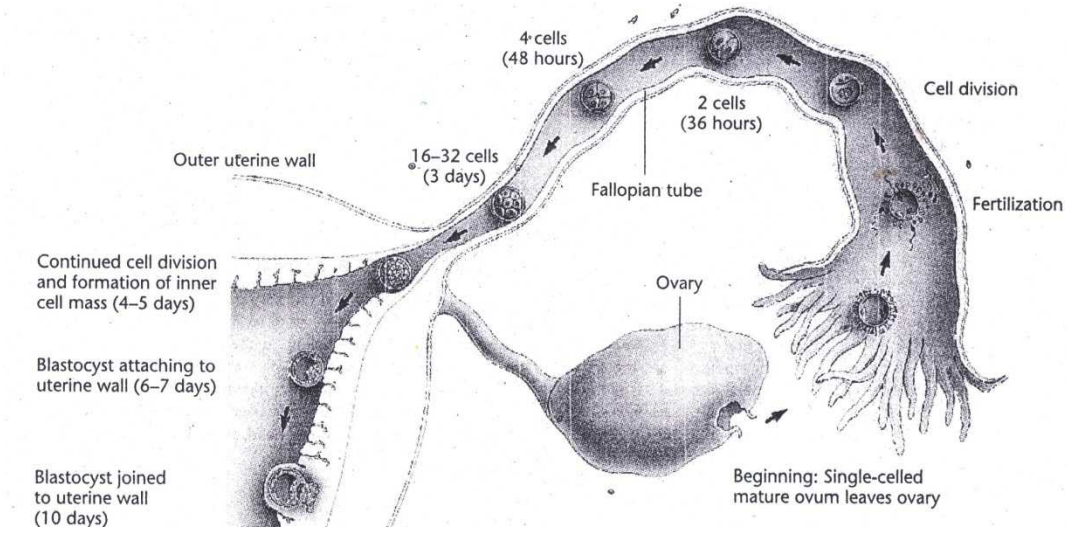

चित्र 5.1: फैलोपियन ट्यूब में गर्भाधान की प्रक्रिया, अंडाणु का शुक्राणु द्वारा निषेचन, निषेचित अंडाणु का फैलोपियन ट्यूब से गर्भाशय की ओर जाना।

सर्वप्रथम ब्लास्टूला जोकि कोशिकाओं से बनी हुई तथा द्रव्य भरी हुई खोखली बॉल होती है तथा गर्भाशय में स्वतन्त्र तैरती रहती है, अंतत: गर्भाधान के लगभग 10 वें या 12 वें दिन गर्भाशय की दीवार पर आरोपित हो जाती है। हालांकि ये आरोपण हमेशा सफल नहीं होता और जब ये असफल होता है तब ब्लास्टूला उस महिला के अगले मासिक चक्र के समय बाहर आ जाता है।

जब ब्लास्टूला गर्भाशय की दीवार पर ठीक प्रकार से आरोपित हो जाता है तब उसके सबसे बाहर की पर्त की कुछ कोशिकाएं गर्भनाल (अम्ब्लीकल कॉर्ड), नाभि रज्जु (प्लेसेंटा) तथा एम्नियोटिक सैक में बदल जाती हैं। प्लेसेंटा भ्रूण से अम्ब्लीकल कॉर्ड द्वारा जुड़ा हुआ रहता है जिसके द्वारा वह शिशु को पोषण तथा ऑक्सीजन प्रदान करता है तथा इसके साथ-साथ उसके शरीर का मल बाहर निकालता है। प्लेसेंटा अजन्मे बच्चे की आतंरिक संक्रमण से रक्षा करता है तथा उसे विभिन्न बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह गर्भावस्था में आवश्यक हारमोन पैदा करता है, स्तनों को दूध पिलाने के लिए तैयार करता है तथा अंत में गर्भाशयी संकुचन को उत्प्रेरित करता है जिससे बच्चा माँ के पेट से बाहर निकल सके।

दूसरी ओर ब्लास्टूला के अंदर की कोशिकाओं की दीवार से शिशु का निर्माण होता है। ये कोशिका की दीवार बाह्य, मध्य तथा भीतरी परतों में पृथक हो जाती है। बाह्य परत से शिशु की त्वचा तथा तंत्रिका तंत्र, भीतरी परत से अधिकतर आतंरिक अंग तथा मध्य परत से बचे हुए अंग, मांसपेशियों तथा हड्डियों का निर्माण होता है।

भ्रूणावस्था (2 हफ्ते से 2 माह)

भ्रूणावस्था गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था है जो गर्भाधान के 2 हफ्ते बाद शुरु होती है तथा 2 माह तक चलती है। इस अवस्था के दौरान शरीर के अंग तथा मुख्य तंत्रों जैसे श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र तीव्रता से विकसित होते हैं। यह वह नाजुक समय होता है जब गर्भकालीन वातावरण के बुरे प्रभाव से भ्रूण सर्वाधिक प्रभावित होता है। बहुत अधिक बुरी तरह प्रभावित भ्रूण गर्भावस्था के 3 माह से अधिक जीवित नहीं रह सकता है। इस समय स्वत: गर्भपात जिन्हें सामान्यतया गर्भपात कहा जाता है के होने की बहुत संभावना रहती है जोकि भ्रूण के गर्भाशय से बाहर आने की प्रक्रिया है जबकि वह माँ के पेट के बाहर जीवित नहीं रह सकता है।

जब कोशिका विभेदन पूरा हो जाता है तब विकसित हो रहे जीव को भ्रूण कहते हैं। भ्रूण अब तेजी से बढ़ता है जिसमें उसका ऊपर का आधा भाग निचले आधे भाग की अपेक्षा अधित तीव्रता से वृद्धि करता है। दूसरे शब्दों में सिर और शरीर का ऊपरी भाग शरीर के निचले भाग की अपेक्षा जल्दी आकार ले लेता है अर्थात हाथों का विकास पैरों की अपेक्षा जल्दी होता है। इसी प्रकार आतंरिक अंग हाथ और पैरों से पहले विकसित हो जाते हैं तथा हाथ और पैर हाथों और पैरों की अँगुलियों से पहले। इस अवस्था के अंत में भ्रूण की लम्बाई 1 इंच होती है और अब वह कुछ कुछ मानव आकार का रूप लेने लगता है। सिर अनुपातहीन बड़ा होता है जैसा नीचे चित्र 5.2 में दिखाया गया है। इस अवस्था के अंत तक हृदय दर सुनायी देने लगती है।

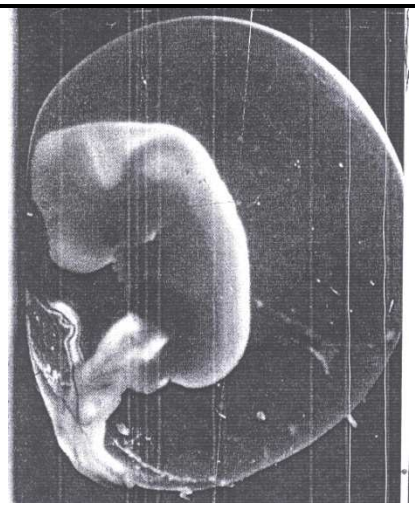

चित्र 5.2: गर्भाधान के 7 हफ्ते बाद का मानव भ्रूण

गर्भस्थ शिशु की अवस्था (2 माह से जन्म तक)

यह गर्भकालीन विकास की तीसरी अवस्था है जो 2 माह से जन्म तक होती है। इसकी विशेषता पहली अस्थि कोशिका का दिखना है। इस अवस्था के दौरान शिशु एक बैग जैसी संरचना के अंदर एक तरल में तैरता रहता है। इस तरल को एम्नीओटिक फ्ल्यूड या एम्नीओटिक द्रव्य कहते हैं जैसा चित्र 5.3 में दिखाया गया है।

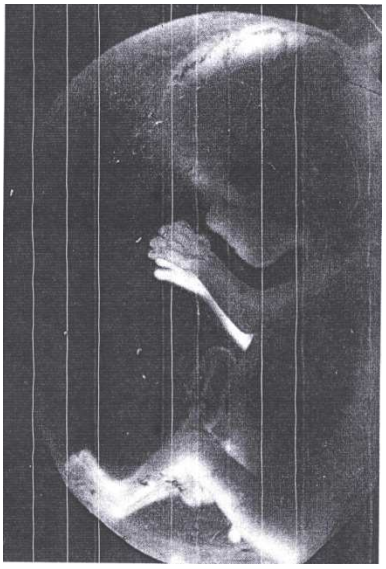

चित्र 5.3: 14 हफ्ते का शिशु

इस अवस्था के दौरान शिशु का विकास बहुत तीव्रता से होता है तथा शिशु अपनी लम्बाई का 20 गुना हो जाता है तथा शरीर के अंग तथा विभिन्न तंत्र और अधिक जटिल हो जाते हैं। इस अवस्था के शुरुआती समय में वृद्धि दर शिखर पर होती है। गर्भावस्था के पहले तीन माह के पश्चात शरीर के सभी महत्वपूर्ण अंग तथा भाग बन जाते हैं। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह बहुत नाजुक होते हैं क्योंकि कोई भी प्रतिकूल गर्भकालीन परिस्थिति का विकसित हो रहे भ्रूण या गर्भ पर गलत प्रभाव हो सकता है। गर्भावस्था के प्रथम तिमाही के अंत तक गर्भस्थ शिशु अपने जलीय परिवेश में स्वतन्त्र घूम सकता है तथा अपने हाथ एवं पैर हिला सकता है। तीसरे माह में शिशु जिस अम्नियोटिक द्रव्य में तैर रहा होता है उसे सांस खींचने में निगल लेता है। यह उसके स्वाद एवं सूंघने के नए ज्ञान को उत्प्रेरित करता है।

गर्भावस्था के दूसरे तिमाही के दौरान जो अंग पहले बन चुके हैं उनका विस्तार होता है और वे और अधिक जटिल हो जाते हैं। हड्डियां कठोर हो जाती हैं तथा हृदय दर इतनी मजबूत हो जाती है कि स्टेथोस्कोप द्वारा सुनी जा सकती है। इस अवस्था में तथा जन्म के समय तक "अंतिम रूप" के कार्य जैसे हाथ के नाखून, पैर के नाखून, बाल, पलकें आदि भी विकसित हो जाते हैं। गर्भाधान के 4 माह बाद अधिकतर महिलाओं को शिशु की गतिवधियों का पहली बार अहसास हो जाता है। गर्भवती महिलाओं द्वारा शिशु की गतिविधियों में विभिन्नता महसूस की जाती है। कुछ शिशु पेट के अंदर बहुत घूमते हैं जबकि इनकी तुलना में कुछ बहुत शांत होते हैं। दूसरे तिमाही के अंत में शिशु के अंदर सीखने की भावना कार्य करने लगती है। एक शिशु माँ के पेट के अंदर जोर की आवाजें सुन सकता है तथा उन आवाजों पर आश्चर्यजनक प्रतिक्रियाएं देता है।

छठे माह तक शिशु बहुत अधिक सीमा तक विकसित हो चुका होता है और यदि इस समय बच्चा पैदा भी हो जाता है तो वह जीवित रह सकता है। जबकि सामान्यतया बच्चा माँ के गर्भ में 38 सप्ताह तक रहता है जिसके बाद उसका जन्म होता है।

शिशु की गर्भकालीन अवस्थाओं तथा गर्भकालीन विकास के दौरान उसके मस्तिष्क के आकार तथा बनावट में भी परिवर्तन होते हैं। 5 माह के शिशु का मस्तिष्क शांत होता है, 7 माह से वह कुछ विशिष्ट संकेत देने लगता है तथा 9 माह तक यह पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि गर्भावस्था में गर्भस्थ शिशु अपनी माँ के पेट में निष्क्रिय अवस्था में नहीं रहते हैं। शिशु साँस लेते हैं, पैर चलाते हैं, पलटते हैं, निगलते हैं, मुक्का मारते हैं तथा अपना अंगूठा चूसते हैं।

ऊपर की गयी चर्चा तीन गर्भकालीन अवस्थाओं पर केंद्रित है। आइये अब प्रत्येक माह में होने वाले गर्भकालीन विकास को देखते हैं जैसा तालिका 5.3 में दिया गया है।

तालिका 5.3: माह दर माह गर्भकालीन विकास

माह	वर्गीकरण
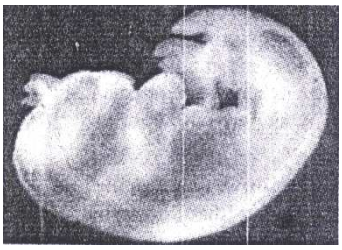 1 माह	• भ्रूण की लम्बाई आधा इंच। • धमनियों एवं शिराओं से रक्त प्रवाह शुरु। • हृदय दर 65 प्रति मिनट। • मस्तिष्क, गुर्दे, यकृत तथा पाचन तंत्र की शुरुआत। • गर्भनाल क्रियान्वित हो जाती है। • सिर पर उभार दिखायी देते हैं जो आँख, मुँह तथा नाक का रूप ले लेते हैं। • लिंग निर्धारित नहीं किया जा सकता।
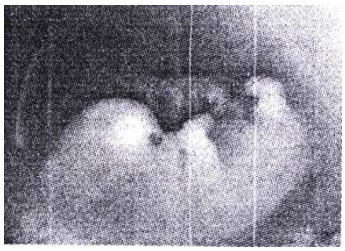 7 सप्ताह	• लम्बाई 1 इंच से कुछ कम तथा वजन एक तिहाई ऑन्स। • सिर शरीर की कुल लम्बाई का आधा। • चेहरे के सभी अंग जीभ तथा दन्त कलियों सहित स्पष्ट रूप से विकसित। • भुजाओं में हाथ, अंगुलियाँ तथा अंगूठा आ गया है। • पैरों में घुटना, एड़ी तथा पैरों की अंगुलियाँ विकसित। • अस्थि कोशिकाएं 7 वें सप्ताह तक विकसित। • यौन अंग विकसित होने शुरु। • हृदय दर स्थिर।
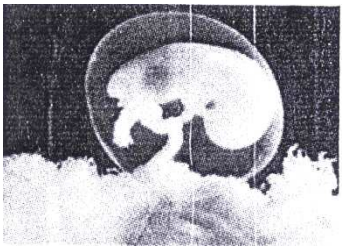 3 माह	• शिशु की लम्बाई 3 इंच। • वजन करीब 1ऑन्स। • अंगुलिओं के नाखून, पैरों के नाखून, पलकें, स्वर रज्जु, होंठ तथा नाक दिखाई देने लगते हैं। • अंग प्रणालियाँ कार्य करने लगती हैं। अत: शिशु साँस ले सकता है, निगल सकता है और कभी-कभी मूत्र त्याग भी कर सकता है। • कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है जैसे टाँगे, पैर, अंगूठा तथा हाथ हिलाना।

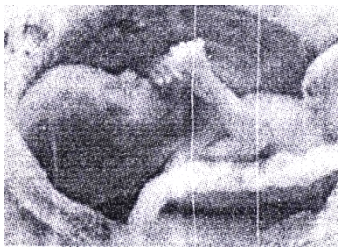 4 माह	• सिर शरीर की लम्बाई का सिर्फ एक चौथाई। • शिशु की लम्बाई 7 से 10 इंच। • वजन लगभग 6 ऑन्स। • गर्भनाल शिशु की लम्बाई के बराबर लंबी। • माँ बच्चे का पैर मारना महसूस कर सकती है। • अनैच्छिक क्रियाएँ और अधिक प्रधान हो जाती हैं।
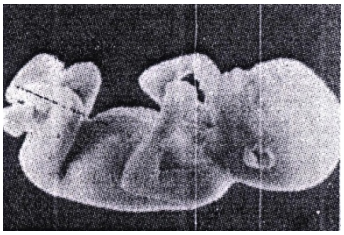 5 माह	• वजन लगभग 1 पाउंड। • लम्बाई करीब 12.5 इंच। • जागने-सोने का निश्चित तरीका आ जाता है। • पैर मारना, शरीर खींचना तथा बराबर हिचकी, ये सभी गतिविधियां और अधिक फुर्ती से करने लगता है। • पलकें, भौहें तथा सिर पर बालों का विकास। • श्वसन तंत्र अभी पूर्णतया विकसित नहीं।
 6 माह	• शिशु की लम्बाई 14 इंच। • वजन सवा पौंड। • त्वचा के नीचे वसा की गद्दियाँ, आँखें पूर्ण तथा खुली हुई, बंद हो सकने वाली तथा सभी दिशाओं में देख सकती हैं। • अपरिपक्व श्वसन तंत्र, अत: यदि इस समय शिशु पैदा होता है तो जीवित नहीं रह सकता है।
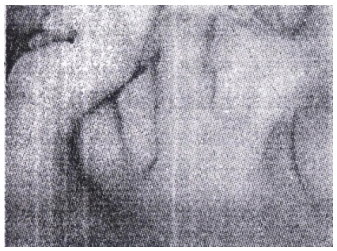 7 माह	• शिशु लगभग 16 इंच लंबा। • वजन 3 से 5 पौंड। • अनैच्छिक क्रियाएँ पूर्ण विकसित। • रोता है, साँस लेता है, निगलता है तथा चूस सकता है। • सिर में बाल अभी भी उग रहे हैं।

 8 माह	• शिशु 18 से 20 इंच लंबा। • वजन 5 से 8 पौंड। • पूरे शरीर की सतह पर वसीय तहें विकसित जो शिशु को पेट से बाहर आने पर बाहर के वातावरण के तापमान के अनुकूल बनाती हैं। • कम गतिविधियां।
 9 माह	• वजन लगभग साढ़े सात पौंड। • लम्बाई लगभग 20 इंच। • वसा तहें अभी भी बन रही हैं। • सभी प्रणालियाँ ठीक प्रकार से कार्य करने लगती हैं। • हृदय दर में बढ़ोत्तरी।

ऊपर की गयी चर्चा से गर्भकालीन विकास के समस्त पहलू स्पष्ट हो गए हैं। आइये अब हम गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में पढ़ें।

5.4.1 गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शिशु के जन्म से पहले के विकास अर्थात माँ के गर्भाशय में विकास को कई तत्व प्रभावित करते हैं। माँ का शरीर शिशु के लिए गर्भावस्था से पहले का वातावरण है जहां वो जन्म से पहले तक रहता है। वस्तुत: वह प्रत्येक वस्तु जो माँ को प्रभावित करती है फिर चाहे वह उसका भोजन हो या फिर उसकी मनोदशा सभी अजन्मे शिशु के वातावरण को प्रभावित करते हैं और ये सब शिशु के विकास एवं वृद्धि प्रभावित करते हैं। सामान्यतया गर्भाशय के भीतर की परिस्थिति एक स्वस्थ शिशु के लिए आदर्श होती है लेकिन कभी-कभी कोई नुकसानदायक कारक विकास के किसी महत्वपूर्ण समय में प्रवेश कर गर्भकालीन विकास को कुछ समय के लिए या फिर हमेशा के लिए प्रभावित कर देता है। माँ जो खाना खाती है, दवा लेती है, बीमार होती है, जो विकिरण प्राप्त करती है तथा जो भाव महसूस करती है ये सभी पेट के भीतर शिशु को प्रभावित करते हैं।

अब हम उन सभी कारकों के बारे में चर्चा करेंगे जो गर्भकालीन विकास को प्रभावित करते हैं जैसा बॉक्स 2 में दिखाया गया है। इन कारकों को मातृक कारक, बाह्य वातावारणीय नुकसानदायक कारक तथा पैतृक कारकों में बांटा जा सकता है।

बॉक्स 2	
क्रम सं0	**गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व**
1.	मातृ कारक • माँ का पोषण • शारीरिक कार्य • माँ का स्वास्थ्य • विटामिन की कमी • आर एच तत्व • दवाओं का सेवन • माँ की आयु • शराब का सेवन • तम्बाकू का उपयोग • यूटेराइन क्राउडिंग (uterine crowding)
2.	बाह्य वातावारणीय नुकसानदायक कारक • एक्स रे तथा रेडियम • रसायन • अत्यधिक तापमान
3.	पैतृक कारक • धूम्रपान, शराब पीना या नशीली दवाओं का सेवन • पिता की आयु

5.4.1.1 मातृक कारक

अब हम विभिन्न मातृक कारकों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे जो माँ के गर्भ में पल रहे शिशु के विकास को प्रभावित करते हैं। माँ के शरीर में कोई भी परिवर्तन या प्रभाव अजन्मे शिशु के विकास को प्रभावित करता है। हम प्रत्येक कारक के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

माँ का पोषण

अजन्मे शिशु को आहार माँ के रक्त से प्लेसेंटा द्वारा पहुँचता है। शिशु को स्वस्थ रखने के लिए माँ के आहार में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट होने चाहिए। जो स्त्री गर्भावस्था के समय पर्याप्त वजन प्राप्त कर लेती है ऐसी स्त्री से कम वजनी शिशु होने की संभावना बहुत कम होती है। जो महिलाएं पर्याप्त आहार नहीं लेती हैं उनकी समय से पूर्व प्रसव होने तथा उनके शिशु का वजन कम होने की संभावना अधिक होती है जिनकी या तो जन्म के समय या फिर जन्म के कुछ समय बाद मृत्यु होने की संभावना होती है। कुपोषित महिलाओं में संक्रमण होने का खतरा अधिक होता है जोकि शिशु के लिए हानिकारक होता है। इस सब के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गर्भावस्था के दौरान माँ का पोषण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि शिशु का विकास एवं स्वास्थ्य इससे सीधा सम्बंधित है।

विटामिन एवं लवण की कमी

विटामिन B6, B12, C, D तथा E की कमी शिशु के सामान्य गर्भकालीन विकास में हस्तक्षेप करती है। वह गर्भवती स्त्री जिसके आहार में विटामिन B, C, D, कैल्सियम, फॉसफोरस, आयरन या आयोडीन की कमी होगी उसके बच्चे के कुपोषित होने की बहुत संभावना होती है। गर्भावस्था के दौरान आयोडीन की कमी से क्रिटीनिजम, तंत्रिका तंत्र सम्बंधित परेशानियाँ तथा थायराइड संबंधी परेशानी होने का खतरा रहता है।

शारीरिक गतिविधि

गर्भवती स्त्री द्वारा नियमित व्यायाम उसे कब्ज से बचाता है तथा श्वसन तंत्र, परिसंचरण तंत्र तथा त्वचीय लोचमयता को बेहतर बनाता है जिससे आरामदायक गर्भावस्था तथा आसान एवं सुरक्षित प्रसव होता है।

माँ का स्वास्थ्य

माँ के स्वास्थ्य का अजन्मे शिशु पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। माँ की बीमारी जैसे अंत:स्त्रावी विकार, संक्रामक रोग, लंबी बीमारियाँ तथा माँ का वजन कम या ज्यादा होना ये सभी गर्भकालीन विकास को प्रभावित करती हैं। अत: गर्भवती स्त्री को इन सभी से बचने का प्रयास करना चाहिए।

आर. एच. तत्व

माँ के रक्त में निर्मित एंटीबॉडी सामान्यतया लाभदायक होते हैं जोकि हमारे शरीर को विभिन्न बीमारियों के संक्रमण से बचाते हैं। जबकि यदि माँ के रक्त में आर. एच. निगेटिव तत्व हैं तो वो अजन्मे बच्चे को नुकसान पहुंचा सकते हैं। ऐसी स्थिति में माँ का रक्त आर. एच. पॉजिटिव के लिए संवेदनशील होता है तथा उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली आर. एच. पॉजिटिव के लिए एंटीबॉडी बना लेती है। ये एंटीबाडी प्लेसेंटा को पार कर शिशु के आर. एच. पॉजिटिव युक्त रक्त कोशिकाओं पर आक्रमण कर देती हैं। इसकी ज्यादा गंभीर परिस्थिति में शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

दवाओं का सेवन

माँ जिस भी चीज का सेवन करती है वह बच्चे पर सीधा प्रभाव डालती है। दवाएं ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड की भांति प्लेसेंटा को पार करके गर्भ में पल रहे भ्रूण को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

माँ की आयु

सामान्यतया 21 वर्ष की उम्र के पश्चात हार्मोन्स की सक्रियता कम हो जाती है अत: इस उम्र में गर्भावस्था के दौरान उच्च रक्त शर्करा, उच्च रक्त चाप तथा गंभीर रक्तस्राव होने की संभावना होती है।

यूटेराइन क्राउडिंग (uterine crowding)

गर्भाशय में दो या दो से अधिक शिशु होने पर गर्भाशय क्षेत्र में क्राउडिंग हो जाती है जिससे शिशु की गतिविधि सीमित हो जाती है। अत: शिशु का उचित विकास नहीं हो पाता।

शराब का सेवन

गर्भवती महिला द्वारा अत्यधिक एवं रोजाना शराब का सेवन बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को क्षति पहुंचाता है। अत्यधिक शराब के सेवन से फीटल एल्कोहोल सिंड्रोम हो जाता है जोकि गर्भकालीन तथा जन्म के बाद के विकास के दौरान मानसिक तथा क्रियात्मक विकास में विकृति का मिश्रण है।

चित्र 5.4 फीटल एल्कोहाल सिंड्रोम के साथ जन्मा एक 4 वर्ष का बच्चा

तम्बाकू का सेवन

गर्भावस्था के दौरान सिगरेट का सेवन गर्भकालीन विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इससे गर्भपात होने, कम वजन के शिशु के पैदा होने, गर्भकालीन विकास में अवरोध आने तथा शिशु की मृत्यु होने जैसे परिणाम सामने आ सकते हैं।

बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्व

अभी तक हमने उन मातृक कारकों के बारे में पढ़ा जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गर्भकालीन तथा जन्म के बाद के विकास को प्रभावित करते हैं। अब हम उन बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्वों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे जो गर्भकालीन विकास को बुरी प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं:

1. एक्स-रे एवं विकिरण से संपर्क
2. रसायन
3. अत्यधिक तापमान

इन सभी कारकों से शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास रुक जाता है तथा गर्भ में ही शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

5.4.1.2 पैतृक कारक

पैतृक कारक अर्थात पिता से सम्बंधित कारक, ये कारक भी गर्भाकालीन विकास को प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्न हैं:

1. शराब का सेवन
2. धूम्रपान
3. विकिरण से संपर्क
4. सीसे से संपर्क

ये सभी कारक शुक्राणुओं में विकृति पैदा करते हैं, कम वजनी शिशु होने की संभावना बढ़ा देते हैं , तथा शिशु में कैंसर होने की संभावना भी हो जाती है।

5.4.2 गर्भाकालीन देखभाल

गर्भकालीन विकास के दौरान गर्भवती महिला की देखभाल अत्यंत आवश्यक है। इस दौरान की गयी देखभाल से कम वजनी शिशु तथा समय पूर्व शिशु होने की संभावना कम हो जाती है। गर्भकालीन देखभाल निम्न कारणों से आवश्यक है:

1. यह तब बहुत आवश्यक है जब जुड़वां या दो से अधिक बच्चे हों।
2. कम वजनी शिशु की स्थिति में गर्भकालीन देखभाल तथा जन्म के समय बहुत देखरेख की आवश्यकता होती है।

3. रोजाना डॉक्टर के परामर्श की बहुत आवश्यकता होती है जिससे गर्भवती स्त्री को संतुलित आहार एवं पोषक पदार्थों की महत्ता के विषय में बताया जा सके।

गर्भकालीन देखभाल के दौरान ध्यान देने योग्य बातें :

- गर्भकालीन देखभाल के अंतर्गत किसी प्रशिक्षित व्यक्ति या डॉक्टर द्वारा गर्भवती महिला की जांच, उपचार तथा उसे शिक्षित किया जाना चाहिए।
- सामान्य स्थिति में गर्भकालीन देखभाल के अंतर्गत स्त्री को आने वाले शिशु के लिए तैयार किया जाता है, उसे गर्भावस्था के दौरान क्या क्या आहार लेना चाहिए इसके बारे में बताया जाता है तथा बच्चे को दूध पिलाने के समय उसे क्या अतिरिक्त आहार लेना चाहिए इसके बारे में भी बताया जाता है।
- गर्भवती महिला में वजन में होने वाली वृद्धि की नियमित जांच करनी चाहिए।

5.4.3 जन्म प्रक्रिया

अभी तक हमने जन्म से पूर्व के विकासों के सम्बन्ध में पढ़ा जब तक शिशु माँ के पेट के अंदर होता है। लेकिन जब यह गर्भकाल तथा गर्भकालीन विकास पूर्ण हो जाता है (9 माह में) तब शिशु के जन्म का समय आ जाता है। इस भाग में हम जन्म प्रक्रिया से सम्बंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे जैसे:

1. **जन्म का समय एवं स्थान**
2. **प्रसव की अवस्थाएं**
3. **जन्म के दौरान आने वाली परेशानियाँ**
4. **शिशु जन्म की तैयारियां तथा विकास में परेशानियाँ**

अब हम इन सभी का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

जन्म का समय एवं स्थान

प्रसव का समय गर्भवती स्त्री की डॉक्टर द्वारा पहली जांच से शुरु होता है। इसे गर्भवती स्त्री के अंतिम मासिक धर्म के पहले दिन में 280 दिन जोड़कर निकाला जाता है। अंतिम मासिक धर्म से 38 से 42 सप्ताह के मध्य ही प्रसव प्रक्रिया शुरु होती है।

प्रसव की अवस्थाएं

प्रसव की प्रमुख तीन अवस्थाएं हैं:

प्रथम अवस्था या विस्तारण की अवस्था (stage of dilation)

इस अवस्था में यदि स्त्री का प्रथम प्रसव है तों 12-16 घंटे तथा यदि प्रथम प्रसव नहीं है तो 6-8 घंटे लगते हैं। यह अवस्था प्रसव दर्द के प्रारम्भ होने से योनि के विस्तारण तक रहती है। इसलिए इस अवस्था को विस्तारण की अवस्था कहते हैं। प्रसव की प्रथम अवस्था में गर्भाशय की मांसपेशियों में तीव्र संकुचन होता है जिससे उदर तथा कमर के निचले हिस्से में दर्द प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक गर्भाशयिक पेशीय संकुचन के साथ भ्रूण का सिर नीचे योनी की ओर आने लगता है। पेशीय संकुचन से गर्भाशय का ऊपरी भाग कठोर हो जाता है तथा निचला भाग कोमल होकर फ़ैल जाता है अत: यह अवस्था योनी मार्ग के प्रसारण की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था के अंत में स्त्री तीव्र संकुचन महसूस करती है जो शिशु को बाहर आने में मदद करने हेतु गर्भाशय में हो रहे फैलाव के कारण होता है।

द्वितीय अवस्था या निष्कासन की अवस्था (stage of expulsion)

द्वितीय अवस्था गर्भाशय के पूरी तरह से खुल जाने पर पूरी होती है जब तक कि उससे शिशु बाहर ना आ जाए। शिशु का जन्म द्वितीय अवस्था के दौरान होता है जिसमें साधारणतया 30 मिनट से 2 घंटे तक लगते हैं। अंदर हो रहे संकुचन शिशु को बाहर की ओर धकेलते हैं तथा शिशु जन्म होता है।

तृतीय अवस्था या सम्पूर्ण निष्कासन की अवस्था (stage of total expulsion)

तृतीय अवस्था केवल कुछ मिनटों की होती है जो प्लेसेंटा तथा अन्य झिल्लियों के निष्कासन तक रहती है।

ऊपर दी गयी प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर यह देखा जा सकता है कि प्रसव का कुल समय 14 घंटे होता है जिसे तीनों अवस्थाओं में निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है:

प्रसव की तीनों अवस्थाओं का समय	
अवस्था	**समय**
प्रथम अवस्था	12 1/2 घंटे
द्वितीय अवस्था	80 मिनट
तृतीय अवस्था	10 मिनट

- **प्रसव के दौरान जटिलताएं**

I. एनॉक्सिया: अर्थात शिशु को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध ना होना जो जन्म प्रक्रिया में जटिलता उत्पन्न कर सकता है। जन्म के समय एनॉक्सिया की स्थिति तब आ सकती है जब या तो प्लेसेंटा बहुत जल्दी अलग हो जाए या नाभि रज्जु (umbilical cord) पर बहुत दबाव हो या उसमें गाँठ पड़ गयी हो। एनॉक्सिया से मस्तिष्क कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं जिससे मस्तिष्क विकलांगता होने का खतरा रहता है।

II. **असामान्य जन्म अवस्था:** ये सामान्यतया उत्पन्न हो जाने वाली जटिलता है जब शिशु प्रसव के समय माँ के पेट में पहले सिर की आदर्श अवस्था में नहीं होता है। असामान्य जन्म अवस्था तब होती है जब शिशु का पहले पैर या कूल्हा बाहर आ जाता है। इस प्रकार की अवस्था को उल्टा प्रसव (breech delivery) कहते हैं।

III. **औजारों व उपकरणों द्वारा प्रसव:** औजारों एवं उपकरणों द्वारा प्रसव उसी परिस्थिति में किया जाता है जब प्रसव में कोई जटिलता हो जैसे उल्टा प्रसव या शिशु किसी परेशानी में हो। हालांकि प्रसव में औजारों का प्रयोग शिशु एवं माँ दोनों के लिए नुकसानदायक हो सकता है। अत: इनका प्रयोग बहुत सावाधानी से एवं योग्य चिकित्सक द्वारा ही किया जाना चाहिए।

IV. **शिशु जन्म के समय दवाओं का प्रयोग:** कुछ परिस्थितियों में डॉक्टर गर्भवती स्त्री के दर्द तथा उसकी घबराहट को कम करने के लिए उसे कुछ दवाएं दे देते हैं जो स्त्री को आराम तो देती हैं किन्तु वो प्लेसेंटा को पार कर शिशु को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

5.5 नवजात शिशु के आगमन की तैयारी

नवजात शिशु हेतु की जाने वाली तैयारियां निम्न प्रकार हैं:

प्रसव के सम्बन्ध में जानकारी: जिस महिला को प्रसव के सम्बन्ध में पूर्व से ही जानकारी होती है वह अपनी प्रसव प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी के रूप में कार्य करती है जिससे अच्छे परिणाम सामने आते हैं।

शिशु हेतु चिकित्सक की खोज: शिशु हेतु एक अच्छे शिशु चिकित्सक का चुनाव करना चाहिए।

अनुभवी माताओं से जानकारी प्राप्त करना: गर्भवती स्त्री को अनुभवी महिला से शिशु के जन्म एवं देखभाल सम्बंधित जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जिससे शिशु का पालन पोषण आसान हो सके।

शिशु हेतु आवश्यक सामानों की खरीद: शिशु हेतु कुछ आवश्यक सामानों की खरीद पहले ही कर लेनी चाहिए जैसे:

- शिशु के कपड़े
- डाइपर एवं वाइप्स
- बेबी लोशन तथा मोइस्चराइजर
- बेबी ऑयल
- हेयर ऑयल तथा शैम्पू
- बेबी क्रीम

- कंघी
- बेबी बैड
- बोतल एवं निप्पल
- बोतल साफ़ करने हेतु ब्रश
- तौलिया
- कम्बल
- शिशु का सामान ले जाने हेतु बैग आदि।

शिशु के पालन पोषण (देखभाल) संबंधी कक्षाएं: माता एवं पिता दोनों को शिशु देखभाल सम्बंधित कक्षाओं में भाग लेना चाहिए जिससे उन्हें नवजात की देखभाल, नवजात के सामान्य व्यवहार, नवजात से घुलने मिलने का तरीका तथा नवजात के लिए चिकित्सक की आवश्यकता आदि की समझ हो सके।

अभ्यास प्रश्न 1

1. गर्भावस्था के संकेत एवं लक्षण बताइये।
2. सही मिलान कीजिए।

कॉलम	कॉलम
1. मस्त्काधोमुखी विकास (cephalocaudal)	a. नजदीक से दूर
2. निकट दूर विकास (proximodistal)	b. सामान्य प्रसव
3. गर्भकालीन विकास की निगरानी	c. विस्तारण
4. स्वाभाविक जन्म	d. आपरेशन द्वारा प्रसव
5. प्रसव की प्रथम अवस्था	e. सिर से पैर की ओर
6. सिजेरियन प्रसव	f. अल्ट्रासाउंड

3. गर्भकालीन विकास की तीन अवस्थाएं क्या हैं?

   ---

4. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख कारकों के बारे में बताइये।

5.6 नवजात शिशु

इस भाग में हम नवजात की परिभाषा, नवजात के विशिष्ट गुण तथा उसकी देखभाल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.6.1 नवजात से तात्पर्य

नवजात से तात्पर्य है नया जन्म लिया हुआ शिशु। नया जन्म लिया हुआ शिशु वह है जो कुछ घंटे, या कुछ दिन या कुछ सप्ताह का ही होता है।

5.6.2 नवजात शिशु की विशेषताएं

बनावट

सामान्य रूप से एक नवजात 20 इंच लंबा तथा 3.2 किग्रा वजनी होता है। नवजात की त्वचा के ऊपर गर्भकालीन बाल होते हैं जिन्हें लेनुगो कहते हैं जो कुछ ही सप्ताह में गिर जाते हैं। आरम्भ के कुछ मिनट में शरीर का रंग नीला होता है जो रक्त में क्षणिक ऑक्सीजन की कमी से होता है जो बाद में गुलाबी हो जाता है। नवजात का सिर उसके शरीर का एक चौथाई होता है।

नवजात की शारीरिक प्रणालियाँ

रक्त परिसंचरण तंत्र

जन्म के तुरंत बाद शिशु का अपना परिसंचरण तन्त्र कार्य करना शुरु कर देता है। एक नवजात की हृदय दर तेज तथा अनियमित एवं रक्तदाब 10 वें दिन के बाद स्थिर होता है।

श्वसन तंत्र

एक नवजात को बहुत अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और वह उसे अब स्वयं ही प्राप्त करनी पड़ती है। अधिकतर शिशु बाह्य वातावरण के संपर्क में आते ही साँस लेना शुरु कर देते हैं। यदि शिशु बाहर आने के 5 मिनट बाद भी साँस लेना शुरु नहीं करता तो ऑक्सीजन की कमी के कारण उसके मस्तिष्क को स्थायी क्षति पहुँच सकती है।

पाचन तंत्र

गर्भाशय के भीतर शिशु माँ से भोजन लेने तथा शरीर के अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने के लिए गर्भनाल पर निर्भर रहता है। किन्तु जन्म के बाद वह स्तनपान करता है तथा उसके अपने पाचक रस उसे पचाने का कार्य करते हैं।

जागरण अवस्था

एक नवजात शिशु सामान्यतया 16 घंटे की नींद लेता है जोकि हर शिशु में थोड़ा बहुत भिन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त वह कुछ अन्य क्रियाविधियां भी करता है। एक नवजात शिशु द्वारा विभिन्न क्रियाविधियों में व्यय समय निम्न प्रकार है:

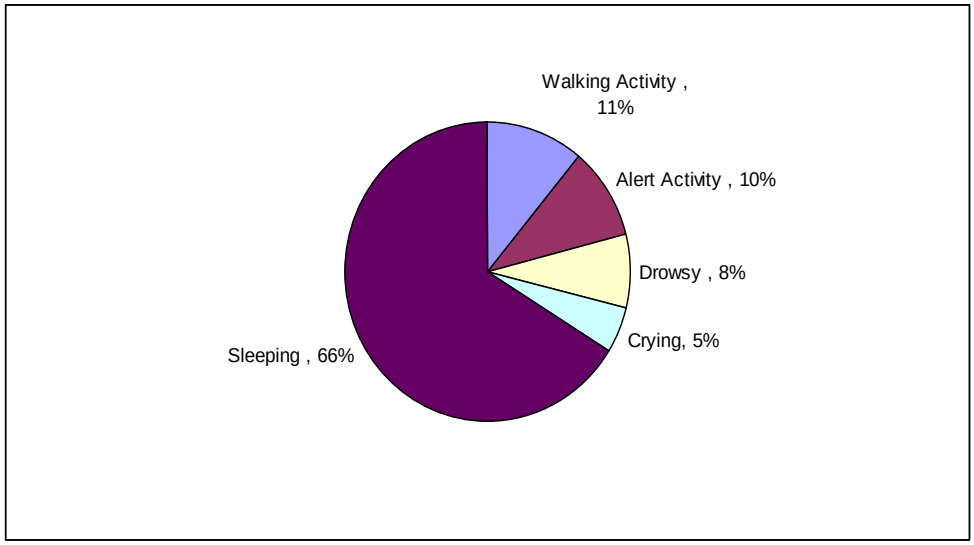

नवजात में अनैच्छिक क्रियाएँ

किसी उद्दीपन के प्रति स्वत: होने वाली प्रतिक्रिया ही अनैच्छिक क्रिया कहलाती है। गर्भाशय से बाहर आने के पश्चात जीवित रहने के लिए बहुत सारी अनैच्छिक क्रियाएँ आवश्यक होती हैं जैसे साँस लेना, दूध पीना, रोना आदि। ये सभी क्रियाएँ शिशु को विभिन्न प्रतिक्रियाओं से समायोजन करने में सहायता करती हैं।

नवजात की संवेदी क्षमताएं

दृष्टि: शिशु जन्म के समय से ही देख सकता है तथा चमकीली रोशनी पर आँखें बंद कर लेता है। यहाँ तक कि दो माह पहले हुआ शिशु भी जन्म के समय ठीक प्रकार से देख सकता है क्योंकि 7 वाँ माह पूरा होने तक आँख के सभी आवश्यक भाग विकसित हो चुके होते हैं।

सुनना: कान गर्भावस्था के अंतिम तिमाह में कार्य करना शुरु करते हैं। नवजात शिशु जब तेज आवाज सुनता है तो और अधिक रोने लगता है तथा कम आवाज उसे बहुत आरामदायक लगती हैं। नवजात शिशु आवाज पर दो प्रकार से प्रतिक्रिया करता है:

1. आवाज की दिशा में अपना सिर घुमाकर।

2. अपनी क्रियाओं को रोककर आवाज सुनने लगते हैं।

स्वाद एवं गंध: ये दोनों इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही पूर्ण विकसित होती हैं। शिशु को स्वाद का पूर्ण ज्ञान होता है तथा वह अलग-अलग गंध में अंतर कर सकता है जैसे शिशु माँ की गंध को पहचानता है।

स्पर्श: 5 इन्द्रियों में से पांचवी इन्द्रिय है स्पर्श। नवजात शिशु शरीर के किसी भी हिस्से में स्पर्श करने पर प्रतिक्रिया करता है।

5.6.3 नवजात शिशु की देखभाल

शिशु जन्म के बाद शिशु की उचित देखभाल अत्यंत आवश्यक है। शिशु की देखभाल के अंतर्गत निम्न बातें आती हैं:

1. नवजात का स्वास्थ्य

नवजात के स्वास्थ्य की देखभाल के अंतर्गत निम्न बातें आती हैं:

- नवजात की नियमित स्वास्थ्य जांच: अस्पताल छोड़ने से पूर्व शिशु का पूर्ण परीक्षण करा लेना चाहिए जैसे सुनने की क्षमता का परीक्षण।
- सम्पूर्ण टीकाकरण: शिशु का उचित समय पर सम्पूर्ण टीकाकरण करवाना चाहिए।
- रोग के लक्षणों की पहचान: यदि शिशु को स्वास्थ्य सम्बंधी कोई परेशानी हो तो उसे तुरंत पहचानकर डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए।

2. दैनिक देखभाल: इसके अंतर्गत निम्न बिंदु आते हैं:

- शिशु के वस्त्रों का चयन सावधानी से करना चाहिए। ऐसे वस्त्र लेने चाहिए जो पहनाने में आसान एवं शिशु के लिए आरामदायक हों।
- शिशु के डायपर एवं नैपी समय समय पर बदलनी चाहिए।
- शिशु की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए, सप्ताह में एक या दो बार नहलाना चाहिए।
- शिशु के नाखून समय समय पर काटते रहने चाहिए।
- स्नान कराते समय शिशु के कान, आँख एवं नाक भी साफ़ करने चाहिए।

3. नवजात की पोषण संबंधी देखभाल

नवजात शिशु अपने भोजन के लिए पूर्ण रूप से माँ के दूध या इन्फैन्ट फार्मूला पर निर्भर होता है। अत: ध्यान रहे कि उसे यह उचित मात्रा में मिलते रहे।

4. **नवजात की सुरक्षा:** नवजात की सुरक्षा हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:
   - किसी ऊंचे स्थान से गिरने से बचाना चाहिए।
   - खाना बनाते समय शिशु को गोद में नहीं लेना चाहिए।
   - शिशु का पालतू जानवरों से बचाव करना चाहिए।
   - शिशु के प्रयोग किए जाने वाले सामान जैसे बिस्तर, कम्बल, खिलौने आदि साफ़ एवं शिशु के लिए सुरक्षित होना चाहिए।

5. नवजात की नींद

नवजात शिशु आरम्भ में एक दिन में लगभग 16-18 घंटे सोता है। शिशु एक बार में 2-3 घंटे की नींद लेता है, फिर वह दूध पीकर या थोड़ा खेलकर दोबारा सो जाता है।

5.7 शिशु के पालन पोषण की विधियां

शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत निम्न बिंदु आते हैं:

- **शिशु को दूध पिलाना एवं डकार दिलाना:** एक नवजात को प्रत्येक 2-3 घंटे में दूध पिलाना चाहिए। शिशु को प्रत्येक बार दूध पिलाने के बाद आवश्यक रूप से डकार दिलानी चाहिए।
- **शिशु को संभालना:** शिशु को पकड़ने से पूर्व अपने हाथ धो लेने चाहिए, शिशु की गर्दन को हाथ से सहारा देकर पकड़ना चाहिए तथा उसे गोद में लेकर ज्यादा हिलाना नहीं चाहिए।
- **शिशु को नहलाते समय ध्यान देने योग्य बातें:**
  I. नहलाने वाला कपड़ा स्वच्छ एवं मुलायम होना चाहिए।
  II. मुलायम तौलिया।
  III. स्वच्छ डायपर।
  IV. स्वच्छ कपड़े।
- **शिशु को मल मूत्र नियंत्रण शिक्षा देना:** शुरुआत में शिशु का अपने शरीर के अपशिष्ट पदार्थों के निकलने पर कोई नियंत्रण नहीं होता है किन्तु धीरे धीरे शिशु को यह सिखाना चाहिए कि अपशिष्ट पदार्थों को निकालने का एक निश्चित स्थान एवं समय होता है। इससे धीरे-धीरे शिशु का शरीर की इस क्रिया पर नियंत्रण हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. नवजात किसे कहते हैं?

---

2. एक नवजात में होने वाली विभिन्न अनैच्छिक क्रियाओं को बताइये।

---

3. नवजात की प्रतिदिन की देखभाल में कौन से बिंदु सम्मिलित हैं?

---

4. शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत कौन से क्षेत्र आते हैं?

5.8 शिशु के स्वास्थ्य की देखभाल एवं टीकाकरण

शिशु की स्वास्थ्य की देखभाल में निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

- **नवजात का स्वास्थ्य परीक्षण**

  - शिशु का औसतन वजन 2.5 से 2.9 किग्रा तथा लम्बाई 19 से 20 इंच होती है।
  - शिशु का शारीरिक परीक्षण (दिल की धड़कन, नेत्र परीक्षण, पीठ, जांघ आदि का परीक्षण) किया जाना चाहिए।
  - पहला टीकाकरण जन्म के समय तथा जन्म के तुरंत बाद हो जाना चाहिए।

- **सामान्य स्वास्थ्य समस्याएँ**

- डायरिया
- पेट दर्द
- सर्दी जुकाम
- पीलिया

- **टीकाकरण**

टीकाकरण से तात्पर्य विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विशिष्ट प्रकार के एंटीजन को प्रवेश कराकर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना है जिससे विभिन्न बीमारियों से व्यक्ति की सुरक्षा सके। टीकाकरण द्वारा रोकने योग्य बीमारियाँ निम्न हैं:

- टिटनेस
- पोलियो
- डिप्थीरिया
- काली खांसी
- खसरा
- क्षय रोग

नीचे राष्ट्रीय टीकाकरण सारणी दी गई है जिसके अनुसार महिलाओं तथा बच्चों को टीके लगाए जाते हैं।

राष्ट्रीय टीकाकरण सारणी

किसके लिए	कब	टीका	मात्रा
महिला	गर्भावस्था	टिटनेस टाक्साइड	2 (एक गर्भावस्था के शुरुआत में दूसरा एक माह बाद)
नवजात शिशु	जन्म के समय	बी. सी. जी.	1
		ओरल पोलियो वैक्सीन	"0" मात्रा
शिशु	6 सप्ताह	डी. पी. टी.	1
		ओरल पोलियो वैक्सीन	पहली
		बी. सी. जी.(यदि जन्म के समय न दिया गया हो।)	1
	10 वाँ सप्ताह	डी. पी. टी.	दूसरी

		ओरल पोलियो वैक्सीन	दूसरी
	14 वाँ सप्ताह	डी. पी. टी.	तीसरी
		ओरल पोलियो वैक्सीन	तीसरी
	9 माह	खसरा	1
		विटामिन ए की रोकथाम *	पहली
	9 से 18 माह	खसरा , गलसुआ , रूबेला	1
	16 से 24 माह	डी. पी. टी.	पहला बूस्टर
		ओरल पोलियो वैक्सीन	पहला बूस्टर
बच्चे	5 से 6 वर्ष	डी. पी. टी.	दूसरा बूस्टर
	10 वर्ष और 16 वर्ष	टिटनेस टाक्साइड़	2

* 3 साल तक हर 6 माह में।

शिशु के लिए टीकाकरण अत्यंत आवश्यक है तथा यह केवल उस परिस्थिति में रोका जा सकता है जब शिशु गंभीर बीमार हो अन्यथा टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. टीकाकरण को परिभाषित कीजिए।
2. टीकाकरण द्वारा रोकी जा सकने वाली 6 बीमारियों के नाम लिखिए।
3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:
   a) गर्भवती स्त्री को ..... टॉक्साइड की 2 खुराकें दी जाती हैं।
   b) बी. सी. जी. का टीका शिशु को ..... दिया जाता है।
   c) शिशु को ..... का ट्रिपल इंजेक्शन ..... की ओरल खुराक के साथ क्रमश: डेढ़ माह, ढाई माह तथा साढ़े तीन माह में दिया जाता है।
   d) खसरा की खुराक शिशु को ..... माह में दी जाती है।

5.9 सारांश

इस इकाई में हमने गर्भकालीन विकास के लक्षण एवं संकेतों का विषय में पढ़ा। हमने गर्भावस्था की पहचान, लक्षण एवं संकेतों के बारे में भी जाना। इसके अतिरिक्त गर्भकालीन विकासों की निगरानी द्वारा गर्भकालीन विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों के बारे में पढ़ा। हमने यह भी जाना कि गर्भवती स्त्री को प्रसव पूर्व क्या देखभाल चाहिए तथा शिशु जन्म के बाद शिशु आगमन की तैयारी क्या होनी चाहिए। इसके साथ-साथ नवजात शिशु की विशेषताओं तथा नवजात शिशु की देखभाल एवं बालक के पालन पोषण की विधियों एवं शिशु की स्वाथ्य सुरक्षा एवं टीकाकरण के सम्बन्ध में भी जानाकारी ली।

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **गर्भपात:** जब गर्भावस्था समय से पहले पूरी हो जाती है तथा विकसित हो रहा जीव गर्भ से बाहर आकर जीवित नहीं रह पाता।
- **अम्नियोटिक द्रव्य:** जल सदृश द्रव्य जिसमें गर्भस्थ शिशु तैरता रहता है।
- **प्लेसेंटा:** माँ के गर्भ में शिशु का पोषण करता है।
- **अल्ट्रासाउंड:** उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों द्वारा भ्रूण की गतिविधि देखना तथा गर्भावस्था की स्थिति पता लगाना।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. गर्भावस्था के लक्षण एवं संकेत: मासिक धर्म का रुक जाना, स्तनों में परिवर्तन, मूत्र त्याग की आवृत्ति में वृद्धि, जी मिचलाना एवं उल्टी होना, आधारीय शरीर तापमान में वृद्धि, गर्भाशय में वृद्धि तथा वजन में वृद्धि।
2. 1 (c) 2 (a) 3 (f) 4 (b) 5 (c) 6 (d)
3. गर्भकलीन विकास की अवस्थाएं निम्न हैं:
   - बीजावस्था (गर्भाधान से दूसरे सप्ताह तक)
   - भ्रूणावस्था (दूसरे सपताह से दूसरे माह तक)
   - गर्भस्थ शिशु की अवस्था (दूसरे माह से जन्म तक)
4. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले 3 प्रमुख तत्व हैं:
   - मातृक कारक
   - बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्व

- पैतृक कारक

अभ्यास प्रश्न 2.

1. एक नए पैदा हुए बच्चे को नवजात कहते हैं।
2. नवजात की विभिन्न अनैच्छिक क्रियाएँ साँस लेना, दूध पीना, रोना, दर्द तथा तापमान पर प्रतिक्रिया करना आदि हैं।
3. नवजात की प्रतिदिन की देखभाल में उसे कपड़े पहनाना, डायपर पहनाना, सुरक्षित स्नान कराना, नाखून की देखभाल, आँख नाक तथा कान की देखभाल, नवजात की सुरक्षा आदि आते हैं।
4. शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत शिशु को दूध पिलाना एवं डकार दिलाना, शिशु को संभालना, शिशु को नहलाते समय ध्यान देना तथा शिशु को मल मूत्र नियंत्रण की शिक्षा देना आदि क्षेत्र आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. टीकाकरण से तात्पर्य विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विशिष्ट प्रकार के एंटीजन को प्रवेश कराकर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना है जिससे विभिन्न बीमारियों से व्यक्ति की सुरक्षा सके।
2. टीकाकरण द्वारा रोकने योग्य बीमारियाँ:

   - टिटनेस
   - पोलियो
   - डिप्थीरिया
   - काली खांसी
   - खसरा
   - क्षय रोग

3. रिक्त स्थान भरिये।
   a) टिटनेस
   b) जन्म
   c) डी. पी. टी., पोलियो
   d) 9

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.
2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram-Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
3. Marshall, M.H. and Janette B. Benson (2008), Encyclopedia of Infant and Early Childhood Development, Academic Press, San Diego.
4. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
5. Ruth Strang, (1971), An Introduction to Child Study, Fourth edition, The Macmillan Company, New York.
6. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
7. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.
8. http://www.en.wikipedia.org/wiki/infant (August 2014)
9. http://www.nlm.nih.gov/medlineplus/infant and newborn care.html (August 2014)
10. http://kidshealth.org/parent/newborn care/guide parents.html (August 2014)
11. MFN- 006, Public Nutrition (2006), Indira Gandhi National Open University, Laxmi Print India, New Delhi.

5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभिन्न गर्भकालीन विकासों के बारे में बताइये तथा इन विकासों हेतु निगरानी के लिए प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।
2. गर्भकालीन विकास की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
3. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बताइये।

4. प्रसव की तीन अवस्थाओं तथा प्रसव के दौरान होने वाली जटिलताओं के बारे में बताइये।
5. नवजात की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
6. नवजात के पालन पोषण की विधियां बताइये।

खण्ड 3
शैशवावस्था

इकाई 6 शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 शारीरिक विकास
  6.3.1 नवजात शिशु की शारीरिक बनावट
  6.3.2 नवजात की संवेदी क्षमताएं
  6.3.3 शैशवावस्था के माध्यम से परिवर्तन
    6.3.3.1 आकार और आकृति
    6.3.3.2 माँसपेशी
    6.3.3.3 हड्डियां
    6.3.3.4 मस्तिष्क
6.4 क्रियात्मक एवं भौतिक विकास में परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध
6.5 क्रियात्मक विकास
  6.5.1 शुरुआती मानव अनुक्रियाएं
  6.5.2 नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त प्रमुख उपलब्धियाँ
6.6 सारांश
6.7 पारिभाषिक शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में हमने जन्म से पूर्व विकास के बारे विस्तार से अध्ययन किया जोकि विकास की विभिन्न अवस्थाओं, जन्म से पूर्व की देखरेख, जन्म प्रक्रिया एव जन्म से पूर्व विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों के बारे में अध्ययन पर केंद्रित था जब शिशु माँ के पेट में ही होता है। इस इकाई में हम शिशु जन्म के बाद नवजात शिशु की विशेषताओं एवं देखरेख, शिशु के स्वास्थ्य एवं शिशु रखरखाव सम्बंधित बातों का मुख्य रूप से अध्ययन करेंगे। शिशु जन्म के बाद शिशु जीवन की विभिन्न अवस्थाओं जैसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था, स्कूल से पूर्व, स्कूल जाने वाले एवं किशोरावस्था

आदि के दौरान होने वाले विभिन्न प्रकार के विकासों जैसे शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक विकास का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस इकाई के अंतर्गत हम शैशवावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास का अध्ययन करेंगे जिसमें सम्पूर्ण शैशवावस्था में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के दौरान होने विभिन्न परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त होगी। कुछ बड़े परिवर्तन जैसे शारीरिक बनावट, संवेदी क्षमता, पेशी, हड्डियों एवं अनैच्छिक क्रियाओं में परिवर्तन पूरी शैशवावस्था में होते रहते हैं। अब हमें शारीरिक एवं क्रियात्मक क्रियाओं के मध्य समन्वय एवं आपसी सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। एक शिशु के शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें शैशवावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक परिवर्तनों को समझना आवश्यक है की ये परिवर्तन कब और कैसे होते हैं तथा शैशवावस्था के अंत में प्राप्त होने वाली बड़ी उपलब्धियां क्या हैं।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के पश्चात आप निम्न के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- एक नवजात शिशु का शारीरिक रंग रूप एवं संवेदी क्षमता;
- शैशवावस्था में होने वाले विभिन्न परिवर्तन;
- शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय का वर्णन; तथा
- नवजात अवस्था के अंत में अनुक्रियाओं एवं मुख्य उपलब्धियों की पहचान।

6.3 शारीरिक विकास

शैशवावस्था / नवजात अवस्था के दौरान शारीरिक विकास बच्चे के व्यवहार को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए यदि बच्चा अपनी उम्र के लिए अच्छी तरह से विकसित है तो वह विभिन्न गतिविधियों जैसे खेल आदि में अपने साथियों के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम होता है, लेकिन यदि वह शारीरिक रूप से अपने साथियों के समान पूर्ण रूप से विकसित नहीं है, तो वह ऐसी गतिविधियों में अच्छा प्रदर्शन नही कर पाता तथा उस समूह से बाहर हो जाता है। इस क्षण बच्चा बहुत उपेक्षित महसूस करता है और इसका उसके लोगों के प्रति व्यवहार पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

अप्रत्यक्ष रूप से शारीरिक विकास स्वयं के प्रति और दूसरों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करता है जोकि व्यक्ति विशेष द्वारा किए जा रहे सामंजस्य में प्रतिबिंबित होता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा जो अधिक वजन का है उसे जल्द ही पता चलता है कि वह अपने पतले हमउम्र साथियों के समान तेज गति से नहीं चल सकता और यह बच्चे में अक्सर एक अपर्याप्तता की भावना को जन्म देता है। यह उसकी आत्म अवधारणा पर एक चिह्नित प्रभाव डालता है।

इसलिए, बच्चे के जीवन के विभिन्न चरणों में व्यवहार पर विकास के प्रभाव को समझने के लिए सामान्य रूप से होने वाले भौतिक विकास को समझाना महत्वपूर्ण है। इससे विभिन्न बच्चों में अंतर तथा एक ही बच्चे में अलग-अलग उम्र में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान होता है। इस अनुभाग में हम शैशवावस्था की अवधि के दौरान बच्चे की शारीरिक और क्रियात्मक क्रियाओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। शैशवावस्था जन्म से 12 महीनों या एक वर्ष तक की अवधि है।

6.3.1 नवजात शिशु की शारीरिक बनावट

नवजात शिशु के सिर से पैर तक छोटे छोटे अंग होते हैं, वे बीस इंच लंबे और 3.0 किग्रा (7.5 पाउंड) वजन के होते हैं। इनके दिल की धड़कन एक वयस्क की अपेक्षा दुगनी होती है यानी लगभग 120 धड़कन प्रति मिनट तथा वे वयस्कों की अपेक्षा दुगनी रफ़्तार से सांस लेते हैं यानी एक मिनट में 33 बार। जन्म के समय शिशु का सिर विशाल (शरीर के बाकी हिस्से के सापेक्ष) होता है तथा अनैच्छिक क्रियाएँ होती हैं। बारह महीनों के अंतराल में शिशु बैठने, खड़े होने, झुकने, चढ़ने और शायद चलने में सक्षम हो जाता है।

आकार एवं बनावट

एक औसत नवजात शिशु 20 इंच लंबा और लगभग 3.0 किलो वजन का होता है। हालाँकि ये 15 से 24 इंच लम्बाई में और 2.5 से 4 किलो वजन में भिन्न हो सकते हैं। लड़के लड़कियों की अपेक्षा थोड़े लंबे और भारी होते हैं, और एक पहले जन्मे बच्चे का बाद में जन्मे बच्चों से कम वजनी होना संभव है। पहले कुछ दिनों में तरल पदार्थ की हानि के कारण उनके शरीर के वजन में 10 प्रतिशत की कमी आ जाती है। पांचवें दिन से वह पुन: वजन हासिल करने लगते हैं और आम तौर पर दसवें से चौदहवें दिन तक जन्म के वजन पर वापस आ जाते हैं।

नवजात शिशुओं के विशिष्ट लक्षणों में एक बड़ा सिर (एक-चौथाई शरीर लंबाई), छोटे अंग और एक दबी हुई ठोड़ी है। एक नवजात का सिर माँ के कूल्हे से बाहर आने में आराम हेतु होने वाली "मोल्डिंग' के कारण लंबा और कुरूप हो सकता है। यह अस्थायी मोल्डिंग संभव होती है क्योंकि एक शिशु की खोपड़ी की हड्डियां लगभग 18 महीनों तक आपस में पूरी तरह से नहीं जुड़ी होती। नवजात के सिर पर कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ हड्डियां एक साथ विकसित नही होती हैं जैसे सॉफ्ट स्पॉट या फोंटानेल्स जो एक कड़ी झिल्ली द्वारा कवर रहता है। जन्म के समय सिर का कपाल भाग बड़ा और चेहरे का क्षेत्र छोटा होता है।

नवजात शिशुओं की त्वचा गुलाबी होती है जो इतनी पतली होती है कि रक्त प्रवाह कोशिका को भी मुश्किल से ढक पाती है। शुरुआत के कुछ दिनों में, कुछ नवजात शिशुओं के शरीर पर बहुत बाल होते हैं ये लेनुगो के कारण होते हैं। लेनुगो जन्म से पूर्व के बाल होते हैं जो कुछ समय तक नहीं गिरते

हैं। सभी नवजात शिशुओं पर तेल का सुरक्षा कवर, वर्निक्स केसिओसा या "पनीर का वार्निश" होता है जो उन्हें संक्रमण से बचाता है तथा पहले कुछ दिनों के भीतर ही सूख जाता है।

जन्म के समय, नवजात शिशु की उंगलियाँ नाजुक होती हैं तथा पैर के नाखून और चेहरा पूर्ण विकसित होता है। ये विशेषताएं नवजात को जन्म की प्रक्रिया की मुश्किलों से बचाती हैं। शुरुआत में माथा बड़ा गोलाकार तथा उन्नत होता है जो बहुत जल्द चपटा तथा आकार में छोटा होना शुरु हो जाता है। जन्म के समय, पैर आनुपातिक बहुत छोटे होते हैं और हाथ बहुत लंबे। नवजात शिशु के पैर इतने छोटे और लचीले होते हैं की उनके तले एक दूसरे के सामने रहते हैं। जैसे जैसे पैर लंबे होते जाते हैं, सीधे होते जाते हैं।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है की पूरे समय के बच्चे समय से पूर्व हुए बच्चों से भिन्न होते हैं। समय से पूर्व हुए बच्चे पूरे समय में हुए बच्चों से छोटे होते हैं तथा वो मंदबुद्धि भी हो सकते हैं। शिशुओं के शरीर के आकार में बदलाव को प्रभावित करने वाले कारक बॉक्स 1 में दिखाए गए हैं:

बॉक्स 1: शरीर के आकार में बदलाव को प्रभावित करने वाले कारक	
• शरीर संरचना	शिशु को निम्न तीन प्रकार की शरीर संरचना के आधार पर वर्णित किया जा सकता है: एंडोमोर्फ- गोल एवं मोटा, मीसोमोर्फ- भारी, कठोर एवं आयताकार तथा एक्टोमोर्फ- लंबा एवं बेलनाकार।
• पारिवारिक प्रभाव	ये आनुवंशिक एवं पारिवारिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। आनुवंशिक कारकों से बच्चा दूसरे बच्चों की अपेक्षा मोटा एवं भारी हो सकता है। वातावरण के प्रभाव से भी बच्चे का भार प्रभावित होता है।
• पोषण	अच्छे पोषित शिशु निम्न पोषित शिशुओं की अपेक्षा अधिक लंबे होते हैं।
• लिंग	लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक लंबे एवं भारी होते हैं।
• जाति	जातीय पृष्ठभूमि के कारण शरीर के आकार में बदलाव हो सकता है।
• सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति	निम्न सामाजिक एवं आर्थिक स्तर वाले शिशु अन्य शिशुओं की तुलना में कम तेजी से विकसित और दूसरों की तुलना में छोटे होते हैं।

अब हम नवजात शिशु की संवेदी क्षमताओं के बारे में पढ़ेंगे जो जीवन के शुरुआती महीनों में तेजी से विकसित होती हैं।

6.3.2 नवजात की संवेदी क्षमताएं

पिछली इकाई में हम इस बारे में चर्चा कर चुके हैं कि कैसे एक नवजात शिशु विभिन्न संवेदी क्षमताओं से सुसज्जित इस संसार में आता है। अब हम नवजात की कुछ अन्य संवेदी क्षमताओं जैसे सुनना, देखना, सूंघना, स्वाद लेना, छूना, दर्द आदि के बारे में जानेंगे। नवजात शिशु तक सभी जानकारियाँ एवं संवेद देखने, सुनने, छूने, स्वाद लेने, सूंघने एवं अन्य संवेदनाओं द्वारा पहुंचते हैं। संवेदनाओं के बिना नवजात का दिमाग संसार से पृथक हो जाएगा और वह एक बेस्वाद, रंगहीन और भावना रहित प्राणी की तरह गहरी चुप्पी में रहने लगेगा।

अब हम नवजात की प्रत्येक संवेदी क्षमताओं की समीक्षा करेंगे। इन संवेदी क्षमताओं का एक सारांश तालिका 6.1 में दिखाया गया है:

तालिका 6.1: नवजात की संवेदी क्षमताएं

संवेद	शिशु की क्षमता
देखना	• दोनों आँखों से एक ही बिंदु पर ध्यान केंद्रित करते हैं, सबसे अच्छा ध्यान केंद्रित बिंदु 8 इंच दूर है। • अपनी आँखों से किसी घूमती हुई वस्तु का पीछा करते हैं। जन्म के समय ठीक प्रकार से विकसित नहीं होती किन्तु बहुत तीव्रता से क्षमता में सुधार हो जाता है। • दो सप्ताह से कुछ रंगों में भेद करने लगते हैं।
सुनना	• विभिन्न ध्वनियों का जवाब देते हैं, विशेष रूप से उन ध्वनियों का जिनकी पिच और प्रबलता मानव ध्वनि के बराबर होती है। • थोड़ी सी भिन्नता वाली ध्वनियों जैसे पा तथा बा के मध्य अंतर करने लगते हैं। • 6 महीने के हो जाने पर या उससे पहले ही शिशु उस दिशा का पता लगा लेते हैं जहाँ से ध्वनि आ रही है। • लयबद्ध आवाज द्वारा उसे शांत किया जा सकता है।
सूंघना	• कुछ बदबू पर दृढ़ता से प्रतिक्रिया।

स्वाद	• नमकीन एवं मीठे स्वाद में फर्क कर सकते हैं तथा मीठे को वरीयता देते हैं। • खट्टे एवं कड़वे स्वाद के मध्य भी अंतर कर लेते हैं।

दृष्टि (देखना)

देखना या दृष्टि जन्म के समय सबसे कम विकसित संवेद है। जन्म के समय शिशु को अँधेरे एवं प्रकाश के लिए बहुत कम समझ होती है। शिशु की आँखे एक वयस्क की आँखों की अपेक्षा बहुत छोटी होती हैं, रेटिना संरचना अधूरी होती है तथा ऑप्टिक तंत्रिका भी अविकसित होती है। नवजात तीव्र प्रकाश पड़ने पर पलकें झपका लेते हैं। पैरिफैरल दृष्टि बहुत कमजोर होती है तथा जो 2 से 10 वें सप्ताह तक दुगनी हो जाती है। किसी ऊपर नीचे, एक किनारे से दूसरे किनारे या फिर गोलाई में घूमती हुई वस्तु का पीछा करने की क्षमता शुरुआत के महीनों में उसी तरह तेजी से बढ़ती जाती है जैसे कि रंगों का ज्ञान।

एक वर्ष के भीतर ही दृष्टि बहुत तेज हो जाती है। द्विनेत्री दृष्टि, जिसमें शिशु दोनों आँखों का प्रयोग कर गहराई और दूरी का अंदाजा लगाते हैं, 4 से 5 महीने के बीच विकसित हो जाती हैं। शुरुआत में अश्रु ग्रन्थियाँ अविकसित होती हैं हालाकि बच्चे बहुत जोर से रोते हैं, किन्तु आंसू कई हफ्ते बाद आते हैं। एक हफ्ते के भीतर बच्चे की दोनों आँखें एक साथ कार्य करने लगती हैं। 6 माह की उम्र तक बच्चे की देखने की क्षमता इतनी विकसित हो चुकी होती है कि वो कुछ रंगों जैसे लाल तथा नारंगी को वरीयता से देख सकता है। एक साल की उम्र तक शिशु की दृष्टि इतनी अच्छी विकसित हो चुकी होती है कि वो चलती हुई दूरस्थ वस्तुओं जैसे पक्षी तथा हवाई जहाज आदि का अनुसरण कर सकते हैं।

सुनना

शिशु जन्म के तुरंत बाद सुन सकते हैं। सुनने की क्षमता मां के पेट में जन्म से पहले ही क्रियात्मक होती है। ध्वनियों के बीच भेदभाव करने की क्षमता जन्म के बाद तेजी से विकसित होती है। 1 महीने की उम्र में शिशु " बा " और "पा " दो करीबी ध्वनियों भेद कर सकते हैं। एक नवजात आवाज की ध्वनि की ओर पलटकर देखता है। इसके अलावा शिशु एक पिच से दूसरे को अलग कर सकते हैं, उदाहरण के लिए वह आसानी से पहचान सकते हैं कि दो अलग-अलग संगीत ध्वनियां चलायी जा रही हैं। कम पिच की ध्वनि से रोता हुआ शिशु शांत हो जाता है, जबकि उच्च पिच की ध्वनि तनाव को बढ़ावा देती है।

नवजात शिशु प्रबलता के विभिन्न स्तरों के लिए अलग तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। शिशु केवल 35 से 40 डेसीबल तीव्रता की ध्वनि सुन सकते हैं, और इस स्तर से ऊपर की तीव्रता की ध्वनि से शिशु की हृदय की दर और क्रियात्मक प्रतिक्रियाएं भी उसी अनुपात में बढ़ जाते हैं।

चूंकि सुनना भाषा के विकास के लिए महत्वपूर्ण है अत: श्रवण दोष की पहचान और जितनी जल्दी हो सके उसका निदान किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान ने सभी शिशुओं की पहले तीन महीनों के भीतर सुनने की समस्या संबंधी जांच कराने की सलाह दी है।

सूंघना

शिशु जन्म के तुरंत बाद सूँघ सकते हैं। सूँघने की क्षमता भी मां के पेट में जन्म से पहले ही कार्यात्मक हो जाती है। जन्म के बाद भोजन के जायके और गंध का हस्तांतरण स्तन के दूध के माध्यम से होता है, जैसे यह भ्रूण को एमनियोटिक द्रव के माध्यम से हस्तांतरित होता है। एक नवजात शिशु जन्म के बाद पहले कुछ दिनों के दौरान अच्छी गंध के लिए एक प्राथमिकता विकसित करता है। छह दिन का स्तनपान कराया हुआ शिशु एक नर्सिंग माँ से अपनी माँ के स्तनों की गंध पसंद करते हैं, लेकिन 2 दिन का शिशु ये नहीं कर पाता। यह पता चलता है कि बच्चों को उनकी माताओं की गंध जानने के लिए कुछ ही दिनों की जरूरत होती है। नवजात शिशु तेज और हल्की गंध के लिए घूमकर, वहाँ से हटकर या सांस लेने में परिवर्तन दिखा कर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं ।

स्वाद

स्वाद का ज्ञान भी शिशु को जन्म से पहले ही माँ के पेट में हो जाता है। कुछ स्वादों के प्रति प्राथमिकता शिशु में जन्म से ही होती है। स्वाद कलिकाएँ भ्रूण जीवन में अच्छी तरह से विकसित हो जाती हैं। नवजात शिशु खट्टे या कड़वे की अपेक्षा मीठा स्वाद अधिक पसंद करते हैं। उदाहरण के लिए, मीठे पानी द्वारा रोते हुए नवजात शिशु को शांत किया जा सकता है तथा दूसरे उदाहरण में अगर मां के स्तन के निप्पल को एक मीठे द्रव्य में डुबाया जाए तो शिशु की चूसने की क्षमता बढ़ जाती है।

स्पर्श

स्पर्श पहली भावना का विकास होता है और पहले कई महीनों के लिए यह सबसे परिपक्व संवेदी प्रणाली है। उदाहरण के लिए, जब एक नवजात शिशु का गाल मुँह के पास छूता है, तो शिशु उसमें निप्पल ढूँढने का प्रयास करता है तथा अपने होठों को वही आकार देता है जो वो दूध पीते हुए बनाता है। यह देखा गया है कि गर्भ के 32 वें सप्ताह (8 माह) से, शरीर के सभी भाग छूने के प्रति संवेदनशील होते हैं और यह संवेदनशीलता जीवन के पहले पांच दिनों के दौरान बढ़ जाती है।

यह देखा गया है कि बच्चों को दर्द का एहसास भी होता है, यहां तक कि जीवन के पहले दिन से ही उसे ये एहसास होने लगता है, और अगले कुछ दिनों के दौरान वो और अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। लंबे समय तक या गंभीर दर्द नवजात शिशुओं के लिए दीर्घकालिक नुकसान कर सकता है और उस दर्द से राहत दिलाना आवश्यक होता है।

ऊपर हमारी चर्चा में हमने देखा एक नवजात शिशु में कौन सी संवेदी क्षमताएं मौजूद हैं और वे जीवन के पहले बारह महीनों के दौरान कैसे बदलती और विकसित होती हैं। अब हम बचपन की अवधि में अन्य परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

6.3.3 शैशवावस्था के माध्यम से परिवर्तन

जन्म के समय, नवजात शिशु में कुछ विशेषताएं जैसे शारीरिक बनावट, आकार और आकृति, शुरुआती संवेदी क्षमताएं, निश्चित शरीर प्रणाली, अच्छी तरह से विकसित मांसपेशियां, हड्डियां और मस्तिष्क होती हैं। ये सभी 12 महीने के शैशव काल में परिवर्तित होते रहते हैं और एक वर्ष के शिशु में ये सभी विशेषताएं जन्म के समय से बिलकुल भिन्न होती हैं। अब हम शैशवावस्था के दौरान होने वाले इन परिवर्तनों के सम्बन्ध में विस्तार से पढ़ेंगे।

6.3.3.1 आकार और आकृति

आकार में परिवर्तन अन्य पक्षों के अलावा आम तौर पर शिशुओं की लम्बाई और वजन में होने वाले विशिष्ट परिवर्तन में आता है। शिशुओं की लम्बाई और वजन में पहले कुछ महीनों के दौरान तेजी से वृद्धि होती है जितनी तेजी से फिर कभी नहीं होती। सामान्य नियम यह है कि एक शिशु 5-6 महीने में अपने जन्म के समय के वजन का दोगुना और पहले साल के अंत तक तीन गुना हो जाता है। जन्म के बाद पहले 3-4 दिनों में शिशुओं का वजन आम तौर पर कम होता है। यह कमी 10 प्रतिशत तक हो सकती है। यह मुख्यतः शरीर के तरल पदार्थ हैं, जो पानी के चयापचय तथा गर्भाशय जीवन में समायोजन करने के लिए जिम्मेदार होता है। एक आदर्श शिशु जो जन्म के समय 20 इंच का होता है एक वर्ष के भीतर लगभग 10-12 इंच बढ़ जाता है अर्थात 30 इंच तक हो जाता है। एक छोटे लड़के का 5 महीने में औसत वजन जन्म वजन का दोगुना, लगभग 6 किलो तक हो जाता है और एक वर्ष में तीन गुना लगभग 9 किलो तक हो जाता है। एक लड़के की ऊंचाई आम तौर पर पहले साल के दौरान 10 इंच तक बढ़ जाती है। लड़कियों में भी वृद्धि का यही स्वरूप होता है किन्तु कुछ धीमा होता है।

दांत निकलना शैशवावस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो आमतौर पर 3 से 4 महीने में शुरु होती है, जब शिशु कोई भी वस्तु उठाकर मुंह में डालना शुरु कर देता है लेकिन पहला दांत 5 से 9 महीने के बीच या इसके बाद आता है। पहले जन्मदिन पर बच्चे के आम तौर पर छह से आठ दांत होते हैं। सबसे पहले नीचे के सामने के दो तथा फिर ऊपर के सामने के 4 और इसके बाद नीचे के सामने के अगल बगल के 2 और दांत आते हैं।

पूर्व की चर्चा से यह कहा जा सकता कि एक पहले आधे वर्ष के दौरान शारीरिक वृद्धि बहुत तेजी से होती है किन्तु शारीरिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होते हैं।

अब हम शिशुओं की मांसपेशियों में होने वाले परिवर्तनों की समीक्षा करेंगे ।

सिर

जन्म के बाद सिर शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा कम बढ़ता है। जन्म के समय सिर कुल शरीर लंबाई का 22 प्रतिशत होता है। बच्चे का सिर वयस्क की तुलना में चौड़ा होता है। लंबाई चौड़ाई वृद्धि प्रतिमान लड़कों और लड़कियों में लगभग समान होता है हालांकि लड़कों का सिर हर उम्र में लड़कियों से थोड़ा बड़ा होता है।

चेहरा

क्रेनियम इसका विकास जल्दी पूर्ण करता है इसलिए सिर के ऊपर का हिस्सा चेहरे की अपेक्षा बहुत बड़ा प्रतीत होता है। स्थायी दांतों में परिवर्तित होने के दौरान ऊपरी और निचले दांतों की साथ-साथ फिटिंग होती है जो चेहरे के निचले हिस्से के आकार को प्रभावित करती है। चेहरे का आकार एवं मुखाकृति दोनों परिवर्तित हो जाते हैं।

धड़

शुरुआत में शिशु की गर्दन नहीं होती है तथा उसका सिर कंधों के ऊपर टिका रहता है। धीरे धीरे एक छोटी सी गर्दन विकसित होती है। शिशु के धड़ में बहुत तीव्रता से परिवर्तन होते हैं। पहले साल में शिशु का शरीर कुछ मोटा होता है।

टाँगें एवं भुजाएं

जन्म के समय टाँगें आनुपातिक छोटी होती हैं, भुजाएं बहुत लंबी होती हैं तथा हाथ एवं पैर बहुत छोटे होते हैं। जन्म से 2 वर्ष की उम्र तक भुजाएं 60 से 75 प्रतिशत लंबी हो जाती हैं। जैसे जैसे पैर लम्बाई में बढ़ते हैं सीधे होते जाते हैं जो पूर्व में लचीले एवं झुके हुए थे। टाँगे लगभग 40 प्रतिशत तक लंबी हो जाती हैं।

शरीर के अनुपात या आकार में परिवर्तन 'अतुल्यकालिक विकास' या 'विभाजन विकास' के कारण होता है जिसका मतलब है शरीर के विभिन्न भागों का तेजी से और धीमी गति से विकास का अपना समय है और प्रत्येक का अपनी परिपक्वता तक पहुँचने का अपना समय है। प्रारंभिक अवस्था के दौरान शरीर के विभिन्न भागों में परिवर्तन नीचे दिए गए हैं:

6.3.3.2 माँसपेशी

जीवन के पहले वर्ष के दौरान मांसपेशियां भी विकसित हो जाती हैं। शिशु के जन्म के समय हड्डियां उपस्थित नहीं होती हैं। इसके विपरीत सभी मांसपेशियां ऊतकों के साथ जन्म के समय से ही उपस्थित होती हैं, लेकिन शरीर अविकसित होता है। उम्र बढ़ने के साथ ही मांसपेशी ऊतक की लंबाई, चौड़ाई और मोटाई भी बढ़ती जाती है। हड्डियों और लम्बाई की तरह मांसपेशी ऊतक भी किशोरावस्था तक काफी तेजी से तथा लगातार बढ़ते जाते हैं। यह स्पष्ट है कि औसतन पुरुष

महिलाओं से अधिक मजबूत होते हैं जो इस कारण होता है क्योंकि पुरुषों में कुल शरीर द्रव्यमान का 40 प्रतिशत पेशियाँ होती हैं जिसका प्रतिशत महिलाओं में केवल 24 है।

शरीर के वजन में मांसपेशियों का भी योगदान है। जन्म के समय वे शरीर के वजन का पांचवा या एक चौथाई भाग होती हैं। मांसपेशियां शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे हृदय, पाचन तंत्र और ग्रंथियों को विनियमित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं। वे शक्ति और गतिविधि के समन्वय के लिए भी जिम्मेदार हैं। 5 वर्ष की आयु में मांसपेशियों की वृद्धि शरीर के वजन वृद्धि के अनुपात में हो जाती है। 5 से 6 साल के मध्य मांसपेशियों की वृद्धि में एक तेजी से उछाल आता है जो बाद में धीमा हो जाता है और फिर से यौवनवस्था में फिर बढ़ने लगता है।

जन्म के बाद कोई नया मांसपेशी ऊतक नहीं बनता है। नवजात शिशु में मांसपेशियों का सबसे बड़ा विकास आंख और श्वसन तंत्र में होता है। हाथों की मांसपेशियाँ पैर की तुलना में बेहतर विकसित होती हैं। शुरुआत के वर्षों में बड़ी मांसपेशियां छोटी मांसपेशियों की तुलना में अधिक पर्याप्त रूप से कार्य करती हैं।

मांसपेशियों में परिवर्तन का अध्ययन करने के बाद हड्डियों के विकास का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। हम अगले भाग में हड्डियों में परिवर्तन पर चर्चा करेंगे।

6.3.3.3 हड्डियां

जन्म के बाद हड्डियां निम्न तीन प्रकार से विकास के साथ परिवर्तित होती हैं:

- हड्डियों की संख्या में वृद्धि
- हड्डियों का लंबा एवं बड़ा हो जाना
- मजबूती आना

- **हड्डियों की संख्या**

शरीर को देखने से हाथ, कलाई, टखने और पैर की हड्डियों की संख्या में सबसे ज्यादा वृद्धि का पता चलता है। एक वर्ष के शिशु में कलाई और हाथ में केवल केवल 3 हड्डियां होती हैं जिसकी तुलना में वयस्कों में 28 अलग हड्डियां होती हैं। शेष 25 हड्डियां बाद में विकसित हो जाती हैं जिनका किशोरावस्था तक पूरा विकास हो जाता है।

- **हड्डियों का लंबा एवं बड़ा हो जाना**

क्योंकि हड्डी की संरचना में परिवर्तन और संख्या में वृद्धि होती है तो हड्डियों का आकार भी बदल जाता है। यह पैर और हाथ की लंबी हड्डियों में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है जो बचपनावस्था में तेजी से बढ़ती हैं। इन हड्डियों का विकास तभी रुकता है जब हड्डियों के सिरे पूरी तरह से कठोर हो जाते हैं। जन्म के समय बच्चे में खोपड़ी की कई हड्डियां होती हैं, साथ में बीच में एक नरम क्षेत्र

फोंटानेल्स भी होता है। अधिकांश शिशुओं में फोंटानेल्स 2 वर्ष की उम्र तक अस्थि द्वारा भरा जाता है जिससे कई हड्डियों के बजाय वहाँ केवल एकल खोपड़ी की हड्डी हो जाए।

- **हड्डियों का मजबूत हो जाना**

शिशुओं में कुछ हड्डियों अभी भी उपास्थि के रूप में होती हैं और सभी हड्डियाँ नरम होती हैं जिनमें उच्च मात्रा में जल उपस्थित होता है। हड्डियों का सख्त होना अस्थिकरण या ओसिफिकेशन कहलाता है। यह प्रक्रिया जन्म से किशोरावस्था के मध्य तेजी से होती है।

अस्थिकरण की दर शरीर के विभिन्न भागों के लिए भिन्न होती है। सिर की हड्डियों की तरह हाथ और कलाई की हड्डियाँ भी काफी जल्दी कठोर या मजबूत हो जाती हैं। इसके विपरीत पैर की लंबी हड्डियाँ किशोरावस्था तक मजबूत होती हैं। अस्थिकरण की दरों में लिंग भेद का प्रभाव पड़ता है, वहाँ भी उम्र के हर स्तर पर लड़कियाँ लड़कों से आगे होती हैं।

हड्डियों का विकास जीवन के पहले वर्ष के दौरान तेजी से फिर किशोरावस्था के समय तक धीमी गति से तथा उसके बाद और अधिक तेजी से होता है। प्रसव के बाद जीवन के प्रारंभिक महीनों में हड्डियों के ऊतक मुलायम और स्पंजी होते हैं। वहाँ कुछ स्थानों पर कार्टिलेज या झिल्ली होती है जहां बाद में हड्डी बन जाती है।

6.3.3.4 मस्तिष्क

इस भाग में हम बच्चे के जन्म के बाद मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क अपने वयस्क वजन का केवल 25% होता है, और यह वजन 1 साल से कम समय में 70% तक पहुँच जाता है तथा 3 साल की उम्र लगभग 90% तक पहुँच जाता है। 6 साल की उम्र तक यह लगभग वयस्क मस्तिष्क के आकार का हो जाता है लेकिन मस्तिष्क की वृद्धि और विशिष्ट भागों के कार्यात्मक विकास वयस्क होने तक होते रहते हैं। जन्म के बाद आकार और बनावट में परिवर्तन के साथ ही मांसपेशियों और हड्डियों में होने वाले परिवर्तन काफी आसानी से देखे जा सकते हैं लेकिन मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन को महसूस करना इतना आसान नहीं है। जन्म के समय मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र पूरी तरह से विकसित नही होते हैं एवं पूर्ण क्रियाशील भी नहीं होते हैं जिस प्रकार शिशु के अन्य अंग जैसे हृदय, फेफड़े या संचार प्रणाली।

मस्तिष्क के प्रमुख भाग

मानव मस्तिष्क 3 मुख्य वर्गों; सेरीब्रल कोर्टेक्स, मध्य मस्तिष्क और मस्तिष्क स्टेम का बना होता है। जन्म के समय मध्य मस्तिष्क और मस्तिष्क स्टेम, कोर्टेक्स से ज्यादा अच्छी तरह विकसित होते हैं, कोर्टेक्स जीवन के शुरुआत के कुछ वर्षों में विकसित हो जाता है।

जन्म के समय रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क स्टेम लगभग विकसित हो चुके होते हैं। सेरिबैलम जीवन के पहले वर्ष के दौरान सबसे तेजी से बढ़ता है। सेरिबैलम मस्तिष्क का सबसे बड़ा हिस्सा है जो बाएँ एवं दाएँ गोलार्द्धों में विभाजित होता है जो ऊतक के एक मजबूत बैंड, कोर्पस कैलोसम द्वारा जुड़े हुए

होते हैं जो उन्हें जानकारी साझा करने और आदेशों का समन्वय करने के लिए अनुमति देता है। कोर्पस कैलोसम बचपन के दौरान नाटकीय ढंग से बढ़ता है तथा 10 साल की उम्र तक अपने वयस्क आकार में पहुँच जाता है।

मस्तिष्क में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का अध्ययन निम्न के अंतर्गत किया जा सकता है:

1. **कोर्टिकल विकास**
2. **माइलीनेशन**

1. कोर्टिकल विकास

जन्म के समय मध्यमस्तिष्क या मिडब्रेन में निहित मस्तिष्क के भाग पूरी तरह से विकसित हो चुके होते हैं। मध्यमस्तिष्क खोपड़ी के निचले भाग में स्थित होता है जो आधारभूत गतिविधियों जैसे ध्यान लगाना, रहन-सहन, सोना,जागना और निष्कासन आदि को नियंत्रित करता है। ये गतिविधियाँ नवजात बच्चे में बहुत अच्छी तरह से देखी जा सकती हैं।

जन्म के समय मस्तिष्क का सबसे कम विकसित भाग कोर्टेक्स है जो मध्यमस्तिष्क के आसपास लिपटा हुआ होता है, यह बुद्धिमत्ता से सम्बन्धित है जो शारीरिक गतिविधियों और सभी जटिल सोच और भाषा से संबद्ध है। कोर्टेक्स जन्म के समय मौजूद होता है, लेकिन कोशिकाएं अच्छी तरह से नहीं जुड़ी हुई होती हैं। पहले दो वर्षों के दौरान कुछ नयी कोर्टीकल कोशिकाएं जुड़ जाती हैं तथा मौजूदा कोशिकाओं से बड़ी हो जाती हैं। वे और अधिक सम्बन्ध सूत्रों का निर्माण करती हैं। यह प्रक्रिया छह महीने में लगभग 50% और 2 वर्ष की उम्र तक लगभग 75 प्रतिशत पूर्ण हो जाती है। कोर्टेक्स में 50% परिवर्तन जन्म के बाद छह महीने के भीतर ही हो जाते हैं लेकिन अभी भी पूरा कोर्टेक्स समान रूप से विकसित नही होता। कोर्टेक्स के कुछ हिस्से जो देखने और सुनने में शामिल होते हैं जन्म से पहले ही अच्छी प्रकार से विकसित होते हैं तथा वो क्षेत्र जो सिर और धड़ की गति को नियंत्रित करते हैं काफी जल्दी विकसित हो जाते हैं। कोर्टिकल विकास का यह क्रम बच्चे द्वारा की जाने वाली गतिविधियों के आधार पर भिन्न-भिन्न होता है।

2. माइलीनेशन

तंत्रिका तंत्र के विकास में एक दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रत्येक नस के आवरण का विकास है जो उन्हें एक दूसरे से अलग-अलग करता है जिससे नसों को संदेश आसानी से पारित किए जा सकें। इस आवरण को म्यान तथा म्यान को विकसित करने की प्रक्रिया को माइलीनेशन कहा जाता है। उदाहरण के लिए जन्म के समय रीढ़ की हड्डी पूरी तरह से मायालीनाइज्ड नहीं होती है और इस आवरण के बिना बच्चे की शरीर के नीचे के भाग के साथ संवाद करने की क्षमता बहुत कम होती है। शिशु के धड़ और पैरों में संवेदना होती है लेकिन क्योंकि नसों में संदेश आसानी से प्रेषित नहीं किए जा सकते हैं अत:बच्चे का अपनी मांसपेशियों पर बहुत कम नियंत्रण होता है। लगभग 2 वर्ष की उम्र तक मायालीनाइजेशन की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

आरंभिक अनैच्छिक क्रियाएँ

निचले मस्तिष्क केन्द्र भी नवजात शिशु की अनैच्छिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये दूसरी अनैच्छिक क्रियाओं जैसे श्वास और हृदय की दर का भी नियंत्रण करते हैं। ये मस्तिष्क के वह भाग हैं जो जन्म के समय सबसे अधिक माइलीनेटेड होते हैं। ये अनैच्छिक क्रियाएँ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र और मांसपेशियों के प्रारंभिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। एक अनुमान के अनुसार मानव शिशुओं में सत्ताईस प्रमुख अनैच्छिक क्रियाएं होती हैं जिनमें से कई जन्म के समय उपस्थित होती हैं या जन्म के तुरंत बाद आ जाती हैं। अधिकांश क्रियाएँ छह महीने से एक वर्ष के दौरान गायब हो जाती हैं।

इन अनैच्छिक क्रियाओं के बारे में हम 'प्रारंभिक अवस्था में अनैच्छिक क्रियाएँ' शीर्षक में विस्तार से अध्ययन करेंगे। हमने नवजात शिशु की भौतिक संरचना एवं संवेदी क्षमताओं के साथ-साथ शिशु की लम्बाई, वजन, हड्डियों, मांसपेशियों में परिवर्तन के ऊपर चर्चा की। अब हम पुनरावृत्ति करेंगे कि हमने अब तक क्या सीखा है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. शरीर के आकार में विभिन्नता को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ती कीजिए।
   a. नवजात शिशु ..... इंच लंबे तथा .....किग्रा भार के होते हैं।
   b. ..... जन्म के समय कम विकसित संवेग है।
   c. ..... महीने के आसपास दाँत आने शुरु हो जाते हैं।
   d. नसों के चारों ओर आवरण बनने की प्रक्रिया को ..... कहते हैं।

अब हम क्रियात्मक विकास के अगले विषय क्षेत्र के बारे में पढ़ेंगे जिसमें हम क्रियात्मक एवं भौतिक विकास के परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध के बारे में चर्चा करेंगे।

6.4 क्रियात्मक एवं भौतिक विकास में परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध

पिछले वर्गों में हमने मुख्य रूप से बच्चे के जन्म से शैशवावस्था के मध्य शारीरिक विकास पर चर्चा की है। अब यह काफी स्पष्ट है कि बच्चे का शारीरिक विकास निश्चित रूप से क्रियात्मक विकास के

साथ कुछ संबंध और समन्वय रखता है। इस इकाई में हम क्रियात्मक विकास के महत्व, शारीरिक और क्रियात्मक विकास के बीच समन्वय एवं संबंधों का अध्ययन करेंगे। यह सत्य है कि समुचित क्रियात्मक विकास के लिए शारीरिक विकास भी हो जाता है। क्रियात्मक क्षमताओं में प्रवीणता भौतिक विकास और शारीरिक संरचना पर निर्भर करती है। एक अवधारणा के अनुसार क्रियात्मक विकास की प्रवृत्ति होती है कि ये नवजात की प्रबल अनुक्रिया और सामान्य गतिविधियों से बड़े बच्चे तथा एक वयस्क में विभिन्नता, विशिष्टता तथा एकीकरण की ओर होता है। बच्चे क्या कर सकते हैं या महसूस कर सकते हैं ये उनके विकास और केंद्रीय तंत्रिका प्रणाली के कुशल संचालन पर निर्भर करता है।

अगले भाग में हम निम्न के बारे में समझेंगे:

- शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के सिद्धांत।
- क्रियात्मक विकास शारीरिक परिपक्वता एवं अधिगम पर निर्भर करता है।
- बच्चा तभी कार्य कुशलता सीखता है जब वो परिपक्व हो जाता है।
- हाथ और आँखों में समन्वय।
- स्थूल क्रियात्मक कौशल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास।
- हाथ और मुंह में समन्वय।

1. शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के सिद्दांत

शारीरिक विकास एवं क्रियात्मक विकास दोनों निम्न सिद्धांत का पालन करते हैं:

1. मस्ताकाधोमुखी विकास क्रम
2. निकट दूर विकास क्रम

मस्त्काधोमुखी विकास क्रम में शारीरिक क्रियाएं सिर से प्रारम्भ होकर पैर की ओर बढ़ती हैं। सर्वप्रथम बालक के सिर, मुँह और गर्दन की क्रियाएं विकसित होती हैं, फिर धड़ की और अंत में पैरों की। जन्म के समय शिशु का सिर पैरों के अनुपात में बड़ा होता है लेकिन धीरे-धीरे शरीर के निचले हिस्से तथा पैरों का विकास हो जाता है और सिर छोटा लगाने लगता है। क्रियात्मक विकास भी इसी सिद्धांत का पालन करता है जिसमें शिशु निचले हिस्से से पहले ऊपर के हिस्से पर नियंत्रण रखना सीखता है। वो अपने धड़ पर नियंत्रण से पहले वस्तुओं को देखना आरम्भ कर देते हैं तथा पैरों से चलना सीखने से पहले हाथों से कई कार्य करना शुरु कर देते हैं। जैसे जैसे शिशु की नई मांसपेशियां परिपक्व होती जाती हैं वैसे वैसे पहले धड़ में, फिर पैरों में और अधिक एवं नियंत्रित गति होती जाती है।

निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार विकास पहले शरीर के केन्द्रीय भागों में होता है फिर केंद्र से दूर के भागों में। अर्थात वे अंग जो सुषुम्ना नाड़ी एवं मस्तिष्क के जितना अधिक पास होते हैं उनमें विकास उतना ही पहले आता है। जैसे बालक की आँख, मुख, गर्दन, धड़ आदि अंग मस्तिष्क के पास होते हैं तथा हाथ एवं पैर मस्तिष्क से दूर। इसलिए बालक पहले अपने कंधों पर नियंत्रण करना सीखता है बाद में वह कुहनियों और कलाई पर नियंत्रण करना सीखता है और अंगुलियों पर सबसे अंत में। कारण स्पष्ट है कि बालक के मुख एवं कंधे उसके मस्तिष्क के बहुत ही पास होते हैं, जबकि कुहनी, कलाइयाँ एवं अंगुलियाँ अपेक्षाकृत दूर होती हैं। इसी प्रकार पैर मस्तिष्क से काफी दूर होते हैं। इस कारण पैरों का विकास सबसे अंत में होता है।

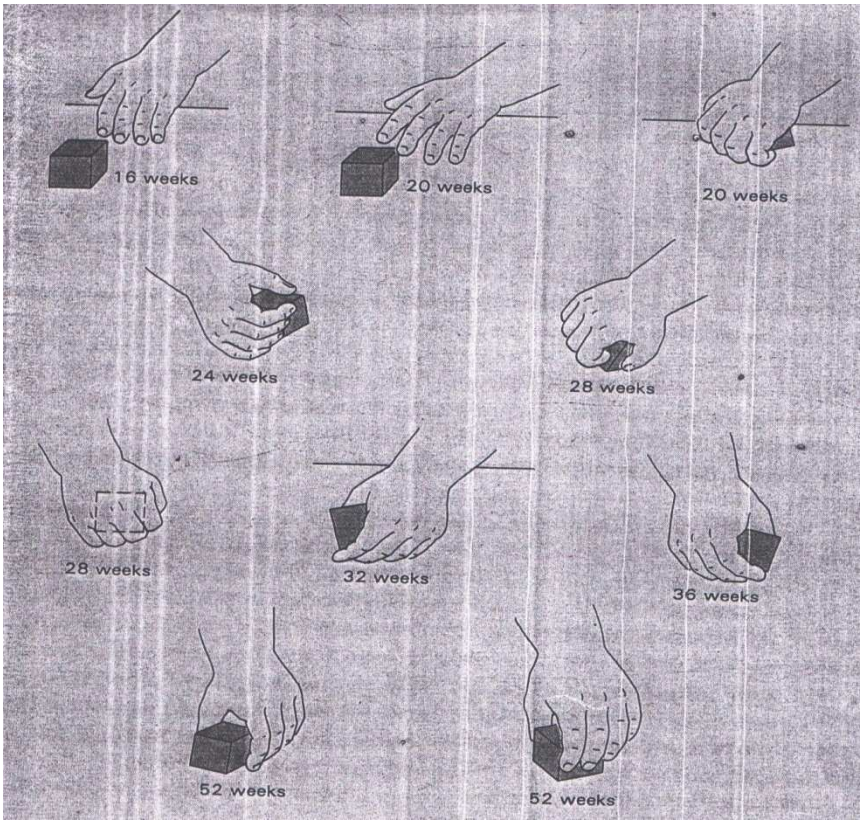

चित्र संख्या 6.1: 16वें हफ्ते से 1 वर्ष के मध्य शिशु की वस्तुओं को पकड़ने की क्षमता

2. क्रियात्मक विकास शारीरिक परिपक्वता एवं शिक्षण पर निर्भर करता है।

बालक के क्रियात्मक विकास पर परिपक्वता तथा शिक्षण दोनों का प्रभाव पड़ता है और इन्हीं के द्वारा वो क्रियात्मक विकास को प्राप्त करता है। परिपक्वता वह विकास है जो जीन्स में परिवर्तन होने पर होता है ना कि सीखने या अनुभवों द्वारा। यह बालक के एक निश्चित आयु एवं आकार में पहुँचने

पर होता है और वातावरण एवं बाह्य प्रभावों से स्वतन्त्र होता है। उदाहरण के लिए गोल घूमना एवं चलना परिपक्वता के कार्य हैं।

मस्तिष्क के क्रियाशील क्षेत्रों का विकास और शरीर पर नियंत्रण का विकास दोनों साथ-साथ होते हैं। मस्तिष्क के दो भाग सेरीबेलम एवं सेरीब्रम शुरुआत के वर्षों में ही विकसित एवं परिपक्व हो जाते हैं इसी तरह नियंत्रित कुशल गति भी शुरुआत के वर्षों में ही विकसित हो जाते हैं।

3. बच्चा तभी कार्य कुशलता सीखता है जब वो परिपक्व हो जाता है।

शिशु को उसके तांत्रिक तंत्र एव माँसपेशियों के विकसित होने से पूर्व कार्य कुशलता सिखाने की कोशिश करना एक बेकार प्रयास है। अत: शिशु तब तक नहीं सीख सकता जब तक कि वह पूर्ण रूप से परिपक्वता प्राप्त न कर ले। यदि वह फिर भी सीखता है तो कुछ क्षणिक फायदे दिखते हैं किन्तु वह लंबे समय तक नहीं रहते।

4. हाथों तथा आँख में समन्वय।

हाथों तथा आँख में समन्वय को दृश्य गतिक समन्वय भी कहा जाता है क्योंकि इसमें दृश्य गतिक दोनों ही कौशल क्षमताएं आती हैं। इसमें शिशु अपनी गतिविधियों का मार्गदर्शन खुद देखकर करता है। उदाहरणार्थ एक घेरा बनाना, चम्मच को भोजन के नीचे ले जाना या फिर किसी दिखायी दे रही वस्तु के पास जाना, ये सभी दृश्य गतिक समन्वय के प्रारम्भिक रूप हैं।

साधारणतया शिशु 4 माह की उम्र में वस्तुओं के पास पहुँचने लगता है। इस समय वो वस्तुओं को पकड़ने की कोशिश भी करता है किन्तु ठीक से नहीं पकड़ पाता है। 5-6 महीने के मध्य शिशु दोनों हाथ वस्तु के पास लाकर उसे पकड़ने की कोशिश करता है। इस समय शिशु अपने दोनों हाथों को इधर उधर हिलते हुए देखता है और बहुत खुश होता है। अपने हाथों को हिलाकर तथा उन्हें हिलाता हुआ देखकर उसके हावभाव से दृश्य प्रतिक्रिया प्राप्त करते हैं इससे उनकी मांसपेशियां निर्देशित होती हैं।

5. स्थूल क्रियात्मक कौशल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास।

मस्ताकाधोमुखी विकास क्रम तथा निकट दूर विकास क्रम के अतिरिक्त विकास को स्थूल क्रियात्मक कौशल, अर्थात वो कौशल जिनमें बड़ी मांसपेशियां कार्य करती हैं जैसे हाथ पैर हिलाना आदि तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल जिनमें बारीक या सूक्ष्म गतिविधि होती है जैसे किसी वस्तु को हाथों से पकड़ना आदि, के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। इस प्रकार के कौशलों का विकास शरीर के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करने में मदद करता है जो स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल के मध्य समन्वय को प्रभावित करता है।

जन्म के समय शिशु की छाती एवं भुजाओं में कोई समन्वय नहीं होता। लगभग 2 माह के शिशु में यह क्षमता आ जाती है कि वह अपना चेहरा नीचे की ओर झुकाकर अपनी छाती को ऊंचा उठा लेता है तथा 4 माह की उम्र से शिशु वस्तुओं के साथ संपर्क बनाये बिना दृष्टि की सीधी रेखा के भीतर रखी वस्तु तक पहुँचने की कोशिश करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस स्तर पर दोनों हाथ एक साथ काम नहीं करते और पकड़ने तथा देखने के मध्य अभी समन्वय स्थापित नहीं हुआ होता है। 5 माह की उम्र में शिशु सहारा लेकर बैठ सकता है तथा वस्तु को हाथ से पकड़ सकता है। 6 माह की उम्र में वह लेट कर लुढ़कने लगता है तथा 11 माह की उम्र से चलना भी शुरु कर सकता है।

6. हाथ और मुँह में समन्वय।

इस समन्वय में हाथ को मुँह में डालना सीखना सबसे जल्दी आने वाला समन्वय है। हाथ एवं मुँह के मध्य समन्वय स्थापित होने का उद्देश्य स्तनपान के बजाय हाथों से भोजन ग्रहण करना है।

इस उद्देश्य के अलावा हाथ मुँह समन्वय का एक और रूप है और वह है मुँह का खोजी अंग के रूप में उपयोग। 6 से 9 माह का शिशु किसी भी वस्तु के बारे में पता लगाने के लिए उसे तुरंत मुँह में डाल लेते हैं। यह वस्तु के बारे में अपनी जानकारी बढ़ाने का शिशु का अपना एक तरीका होता है।

अधिकतर नवजात शिशुओं में हाथ मुँह समन्वय 4 माह के आसपास शुरु हो जाता है, जोकि 6 माह तक परिपक्व हो जाता है तथा 12 माह तक शिशु इसमे निपुण हो जाता है। लेकिन भोजन ग्रहण हेतु हाथ मुँह के मध्य उद्देश्यपूर्ण समन्वय 1 वर्ष से पूर्व विकसित नहीं होता है तथा आने वाले कई वर्षों तक इसका विकास होता रहता है। एक वर्ष के बाद अंगूठे तथा अंगुलियों के मध्य समन्वय से शिशु वस्तुओं को इधर उधर करने मे कुशल हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. **निम्न के बारे में संक्षेप में बताइये।**

   a. मस्त्काधोमुखी विकास क्रम सिद्धांत

.....

.....

.....

   b. निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत

.....

.....

.....

c. हाथ आँख में समन्वय

.....

.....

.....

d. स्थूल क्रियात्मक कौशल

.....

.....

.....

e. सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल

.....

.....

.....

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि नवजात अवस्था के दौरान शारीरिक वृद्धि एवं क्रियात्मक क्षमता में एक निश्चित अंत:सम्बन्ध एवं समन्वय होता है। जैसे जैसे उम्र बढ़ती है तथा अंगों में भौतिक परिपक्वता आती है, क्रियात्मक क्षमताएं स्वत: विकसित होने लगती हैं। यदि शारीरिक विकास उचित नहीं होता है या फिर देर से होता है तो विभिन्न क्रियात्मक क्षमताएं भी देर से विकसित होती हैं।

अब हम नवजात अवस्था के दौरान विभिन्न अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे।

6.5 क्रियात्मक विकास

इस भाग में हम नवजात अवस्था के दौरान होने वाली प्रमुख अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे। किन्तु अनुक्रियाओं के बारे में चर्चा करने से पूर्व हम क्रियात्मक विकास के अर्थ तथा क्रियात्मक विकास का किसी व्यक्ति के जीवन में महत्व पर चर्चा करेंगे।

जैसे जैसे शिशु का शरीर परिपक्व होता है वो कई जटिल तरीकों से कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इसके साथ-साथ शारीरिक वृद्धि, क्रियात्मक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं जो शिशु को इस संसार के बेबुनियाद तथा असहाय जीवन से सुचारू रूप से एकीकृत तथा एक स्वतंत्र सदस्य की ओर अग्रसर करते हैं। इसके अंतर्गत स्वयं के शरीर पर नियंत्रण, स्वयं के बारे में तथा इस संसार के समस्त जीवों के बारे में सीखना सम्मिलित है।

हम अनुक्रियाओं के बारे में बात करने से पूर्व क्रियात्मक विकास के महत्त्व के बारे में पढ़ेंगे।

क्रियात्मक विकास का महत्त्व

क्रियात्मक विकास का मतलब है शरीर एवं उसके भागों की गति के ऊपर नियंत्रण का बढ़ जाना। नवजात शिशु पूर्ण रूप से असहाय संरचना है जिसमें निम्न कोटि का समन्वय होता है। शिशु का प्रथम वर्ष अपने शरीर के ऊपर नियंत्रण स्थापित करने में निकल जाता है। इनमें स्थूल क्रियाएं जैसे चलना, खड़े होना, कूदना, दौड़ना आदि तथा सूक्ष्म समन्वय जैसे पकड़ना, फेंकना, गेंद पकड़ना, लिखना आदि आते हैं।

एक बच्चे का अपने शरीर पर नियंत्रण निम्न कारणों से होना आवश्यक है:

कारक	क्रियात्मक विकास का सहयोग
अच्छा स्वास्थ्य	अच्छा स्वास्थ्य जोकि बच्चे के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण है आंशिक रूप से व्यायाम पर निर्भर है। यदि क्रियात्मक विकास सही न हुआ हो तो बच्चा इस प्रकार की किसी भी शारीरिक गतिविधि में भाग नहीं लेना चाहता।
भावनात्मक निष्कासन	व्यायाम के द्वारा बच्चा अपने अंदर दबी हुई ऊर्जा से छुटकारा पा जाता है जिससे उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से आराम मिलता है।
स्वतंत्रता	बच्चा जितना अधिक अपना काम स्वयं करेगा वो उतना ही स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बनेगा।
स्व मनोरंजन	बच्चे का क्रियात्मक विकास उसे कुछ ऐसी गतिविधियों में व्यस्त करता है जिससे उसका खुद का मनोरंजन होता है चाहे फिर वह अकेला ही क्यों न हो।
सामाजिकता	अच्छा विकास बच्चे को समाज द्वारा अपनाने एवं सामाजिक कौशल सीखने का अवसर देता है।
स्व:धारणा	क्रियाओं में नियंत्रण बच्चे में शारीरिक सुरक्षा की भावना तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की ओर अग्रसर करता है। मनोवैज्ञानिक सुरक्षा आत्मविश्वास में वृद्धि करती है जो बच्चे के व्यवहार के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती है।

नवजात शिशु में क्रियात्मक विकास का महत्व समझने के पश्चात आइये अब हम नवजात शिशु में होने वाली अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ें।

6.5.1 शुरुआती मानव अनुक्रियाएं

नवजात शिशु एक खाली मस्तिष्क का जीव नहीं होता है। अन्य बातों के अलावा शिशु में कुछ आधारभूत अनुक्रियाएँ भी होती हैं जो आनुवंशिकता द्वारा ले जाए जाने वाली अस्तित्व क्रियाए हैं। ये अनुक्रियाएं नवजात की गतिविधियों को संचालित करती हैं जो स्वचालित होती हैं और नवजात के नियंत्रण से बाहर होती हैं। नवजात शिशु बहुत सारी अनुक्रियाएं लेकर पैदा होता है। ये स्वचालित भौतिक अनुक्रियाएं हैं जो किसी विशिष्ट उद्दीपक द्वारा अनायास ही सक्रिय हो जाती हैं। उद्दीपक के प्रति ऐसी स्वचालित जन्मजात अनुक्रिया को अनुक्रिया व्यवहार या सहज प्रक्रिया व्यवहार या रिफलेक्स बिहेवियर कहते हैं। अनुक्रिया व्यवहार निचले मस्तिष्क केन्द्रों द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। ये अन्य अनैच्छिक प्रक्रियाओं जैसे सांस लेना तथा हृदय की धड़कन आदि को भी नियंत्रित करते हैं। अनुक्रिया व्यवहार केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तथा मांसपेशियों के शुरुआती विकास को उद्दीपित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव शिशु में अनुमानित 27 बड़ी अनुक्रियाएं होती हैं जो जन्म के समय या फिर उसके तुरंत बाद उपस्थित होती हैं। नीचे तालिका में कुछ शुरुआती मानव अनुक्रियाएं दी गयी हैं।

तालिका 6.1: शुरुआती मानव अनुक्रियाएं

अनुक्रिया	उद्दीपन	शिशु का व्यवहार	उपस्थिति की विशिष्ट उम्र	लोप होने की विशिष्ट उम्र
मोरो	शिशु शोरगुल सुनता है	पैर, हाथ एवं अंगुलियों को फैलाना, पीठ ऐंठाना, सिर पीछे की ओर पलटना	गर्भावस्था के 7वें माह में	3 माह
डारविनियन	शिशु के हाथ की हथेली पर हाथ फेरना	कसकर मुट्ठी बाँध लेता है	गर्भावस्था के 7वें माह में	4 माह
टोनिक निक	शिशु सीधा लेटा हुआ हो	सिर को एक तरफ मोड़ लेना, अपने हाथ पैरों को अपनी पसंदीदा दिशा में फैलाना	गर्भावस्था के 7वें माह में	5 माह

बेब्किन	शिशु का दोनों हथेलियों को एक साथ पकड़ना	मुख खुला, आँखें बंद, गर्दन इधर उधर घूमती हुई, सिर आगे को झुका हुआ	जन्म से	3 माह
बाबिंसकी	शिशु के पैर के टेल को छूना	पैर की अंगुलियों को बाहर को फैला देते हैं, पैर मोड़ लेते हैं	जन्म से	4 माह
रूटिंग	शिशु के गाल पर अंगुलियों का या निप्पल का छूना	सिर घुमाना, मुख खुला हुआ, चूसने की गतिविधि शुरु	जन्म से	9 माह
चलना	शिशु को बांह से पकड़कर समतल पर पैर छुआना	पैर चलाता है जो एक अच्छे समन्वय वाली चाल को दिखाता है।	1 माह	4 माह
तैरना	शिशु को पानी में सिर नीचे की ओर करके रखना	तैरने में समन्वय दिखायी देता है।	1 माह	4 माह

Rooting reflex

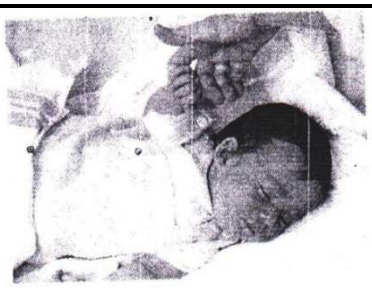

Darwinian reflex

Tonic neck reflex

Moro reflex

Babinski reflex

Walking reflex

प्राथमिक अनुक्रियाएँ: जैसे चूसना, निप्पल को पकड़ना तथा मोरो अनुक्रिया जीवित और सुरक्षित रहने के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। पकड़ने की अनुक्रिया मानव विकास की विरासत का एक भाग है।

आसान अनुक्रियाएं: जैसे स्थान और संतुलन में बदलाव के प्रति प्रतिक्रिया 2 से 4 माह के मध्य विकसित हो जाती है जब उच्च मस्तिष्क केन्द्र क्रियाशील हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि नवजात को नीचे की ओर झुकाया जाए तो वह खुद को गिराने से बचाने के लिए अपने हाथ फैला लेता है।

निम्न क्रियात्मक अनुक्रियाएं: जैसे चलने और तैरने की अनुक्रिया। ये अनुक्रियाएं स्वैच्छिक गतिविधियों से समानता रखती हैं जो तब तक प्रदर्शित नहीं होती जिस माह तक अनुक्रियाएं गायब न हो जायें।

नवजात शिशु में उपस्थित अधिकतर अनुक्रियाएं जैसे खाँसना, पलक झपकाना, उबासी लेना, छींक लेना तथा कंपकपाना आदि जीवन भर बने रहते हैं। इनमें से अधिकतर अनुक्रियाएं वयस्कों में भी

उपस्थित होती हैं उदाहरण के लिए आँखों से हवा टकराने पर आँख झपका लेना या फिर तेज प्रकाश पड़ने पर आँख की पुतली को संकुचित कर लेना। अधिकतर शुरुआती अनुक्रियाएं 6 माह या 1 वर्ष के मध्य लुप्त हो जाती हैं क्योंकि नवजात के मस्तिष्क के कार्य परिपक्व होने लगते हैं और कई क्रियाओं पर स्वैच्छिक नियंत्रण आरम्भ हो जाता है। अनावश्यक अनुक्रियाओं का अपने समय से लुप्त हो जाना इस बात का प्रतीक है कि कार्टेक्स में क्रियात्मक राह आंशिक रूप से मायालीनेटेड हो गया है जो उसे स्वैच्छिक गतिविधियों की ओर परिवर्तित करता है। अत: कुछ निश्चित अनुक्रियाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति से शिशु में मानसिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। नवजात अवस्था में होने वाली अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ने के बाद अब हम यह जानेंगे कि नवजात अवस्था के अंत तक प्राप्त होने वाले बड़े मील के पत्थर क्या हैं? जैसे कि हम पहले ही यह पढ़ चुके हैं कि नवजात अवस्था के दौरान कौन-कौन से महत्वपूर्ण शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास हुए हैं। अब हम नवजात अवस्था के अंत तक शिशु द्वारा प्राप्त मील के पत्थर या निर्णायक विकास पर चर्चा करेंगे। यह हमें इस बात को स्पष्ट करेगा कि 12 माह में शिशु का क्रियात्मक विकास की दृष्टि से कितना विकास हुआ है जिसमें शिशु का अपने शरीर पर नियंत्रण, शारीरिक गतिविधियां तथा अनुक्रियाएं आदि आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. क्रियात्मक विकास का योगदान बताइये।

   .....

   .....

   .....

2. विभिन्न अनुक्रियाओं को उनके प्रदर्शित होने की आयु के अनुसार संक्षिप्त में समझाइये।

   .....

   .....

   .....

6.5.2 नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त प्रमुख उपलब्धियाँ

क्रियात्मक विकास में उपलब्धियों की एक श्रंखला है जो उन उपलब्धियों को संदर्भित करती हैं जो क्रमानुसार विकसित हुई हैं। प्रत्येक नई क्षमता शिशु को अगली क्षमता के लिए तैयार करती है। बच्चा पहले साधारण कौशल सीखता है, फिर उसे जटिल क्रियाओं से जोड़ देता है जो उसे अधिकाधिक गतिविधियों के लिए प्रेरित करती हैं जिससे उसका वातावरण पर और अधिक नियंत्रण हो जाता है। उदाहरण के लिए अपनी पकड़ को विकसित करने के लिए नवजात सर्वप्रथम वस्तुओं को अपने पूरे हाथ से उठाने का प्रयास करता है और अँगुलियों को हथेली के उलटी ओर बंद करने

का प्रयास करता है। बाद में बच्चा प्रथम पकड़ में महारथ हासिल कर लेता है जिसमे बच्चा अपने अंगूठे और तर्जनी अंगुली की सहायता से छोटी-छोटी वस्तुओं को उठा लेता है। दूसरा उदाहरण है चलना सीखना, नवजात पहले प्रत्येक अलग-अलग अंग जैसे बांह, पैर तथा पंजे पर नियंत्रण सीखता है तत्पश्चात सारे अंगों की गतिविधियों को एकसाथ रखकर पहला कदम रखता है।

डेनवर विकास जांच परीक्षण नामक परीक्षण का उपयोग 1 माह से 6 वर्ष के मध्य होने वाले विकास की सारणी बनाने में होता है जिससे ये पता लगाया जा सके कि कौन से बच्चे का विकास उचित एवं पूर्णरूप से नहीं हो रहा है। इस जांच द्वारा स्थूल क्रियात्मक कौशल जैसे पलटना और गेंद पकड़ना आदि तथा सूक्ष्म कौशल जैसे खिलौना पकड़ना और घेरा बनाना आदि मापे जाते हैं। तालिका 6.2 में डेनवर प्रशिक्षण नियमावली के अनुसार क्रियात्मक विकास की प्रमुख उपलब्धियाँ दिखायी गयी हैं।

तालिका 6.2: नवजात अवस्था के दौरान क्रियात्मक विकास की प्रमुख उपलब्धियाँ

कौशल	**50 प्रतिशत**	**90 प्रतिशत**
पलटना	3.2 माह	5.4 माह
खिलौने पकड़ना	3.3 माह	3.1 माह
बिना सहारे बैठना	5.9 माह	6.8 माह
सहारे से खड़े होना	7.2 माह	8.5 माह
अंगूठे तथा अंगुली से पकड़ना	8.2 माह	10.2 माह
बिना सहारे खड़ा होना	11.5 माह	13.7 माह
चलना	12.3 माह	14.9 माह

इस तालिका से हमें वह अनुमानित आयु पता लगती है जब 50 से 90 प्रतिशत बच्चे प्रत्येक कौशल का प्रदर्शन कर सकते हैं।

अब हम नवजात अवस्था की मुख्य उपलब्धियों एवं मील के पत्थरों को पढ़ेंगे। ये निम्नलिखित हैं:

1. स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास
2. अनुक्रिया एवं अनुक्रिया गतिविधि का विकास
3. सिर का नियंत्रण
4. हाथ का नियंत्रण
5. चलना: इसके निम्न चरण हैं
    - पलटना
    - रेंग कर चलाना
    - बैठना
    - कदम बढ़ाना

- खड़े होना
- चलना

अब इन सभी के बारे में हम सक्षिप्त में पढ़ेंगे।

1. स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास

इन कौशलों के बारे में हम पूर्व में ही पढ़ चुके हैं, उन्हें ही दोहराने के लिए यहाँ हम इस बात पर जोर देंगे कि स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास क्रियात्मक विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। स्थूल क्रियात्मक कौशल वो कौशल हैं जिनमें बड़ी मांसपेशियों की गतिविधियों का उपयोग होता है जैसे चलना, चढ़ना, बैठना, उठना आदि और सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल में लिखना, वाद्ययंत्र बजाना तथा पकड़ना आदि आते हैं।

जन्म के समय नवजात की छाती और भुजाओं में अच्छा समन्वय नहीं होता। 3 से 4 माह की उम्र तक दृष्टि और पकड़ में कोई समन्वय विकसित नहीं हुआ होता है किन्तु शिशु उन वस्तुओं तक पहुँचने का प्रयास करता है जो नवजात की दृष्टि की लाइन में सीधे रखी हुई हों। वस्तु से संपर्क किए बिना नवजात किसी सहारे से बैठ जाता है और वस्तु को पकड़ लेता है। 6 माह की उम्र में नवजात को अगर लिटाया गया हो तो वो पलट सकता है। 11 माह की उम्र तक नवजात एक वयस्क की मदद से चल सकता है तथा 12 से 14 माह का नवजात खुद से सीधा खड़े होने का प्रयास करता है, फिर अकेले खड़ा हो जाता है और लगभग 15 माह की उम्र तक वह चलने लगता है।

यह देखा गया है कि ये क्रियात्मक विकास क्रमबद्ध विकास अनुक्रम का अनुकरण करते हैं। बच्चा शारीरिक अवस्था नियंत्रण में सिर से पैर की ओर के सामान्य आदर्श का पालन करता है। सबसे पहले बच्चा सिर और गर्दन में नियंत्रण करना सीखता है, फिर छाती, फिर पीठ और धड़ का निचला हिस्सा और अंत में पैर।

यद्यपि सभी बच्चे क्रियात्मक विकास के इसी नियम का पालन करते हैं किन्तु हर बच्चे का विकास का अपना तरीका तथा दर भिन्न होती है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक बच्चे में किसी भी क्रियात्मक विकास के दिखाई देने का समय भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणार्थ कुछ बच्चे बैठने, पेट के बल खिसकने तथा चलने आदि क्रियाओं में सुस्त होते हैं जबकि कुछ अन्य बच्चे इन सभी गतिविधियों में तेज हो सकते हैं।

2. अनुक्रिया एवं अनुक्रिया गतिविधि का विकास

इसके बारे में हम इसी इकाई में पूर्व में चर्चा कर चुके हैं कृपया इस संदर्भ में उसी का अनुसरण करें।

3. सिर पर नियंत्रण

जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि शरीर पर नियंत्रण सिर से धड़ तथा फिर पैर की ओर अग्रसर होता है।

जन्म के समय कई नवजात अपने सिर को एक दिशा से दूसरी दिशा को घुमा लेते हैं जब वह पीठ के बल लेटे हुए होते हैं तथा जब वे पेट या छाती के बल लेटे हुए होते हैं तो वो अपना सिर इतना उठा सकते हैं कि पलट सकें। 2 से 3 माह के मध्य शिशु का अपने सिर तथा गर्दन पर और अधिक नियंत्रण हो जाता है जिससे वो अपना सिर ऊँचा और ऊँचा उठा लेते हैं जिससे कभी-कभी नियंत्रण खोकर पीठ के बल लुड़क जाते हैं। 4 माह की उम्र से लगभग सभी नवजात अपने हाथों को सीधा रख सकते हैं जब उन्हें पकड़ कर या फिर सहारा देकर बैठाया गया हो।

4. हाथों का नियंत्रण

अभी तक हमने मुख्य रूप से एक नवजात में बड़ी मांसपेशियों की क्रियाविधि के विकास के बारे में पढ़ा। इन बड़ी मांसपेशियों की क्रियाविधि के अलावा हाथों और अँगुलियों के प्रयोग में भी एक क्रमिक वृद्धि होती है।

जन्म के समय शिशु अपने हाथों को उद्देश्यहीन हिलाते रहते हैं जो धीरे धीरे वस्तु को हाथ से दबाने में बदल जाता है और फिर हाथ से पकड़ना और अंत में अंगूठे एवं अँगुलियों का प्रयोग। शिशु का जन्म पकड़ने की अनुक्रिया के साथ होता है। उदाहरण के लिए यदि शिशु की हथेली को छुआ जाए तो वह अपने हाथ को हल्के से बंद कर लेता है। लगभग साढ़े तीन माह में अधिकतर नवजात मध्यम आकार की वस्तुओं को पकड़ लेते हैं किन्तु छोटी वस्तुओं को पकड़ने में उन्हें परेशानी होती है। धीरे धीरे वो एक हाथ से वस्तु को उठाना आरम्भ कर देते हैं तथा उसे दूसरे हाथ में हस्तांतरित कर लेते हैं, और उसके बाद वो छोटी छोटी वस्तुओं को भी पकड़ लेते हैं किन्तु उठा नहीं पाते। कभी-कभी 7 से 11 माह के मध्य शिशु के दोनों हाथों के मध्य छोटी वस्तुओं को उठाने के लिए समन्वय स्थापित हो जाता है। इसके बाद हाथ पर नियंत्रण बहुत प्रभावी हो जाता है तथा 15 माह तक औसतन सभी बच्चे 2 क्यूब का टावर बनाने योग्य हो जाते हैं। नवजात अवस्था के दौरान विकसित होने वाले विभिन्न हस्त कौशल निम्न हैं:

- **अँगुलियों एवं अंगूठे का प्रयोग**

इसे नीचे चित्र में दिखाया गया है :

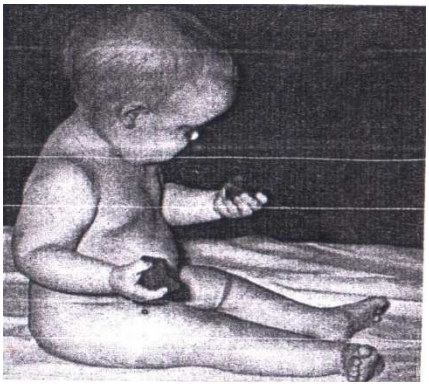

चित्र 6.2: वस्तु को पकड़ने में अंगूठे एवं अंगुली का प्रयोग

- **हाथ एव दृष्टि समन्वय**

इसका वर्णन इसी इकाई में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय के विषय पर चर्चा के समय किया जा चुका है। कृपया उसका संदर्भ लें।

- **वस्तुओं को गिराना**

जीवन के शुरुआती महीनों में नवजात वस्तुओं को गिरा देता है क्योंकि किसी वस्तु को गिराना है या पकड़ कर रखना है इसके लिए उसने अभी तक अपनी मांसपेशियों पर स्वैच्छिक नियंत्रण करना नहीं सीखा होता है। बच्चा वस्तु को उसी वक्त गिरा देता है जैसे ही उसकी पेशीय ऊर्जा या ध्यान कहीं और चला जाता है। 6 से 8 माह के मध्य जब उसे वस्तुओं को गिराना उद्देश्यपूर्ण लगने लगता है तो यह बच्चे का पसंदीदा खेल हो जाता है कि वो वस्तु को नीचे फर्श पर गिराए और कोई और उसे उठाकर वापस दे दे।

- **हाथ और मुख समन्वय**

इसका वर्णन भी इसी इकाई में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय के विषय पर चर्चा के समय किया जा चुका है। कृपया उसका संदर्भ लें।

5. चलना

अभी तक हमने मुख्य रूप से हाथ की गति एवं नियंत्रण, सिर एव गर्दन, छाती एवं बांह आदि की वृद्धि के बारे में पढ़ा जो जीवन के शुरुआती महीनों में बहुत आवश्यक हैं। अब विभिन्न प्रकार की चलित गतिविधियों के बारे में पढ़ना भी फायदेमंद साबित होगा जैसे पलटना, घिसकना, बैठना, खड़े होना, कदम बढ़ाना तथा चलना जोकि नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में घटित होती हैं। इन सभी गतिविधियों को हम एक एक करके पढ़ेंगे जो नीचे तालिका में दी गयी हैं:

संख्या	चलित गतिविधियाँ	आयु
1.	पलटना	5 माह
2.	खिसकना	6 से 10 माह
3.	बैठना	7 माह
4.	सहारा लेकर खड़ा होना	8 से 9 माह
5.	बिना सहारे खड़ा होना	12 माह
6.	कदम बढ़ाना	6 से 7 माह
7.	सहारा लेकर चलना	9 से 11 माह
8.	अकेले चलना	12 माह

- **पलटना**

लगभग 5 माह से, साधारणतया बच्चे पेट से पीठ की ओर लुढ़कते हैं, बाद में पीठ से पेट की ओर।

• **बैठना**

बच्चा बैठना या तो लेटे हुई अवस्था से उठने के लिए या फिर खड़ी अवस्था से नीचे बैठने में सीखता है। साधारणतया बच्चे 4 माह में तकिए का सहारा लेकर बैठते हैं तथा 7 माह में बिना सहारे के।

• **रेंगना / खिसकना**

चलने से पहले बच्चा कई अन्य चरणों से होकर गुजरता है। खिसकने की क्रिया में बच्चा अपनी भुजाओं का प्रयोग करके अपने शरीर को आगे को खींचता है। खिसकते समय बच्चे का पेट तो जमीन से लगा रहता है किन्तु कंधा एवं सिर ऊपर की ओर उठे रहते हैं। खिसकने की क्रिया के बाद रेंगने की क्रिया 7 से 9 माह में आरम्भ हो जाती है। रेंगते समय बालक अपने कंधे एवं सिर को ऊपर उठा लेता है तथा घुटनों एवं हाथों के बल चौपायों की तरह आगे को बढ़ता जाता है।

• **कदम बढ़ाना**

लगभग 6 या 7 वें माह में यदि बच्चे को बांहों से पकड़ा जाए तो वह कदम रखने का प्रयास करने लगता है।

• **खड़ा होना**

साधारणतया एक बच्चा 7 माह की आयु से किसी सहारे से खड़ा हो सकता है। इसके 4 माह बाद या उसके बाद अधिकतर बच्चे बिना सहारे के खड़े हो सकते हैं। साधारणतया सभी बच्चे अपने पहले जन्मदिन के कुछ पहले ठीक तरह से खड़े होने लगते हैं।

• **चलना**

चलना शारीरिक समन्वय की ओर एक कदम है जो काफी महीनों के बाद विकसित होता है। ऊपर बताए गए सभी विकास नवजात अवस्था के एक बड़े क्रियात्मक विकास को प्राप्त करते हैं जिसे चलना कहते हैं। सामान्य तौर पर एक शिशु लगभग 9 से 11 माह से किसी सहारे से चलना आरम्भ कर देता है और लगभग 12 माह से खुद अकेले चल सकता है। पहले जन्मदिन के कुछ समय बाद सामान्य बच्चा अच्छी प्रकार से चलने लगता है और अब वह बचापनावस्था में कदम रखता है। चलने के पश्चात करीब 17 माह से बच्चा दौड़ने लगता है तथा सीढ़ी चढ़ने लगता है तथा 20 माह में कूदने लगता है।

ऊपर बतायी गयी चलने संबंधी जानकारी से हम यह कह सकते हैं कि 9 से 18 माह का समय चलने में होने वाले तीव्र बदलावों का समय है। यह वह समय है जब बच्चा रेंगना शुरु करता है, खड़ा होता है, चलता है तथा अब वह अपने शरीर पर अच्छे से नियंत्रण कर सकता है।

इस इकाई में हमने नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के बारे में पढ़ा। यह ज्ञान हमें शिशु के जीवन के विभिन्न चरणों में होने वाले मानसिक एवं सामाजिक विकास के बारे में समझने में मदद करेगा। आगे बढ़ने से पूर्व आइये कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 4

1. नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त क्रियात्मक विकास के मील के पत्थर की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

2. नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में होने वाली चलित गतिविधियां बताइये।

.....

.....

.....

6.6 सारांश

सारांश में हम मुख्य रूप से एक नवजात के शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास पर जोर देंगे अर्थात 1 वर्ष के बच्चे के विकास संबंधी। नवजात अवस्था के दौरान होने वाला विकास नवजात के शारीरिक बनावट एवं संवेदी क्षमताओं तथा इसके साथ-साथ आकार एवं बनावट, मांसपेशियों, हड्डियों तथा मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों के बारे में सुझाव देता है। यह हमें उन सभी महत्वपूर्ण परिवर्तनों के सम्बन्ध में जानकारी देता है जो एक वर्ष की उम्र तक शिशु में होते हैं। हमने विकास के दोनों प्रकार के सिद्धांतों, शारीरिक परिपक्वता तथा कौशलों को सीखना, के अनुसार शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास में सम्बन्ध एवं समन्वय के बारे में पढ़ा। उसके बाद हमने यह भी जाना कि नवजात अवस्था के अंत में विभिन्न क्रियात्मक विकासों के मील के पत्थर एवं उपलब्धियां क्या हैं।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

- **हैबीचुएशन या आदी होना:** एक ही प्रकार का सीखना जिसमें किसी उद्दीपन से परिचितता प्रतिक्रिया को कम कर देती है या रोक देती है।
- **समन्वय या इंटीग्रेशन:** वह प्रक्रिया जिसमें न्यूरांस माँसपेशी समूह की क्रियाविधि के साथ समन्वय करते हैं।
- **मायलीनेशन:** वह प्रक्रिया जिसमें न्यूरान्स के बाहर एक वसीय परत जम जाती है जो कोशिकाओं के मध्य प्रसार को तीव्र करती है।
- **न्यूरान्स:** तंत्रिका कोशिका।
- **अनुभूति या परसेप्शन:** महसूस करने के आधार पर व्याख्या।
- **अनुक्रिया गतिविधि:** उद्दीपन के प्रति स्वचालित, अनैच्छिक एवं जन्मजात प्रतिक्रिया।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. शरीर निर्माण, पारिवारिक प्रभाव, पोषण, लिंग, जातीयता, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति।
2. a. 2.0, 3.0 b. दृष्टि c. 3 या 4 d. मायलीनेशन

अभ्यास प्रश्न 2

a. मस्त्काधोमुखी विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार शारीरिक वृद्धि और क्रियात्मक विकास ऊपर से नीचे की ओर होता है अर्थात सिर से पैर को।

b. निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार शारीरिक वृद्धि और क्रियात्मक विकास शरीर के केन्द्र से बाहर को होता है।

c. हाथ दृष्टि समन्वय को दृष्टि क्रिया समन्वय भी कहते हैं जिसमें कोई भी क्रिया करने के लिए दृष्टि एवं क्रिया कौशल दोनों सम्मिलित होते हैं।

d. स्थूल क्रिया कौशल में बड़ी मांसपेशियों की क्रियाएँ शामिल होती हैं जैसे हाथ हिलाना या चलना।

e. सूक्ष्म क्रिया कौशल में महीन कौशल आते हैं जैसे पकड़ना।

अभ्यास प्रश्न 3

1. अच्छा स्वास्थ्य, भावनात्मक विकास, स्वतंत्रता, स्व मनोरंजन, सामाजिकता, स्व धारणा।
2. तालिका 6.1 देखें।

अभ्यास प्रश्न 4

1. स्थूल एवं सूक्ष्म क्रिया कौशलों का विकास, अनुक्रिया एवं अनुक्रिया गतिविधि का विकास, सिर नियंत्रण, जन्मजात गति।
2. चलित गतिविधियों में पलटना (5 माह), खिसकना (6 से 10 माह), बैठना (7 माह), सहारे से खड़े होना (8 से 9 माह), बिना सहारे खड़े होना (12 माह), कदम बढ़ाना (6 से 7 माह), सहारे से चलना (9 से 11 माह) तथा खुद अकेले चलना (12 माह) आते हैं ।

6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
2. Brisbane, H.E. (2010), The Devveloping Child, Mc Gram Hill, Glencoe.

3. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
4. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
5. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक नवजात शिशु की शारीरिक बनावट एवं संवेदी क्षमताओं के बारे में बताइये।
2. नवजात अवस्था के दौरान आकृति एव आकार, मांसपेशी, हड्डियां तथा मस्तिष्क में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में बताइये।
3. शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय होता है, इसे सिद्ध कीजिए।
4. नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त होने वाले बड़े मील के पत्थरों की चर्चा कीजिए।

इकाई 7: संज्ञानात्मक विकास

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 संज्ञानात्मक विकास की परिभाषा
  7.3.1 संज्ञानात्मक प्रक्रिया के प्रमुख उत्क्रम
  7.3.2 विभिन्न आयु वर्गों में संज्ञानात्मक विकास
  7.3.3 शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास
7.4 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत
7.5 संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
7.6 बुद्धि
  7.6.1 बुद्धिलब्धि
  7.6.2 बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण
  7.6.3 बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक
7.7 खेल एवं खेल के प्रकार
7.8 शिशु का रचनात्मक(सृजनात्मक) विकास
7.9 सारांश
7.10 पारिभाषिक शब्दावली
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने क्रियात्मक तथा शारीरिक विकास के सम्बन्ध में पढ़ा। इस इकाई में हम शिशु के संज्ञानात्मक विकास के बारे में पढ़ेंगे। जन्म लेने के बाद बालक जिस वातावरण के संपर्क में आता है, उसके बारे में उसे कोई जानकारी नहीं होती है। उसे जो कुछ भी दिखायी देता है वह उसे समझ नहीं पाता है। किन्तु धीरे-धीरे शिशु परिपक्व होने लगता है तथा वातावरण एवं अपने आस पास की वस्तुओं को पहचानने तथा समझने लगता है। शिशु का यही विकास संज्ञानात्मक विकास कहलाता है। संज्ञानात्मक अनुभवों के अभाव में शिशु को वातावरण के साथ समायोजन करने में

कठिनाई होती है। अर्थात संज्ञानात्मक विकास से शिशु का सम्पूर्ण विकास प्रभावित हो सकता है। अत: शिशु का संज्ञानात्मक विकास उचित होना अति आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- विभिन्न आयु वर्गों में संज्ञानात्मक विकास को जान पायेंगे;
- शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास को जान पायेंगे;
- संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को समझ पायेंगे; तथा
- शैशवावस्था में रचनात्मक विकास को समझ पायेंगे।

7.3 संज्ञानात्मक विकास की परिभाषा

संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य ऐसी क्रियाओं से है जिसमें चिंतन, तर्क, प्रत्यक्षीकरण तथा विभिन्न समस्याओं का हल सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में संज्ञानात्मक विकास एक ऐसी उच्च मानसिक प्रक्रिया है जो हमें अपने आस पास के वातावरण को समझने तथा उसके साथ समायोजन करने में सहायता प्रदान करती है। संज्ञानात्मक विकास को स्टाट द्वारा निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है:

"समाज एवं प्रभाविकता के साथ कार्य करने तथा बाह्य पर्यावरण से सुविधाजनक ढंग से व्यवहार करने की योग्यता ही संज्ञान है।"

7.3.1 संज्ञानात्मक प्रक्रिया के प्रमुख उत्क्रम

संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख उत्क्रम निम्न हैं:

1. **छवि या प्रतिकृति निर्माण:** कोई भी प्राणी जन्म लेने के पश्चात सर्वप्रथम इन्द्रियों द्वारा अपने चारों ओर के वातावरण से अनुभव प्राप्त करता है। वही अनुभव प्रत्यक्ष होकर उसके मस्तिष्क में एक छवि का निर्माण करते हैं। अत: विभिन्न अनुभवों के आधार पर व्यक्ति भिन्न-भिन्न छवि बनाता है।

2. **संकेत:** व्यक्ति अपने अनुभवों द्वारा बाह्य जगत का प्रत्यक्षीकरण करने पर उद्दीपनों के सम्बन्ध में संकेतों द्वारा समझने का प्रयास करता है। संकेत वह उद्दीपन होते हैं जो उस समय वहाँ अनुपस्थित वस्तु का वर्णन करते हैं।

3. **भाषा:** संज्ञानात्मक विकास क्रम में तीसरा उत्क्रम है भाषा। अपने आस पास के वातावरण की वस्तुओं का ज्ञान होने पर व्यक्ति के मस्तिष्क पर जिस छवि का निर्माण होता है उस सम्बन्ध में अपनी उत्सुकता का समाधान वह इस उत्क्रम द्वारा करता है। वह उस छवि के सम्बन्ध में प्रश्न पूछता है तथा अपने ज्ञान का विस्तार करता है।

4. **तर्क:** लगभग 1 वर्ष की आयु से ही बच्चे में तर्क करने की क्षमता विकसित होने लगती है, अत: जब भी वे अपने आस पास के वातावरण में किसी नयी वस्तु या घटना को देखते हैं तो उसके संबन्ध में तर्क करने लगते हैं तथा इससे उनमें नये विचारों का निर्माण होता है।

5. **अवधारणा का निर्माण:** विचार मानसिक और संरचनात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं। यह किसी देखी गयी वस्तु की वास्तविक छवि होते हैं। अवधारणा निर्माण से ही संज्ञानात्मक विकास होता है।

7.3.2 विभिन्न आयु वर्गों में संज्ञानात्मक विकास

जीन पियाजे ने सम्पूर्ण संज्ञानात्मक विकास को 4 चरणों में विभाजित किया है

1. संवेदी पेशीय अवस्था (जन्म से 2 वर्ष)

यह संज्ञानात्मक विकास का प्रथम चरण है जो जन्म से 2 वर्ष की अवस्था तक रहता है। जन्म के समय शिशु में केवल सहज क्रियाएँ ही विकसित होती हैं। इन्हीं की सहायता से शिशु को वस्तु, ध्वनि तथा विभिन्न गंधों का अनुभव होता है। इस अवधि की समाप्ति तक बच्चे के अंदर विचार तथा कल्पना करने की क्षमता का विकास शुरु हो जाता है।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2 से 6 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा दूसरे व्यक्तियों से संपर्क बनाकर ज्ञान तथा नयी जानकारियों एवं अनुभवों को एकत्र करने लगता है। संवेदी पेशीय अवस्था की अपेक्षा किसी भी समस्या का समाधान करने में अधिक सक्षम होता है। बच्चा रटकर कोई भी चीज याद कर लेता है किन्तु उसे किसी कार्य के होने का कारण और वह कार्य क्यों हो रहा है इस बात का ज्ञान नहीं होता है। अर्थात बालक में इस समय संज्ञानात्मक परिपक्वता का अभाव होता है।

3. स्थूल संक्रियात्मक अवस्था (7 से 12 वर्ष)

इस अवस्था में बालक का विकास सूक्ष्म से स्थूल की ओर होता है क्योंकि अब बालक में तर्क वितर्क करने की क्षमता आ जाती है। इस अवस्था में बच्चा लम्बाई, भार, आकार, गणित, बीजगणित तथा ज्यामितीय प्रत्ययों को समझ पाने की योग्यता का विकास करता है। बच्चा अपनी

समस्याओं का समाधान करने के लिए खुद के कुछ नियम बना लेता है, इसलिए इसे नियमीकरण की अवस्था भी कहते हैं। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बच्चे को आयतन व भार का ज्ञान, संख्यात्मक ज्ञान आदि हो जाता है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (12 वर्ष से प्रौढ़ावस्था तक)

संज्ञानात्मक विकास की यह अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में होने वाले प्रमुख विकास निम्न प्रकार हैं:

- समस्या का समाधान करने की क्षमता का विकास
- तार्किक चिंतन करने की क्षमता का विकास
- मूर्त व अमूर्त में अंतर कर पाने की क्षमता का विकास
- परिकल्पनाओं को विकसित करने की क्षमता का विकास

इस प्रकार जीन पियाजे ने यह प्रतिपादित किया कि जैविक विकास ही सभी प्रकार के विकास का आधार है। बच्चों में संज्ञानात्मक विकास जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। संज्ञानात्मक विकास के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों को सोच समझकर कार्य करने की, विचार विमर्श करने की, कार्य के परिणामों पर विचार करने की तथा आत्म संयम की शिक्षा देनी चाहिए।

7.3.3 शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास

I. **नवजात शिशु से 3 माह तक:** बच्चे को ऊंचे स्वर पसंद होते हैं तथा वह उनकी ओर पलट कर देखता है। 6 माह की आयु के शिशु को आपकी अनुपस्थिति का एहसास नहीं हो पाता है तब भी जब आप उसके पास नहीं हो। वह यह भी नहीं समझ पाता कि आप ही वह व्यक्ति हो जो हर वक्त उसके साथ रहते हो। वह अनजान व्यक्तियों से डरता भी नहीं है।

II. **3 से 6 माह तक:** इस समय शिशु कुछ समझने लगता है। शिशु वस्तुओं को श्रेणीबद्ध कर सकता है। जैसे यदि आप उसे 6 चित्र बिल्लियों के दिखाएँ और अगला चित्र कुत्ते का दिखायें तो शिशु आश्चर्यचकित सा दिखाई देता है। 5वें माह पर यदि आप उसे लेकर 2 या 3 शीशों के सामने बैठ जाएँ तो वह आपको 2 या 3 स्थानों पर देखकर बहुत खुश होता है किन्तु जब उसे पता चलता है आप एक ही हो तो वह बहुत दुखी होता है। 6 माह तक उसका इतना विकास हो जाता है कि वह अपने खिलौनों को भी पहचान सकता है।

III. **7 से 9 माह:** अब शिशु अपना नाम पहचानने लगता है। वह अनजान व्यक्तियों तथा अनजान स्थानों पर असहज होता है। वह अपने कोमल खिलौनों के ऊपर लुढ़ककर जा सकता है तथा

मेज के नीचे क्या है यह भी देखने की सोच सकता है। अब शिशु खिलौनों का सही सही प्रयोग करने लगता है, वह ड्रम बजा सकता है या ईंटों को टकराकर आवाज कर सकता है। बच्चा आपकी नक़ल करने लगता है जो आपने उससे पहले किया हो। लेकिन शिशु को आंखमिचोली समझ नहीं आती है। अत: यदि आप उसका कोई खिलौना छिपा दें तो संभवत: वह नहीं ढूंढ पायेगा।

IV. **9 से 12 माह:** शिशु आपके आने पर चहकने लगता है तथा आपके जाने पर उदास हो जाता है। स्वयं को शीशे में देखने पर वह यह नहीं समझ पाता कि वह उसका प्रतिबिम्ब है। शिशु सार्थक शोर करता है जो उसके प्रथम शब्द बन जाते हैं।

V. **12 से 18 माह:** बच्चा अपनी आवश्यकता को कुछ शब्दों तथा कुछ हाव भाव से बता सकता है। यहाँ तक कि वह आपके द्वारा पिछले सप्ताह किए गए किसी कार्य की नक़ल भी कर सकता है। वह अलमारी खोल सकता है तथा ड़ब्बे खाली कर सकता है। किसी समस्या के आने पर वह उसके एक के बाद एक कई समाधान निकाल सकता है। यदि उससे कोई चीज छिपाई जाए तो वह अब उसे ढूंढ़ सकता है।

VI. **18 से 24 माह:** इस समय बच्चा शब्दों को जोड़ना सीख लेता है। अब वह कई कार्य केवल सोचकर ही करने लगता है। इसके लिए उसे प्रयत्न करने या गलती करने की आवश्यकता नहीं होती है। इस समय बच्चे प्रेमी तथा स्नेही हो जाते हैं, वो झगड़ालू या चिढ़चिढ़े, जिद्दी तथा अपने कार्य के प्रति बहुत अवास्तविक हो सकते हैं। 18 वें माह में बच्चे को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि कोई बच्चा उसके खिलौनों से खेल रहा है। उसे दूसरे बच्चों के साथ रहना अच्छा लगने लगता है लेकिन वह उनके साथ तभी खेलता है जब वे उम्र में कुछ बड़े हों। बच्चा यदि किसी व्यक्ति को मारता है तो वह यह सोचता है कि जैसे उसे दर्द नहीं होता उसी प्रकार उसे भी दर्द नहीं होगा जिसे वह मार रहा होता है। इसी प्रकार यदि बच्चा एक कुर्सी में जोर से बैठ जाए और उसे चोट लग जाए तो वह कहेगा कि कुर्सी ने उसे मारा है। इसी आयु वर्ग के बच्चे को यदि आप उसके माथे पर लिपस्टिक लगाकर शीशे के सामने बैठा दो तो वह लिपस्टिक साफ़ करने के लिए शीशे को साफ़ करने लगता है। 21 माह की आयु तक उसे यह समझ आने लगता है कि लिपस्टिक उसके लगी है तथा वह अपना माथा साफ़ करने लगता है।

7.4 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

यदि शैशवावस्था की बात करें तो यह कह सकते हैं कि इस दौरान न केवल शारीरिक बल्कि संज्ञानात्मक या मानसिक विकास भी होता है। शारीरिक विकास और परिवर्तन को तो आसानी से देखा और मापा जा सकता है किंतु संज्ञानात्मक विकास को मापना कठिन है। आइये अब संज्ञानात्मक विकास के सम्बंध में पियाजे का सिद्धांत पढ़ते हैं:

जीन पियाजे ने शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को छ: उपचरणों में बाँटा है:

1. प्रतिक्षेप क्रियाकलाप

यह उपचरण जन्म से 1 माह तक चलता है। इस समय बच्चा माँ का दूध या फिर बोतल से दूध पीने जैसे कार्यों में संलग्न रहता है तथा वह यह सीख रहा होता है कि अपने आस पास के वातावरण के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करनी है।

2. प्राथमिक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह अवस्था 1 से 4 माह तक होती है। इस समय बच्चा जानबूझकर उस क्रिया को बार-बार दोहराता है जिससे उसे मनपसंद परिणाम तथा खुशी मिलती है। इस समय बच्चे में एक क्रिया को दूसरी क्रिया से जोड़ने की क्षमता विकसित हो जाती है।

3. द्वितीयक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह उप अवस्था 4 से 8 माह तक चलती है। यह अवस्था भी पूर्व अवस्था के समान ही है। इन दोनों अवस्थाओं में केवल इतना अंतर है कि पिछली अवस्था में बच्चा केवल अपने शरीर में क्रिया को बार-बार दोहराने के स्थान पर वातावरण के ऊपर क्रिया दोहराते हैं।

4. द्वितीयक योजनाओं का समन्वय

यह अवस्था 8 से 12 माह तक होती है। इस अवस्था में बच्चे किसी भी कार्य का कारण तथा प्रभाव जानने की कोशिश करते हैं। जैसे वो कोई खिलौना जमीन पर फेंककर देखना चाहते हैं कि फेंकने का क्या प्रभाव होगा।

5. तृतीयक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह अवस्था 12 से 18 माह तक होती है। इस समय बच्चा जो भी वस्तु उसे मिले उसे पकड़कर उससे खेलने लगता है फिर चाहे वह वस्तु चाकू हो, बिजली का सामान हो या फिर कोई गर्म वस्तु। अत: माता-पिता को इस समय बच्चे पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

6. आरम्भिक विचार

यह शैशवावस्था की अंतिम उपावस्था है जोकि 18 से 24 माह तक चलती है। इस अवस्था तक आते आते बच्चा अपने मस्तिष्क में किसी भी वस्तु की एक सामान्य छवि बना लेता है तथा उसे

समय आने पर प्रयोग करता है। इस अवस्था में बच्चे की याद करने तथा पहचानने की क्षमता भी बहुत विकसित हो जाती है।

इस प्रकार पियाजे ने 6 चरणों में शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को समझा दिया है। आइये अब हम संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के सम्बंध में पढ़ें।

7.5 संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

संज्ञानात्मक विकास केवल मानसिक विकास नहीं है अपितु इसके साथ-साथ संवेदों तथा स्मरण शक्ति का विकास भी निहित है। अत: इसके विकास में व्यवधान का अर्थ है अन्य विकासों में भी बाधा उत्पन्न होना। अत: यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन से कारक इसके विकास को प्रभावित करते हैं। तो आइये इन कारकों के सम्बंध में पढ़ते हैं।

1. **आनुवंशिक कारक:** आनुवंशिक कारक संज्ञानात्मक विकास को बहुत महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। इसके अंतर्गत बच्चे में उपस्थित जन्मजात बीमारियाँ आती हैं जोकि बच्चे का मानसिक विकास होने में विलम्ब पैदा करती हैं। इस प्रकार की आनुवंशिक बीमारियों से युक्त बच्चे में कुछ मानसिक क्षमताएं ठीक प्रकार से विकसित नहीं हो पाती हैं।
2. **वातावरणीय कारक:** इसके अंतर्गत बच्चे के परिवार का सामाजिक स्तर आता है। निम्नवर्गीय परिवार के बच्चों में विकास की दर धीमी होती है तथा अन्य बच्चों की तुलना में कम अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। ऐसे बच्चे अकसर कुपोषण के भी शिकार होते हैं। इस प्रकार के परिवारों में माता-पिता बच्चे के साथ बहुत कम समय व्यतीत करते हैं अत: वह बच्चे के साथ किसी भी कार्य में सम्मिलित नहीं होते हैं। इस प्रकार क्योंकि बच्चे को माता-पिता का निर्देशन नहीं मिल पाता है अत: उसका संज्ञानात्मक विकास प्रभावित होता है।
3. **पोषण:** पोषण बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को बहुत प्रबल तरीके से प्रभावित करता है। यहाँ तक कि जन्म से पहले भी पोषण का शिशु के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब शिशु माँ के पेट में होता है यदि उस अवस्था में उसे प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में न मिले तो बच्चे का विकास गर्भ के भीतर तथा बाहर दोनों जगह धीमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त जिन बच्चों को माँ का दूध तथा उसके पोषक तत्व मिलते हैं ऐसे बच्चे भविष्य में अच्छी बुद्धिलब्धि वाले होते हैं।
4. **स्वास्थ्य:** ऐसे बच्चे जिनका स्वास्थ्य शुरुआत से ही अच्छा होता है तथा जो बीमारियों के प्रभाव से मुक्त रहते हैं उनमें संज्ञानात्मक विकास की गति रोगग्रस्त बच्चों की तुलना में तीव्र होती है।

5. **यौन भिन्नता:** लैंगिक भिन्नता का भी संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ भाषा विकास तथा शब्द प्रभाव में प्राय: अधिक अंक प्राप्त करती हैं।

ये ही कुछ मुख्य कारक हैं जो बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। अत: इन कारकों को ध्यान में रखकर हम बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में और सुधार ला सकते हैं।

7.6 बुद्धि

बुद्धि एक ऐसी शक्ति है जो हमें अपनी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता प्रदान करती है। बुद्धि के आधार पर ही किसी भी व्यक्ति की योग्यताओं को निर्धारित किया जाता है। जो व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमता का प्रयोग करके अपनी समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता है वह योग्य और कुशल कहलाता है। बुद्धि कोई तत्त्व नहीं है अपितु विभिन्न मानसिक योग्यताओं का एक समूह है।

7.6.1 बुद्धिलब्धि

बच्चे की शारीरिक आयु एवं मानसिक आयु के अनुपात को ही बुद्धिलब्धि कहते हैं। किसी भी व्यक्ति की बुद्धिलब्धि निकालने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं:

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{शारीरिक आयु}} \times 100$$

7.6.2 बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण

किसी भी बच्चे का मानसिक स्तर ज्ञात करने के लिये बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण किया जाता है जो निम्न प्रकार है:

बुद्धिलब्धि	बुद्धि
900 या इससे अधिक	अत्यधिक प्रतिभाशाली
140 से 200	प्रतिभाशाली
120 से 140	अति उत्कृष्ट
110 से 120	उत्कृष्ट
90 से 110	सामान्य
80 से 90	मंद बुद्धि
70 से 80	निर्बल बुद्धि

50 से 70	मूर्ख
20 से 50	मूढ़
20 से नीचे	जड़ बुद्धि

7.6.3 बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

बुद्धि एक जन्मजात योग्यता है। किंतु वंशानुक्रम के अतिरिक्त बुद्धि पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। ये कारक निम्नलिखित हैं:

1. वंशानुक्रम: विभिन्न अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई है कि बुद्धि बहुत हद तक वंशानुक्रम योग्यता होती है। बुद्धिमान माता-पिता से बुद्धिमान संतान तथा मंदबुद्धि माता-पिता से कम बुद्धि वाली संतानें होती हैं। कभी-कभी बुद्धिमान माता-पिता से भी मंद बुद्धि वाली संतानें हो जाती हैं। यह या तो वंशानुक्रम में दोष आने के कारण या फिर कई अन्य प्रकार के कारणों से होता है। किंतु यह सत्य है कि अन्य कारकों की अपेक्षा वंशानुक्रम बुद्धि को सर्वाधिक प्रभावित करता है।

2. शहरी या ग्रामीण वातावरण: हम सभी यह जानते हैं कि गावों के बच्चों की अपेक्षा शहर के बच्चों को अपनी जन्मजात योग्यताओं को विकसित करने के लिये अच्छा वातावरण प्राप्त होता है। अत: वे बुद्धि परीक्षणों में अच्छे अंक प्राप्त करते हैं।

3. माता-पिता का व्यवसाय: माता-पिता के व्यवसाय की प्रकृति तथा व्यवसाय के स्तर का भी बच्चे की बुद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि मजदूर, घरेलू नौकरों, किसान तथा कम शिक्षित कर्मचारियों की अपेक्षा इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर, कलाकार या किसी उच्च पद पर आसीन सरकारी कर्मचारी आदि व्यक्तियों के बच्चों की बुद्धिलब्धि बहुत अधिक होती है।

4. यौन विभेद: यह पाया गया है कि कई क्षेत्रों जैसे कलाकार, नेता, प्रतिभाशाली दार्शनिक तथा अन्य प्रकार की विभूतियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होते हैं अपितु इसका कारण यह है कि अधिकांश सामाजिक व्यवस्थाओं में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अपनी बौद्धिक क्षमता का विकास तथा प्रयोग करने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।

5. स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास: किसी भी बड़ी उपलब्धि को हासिल करने के लिये शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य दोनों का सही होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि बच्चे का स्वास्थ्य सही नहीं है तो वह अपने दिमाग का पूर्ण उपयोग नहीं कर पायेगा तथा वह जगह हासिल नहीं कर

पायेगा जो वह करना चाहता है। शारीरिक दोष जैसे मस्तिष्क कोशिकाओं का अपूर्ण विकास तथा शारीरिक रूप से अपंगता का भी बच्चे की बुद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे को होने वाली बीमारियों से भी बुद्धि प्रभावित होती है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि वंशानुक्रम के अतिरिक्त भी कई कारक हैं जो बुद्धि को प्रभावित करते हैं। आगे बढ़ने से पहले आइये कुछ प्रश्नों को हल करके अपने ज्ञान को परखें।

अभ्यास **प्रश्न 1**

1. जीन पियाजे ने शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को किन 6 उपचरणों में बाटा है सभी को सूचीबद्ध कीजिये?

   ---

2. संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को संक्षेप में समझाइये?

   ---

3. बुद्धिलब्धि से आप क्या समझते हैं?

7.7 खेल एवं खेल के प्रकार

खेल से बच्चे के दोस्त तो बनते ही हैं, इसके साथ-साथ बच्चा सामाजिकता भी सीखता है, उसे मनोभावों की समझ हो जाती है तथा वह अपने मनोभावों को प्रकट करना भी सीख लेता है। इस सबके अतिरिक्त बच्चे को खेलने में बहुत आनंद आता है।

बच्चे को निम्न प्रकार के खेलों में सम्मिलित किया जा सकता है

- **स्वतंत्र या खुला खेल:** इस खेल में बच्चा चारों ओर देखता रहता है तथा उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं होता है।
- **एकाकी खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा अकेले खेल सकता है उसे किसी साथी की आवश्यकता नहीं होती है।

- **दर्शक खेल:** इसमें बच्चा दूसरे बच्चों को खेलते हुए देखता है किन्तु खेल में भाग नहीं लेता है।
- **समानांतर खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा दूसरे बच्चों के साथ-साथ खेलता है किन्तु उनकी आपस में कोई बातचीत नहीं होती है। कभी-कभी तो वो एक ही प्रकार की वस्तु से खेल रहे होते हैं तथा एक दूसरे के बारे में जानते भी हैं लेकिन आपस में बात नहीं करते हैं।
- **संबद्ध खेल:** इसमें बच्चे एक दूसरे के आस पास खेल रहे होते हैं तथा आपस में सामान भी बाँट रहे होते हैं लेकिन साथ में नहीं खेलते हैं।
- **सहयोगी खेल:** इस खेल में बच्चे एक समूह में खेलते हैं तथा उनके खेल के नियम सभी के लिए सामान होते हैं और वे एक सामान लक्ष्य के लिए खेलते हैं।

बच्चे की आयु के अनुसार उसे उपरोक्त खेल खिलाए जाते हैं जो भिन्न-भिन्न आयु वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

7.8 शिशु का सृजनात्मक विकास

सृजनात्मकता किसी व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है। प्रत्येक व्यक्ति में सृजन की सम्भावनाएं होती हैं बस उनका उचित विकास होना आवश्यक होता है।

सृजनात्मकता का विकास:

बच्चों में सृजनात्मकता का विकास बाल्यावस्था से प्रारम्भ हो जाता है। इसे निम्न अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है:

1. प्रथम क्रांतिक अवस्था (5 से 6 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा विद्यालय जाना प्रारम्भ कर देता है तथा वहाँ से वो नैतिक शिक्षा प्राप्त करता है तथा इसके साथ-साथ घर के नियमों का भी पालन करता है। किंतु यदि बच्चे पर परिवार एवं विद्यालय का अधिक नियन्त्रण रहता है तो उसकी सृजनात्मकता अवरोधित हो जाती है।

2. द्वितीय क्रांतिक अवस्था (8 से 10 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा साथियों के साथ समूह बनाने में बहुत रुचि रखता है। बच्चे को अपने साथियों से यदि बराबर सम्मान प्राप्त होता है तो उसका संतुलन बना रहता है तथा उसकी सृजनात्मकता का विकास सामान्य रूप से होता रहता है।

3. तृतीय क्रांतिक अवस्था (13 से 15 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा अपने साथियों से स्वीकृति की चाह करने लगता है मुख्य रूप से विपरीत लिंग से। किंतु यदि बच्चा स्वीकृति ही प्राप्त करने में ही लगा रहता है तो उसका सृजनात्मक विकास उचित रूप से नहीं हो पाता है।

4. चतुर्थ क्रांतिक अवस्था (17 से 19 वर्ष)

इस अवस्था में किशोर केवल दूसरों से स्वीकृति का ही प्रयास ही नहीं करता अपितु अपने भविष्य की चिंता भी करने लगता है। अवस्था के इस चरण में उसे अपने कार्यों को करने के लिये थोड़ी स्वतंत्रता भी देनी चाहिए क्योंकि अधिक अंकुश लगाने से उसकी सृजनात्मकता अवरोधित हो सकती है।

अनेक अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि सृजनात्मकता का विकास 20 वर्ष की आयु तक अपनी चरम अवस्था तक पहुंच जाता है और इसके बाद विकास होना बंद हो जाता है। यदि वातावरणीय परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो बच्चा समय से पहले ही विकास की चरम अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

बच्चों में सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के तरीके

- बच्चे के माता-पिता तथा अभिभावकों का यह कर्तव्य है कि बच्चे को सृजनात्मकता के उचित विकास के लिए समुचित वातावरण उप्लब्ध करायें जिससे उसके विकास में अवरोध ना उत्पन्न हो सके।
- बच्चे में धनात्मक सामाजिक प्रवृत्तियाँ विकसित करने का प्रयास करना चाहिए जिससे उसका अपने साथियों, शिक्षकों तथा संरक्षकों से सम्बंध ना बिगड़े तथा उचित सृजनात्मक विकास भी हो सके।
- बच्चे को हर समय पारिवारिक गतिविधियों में व्यस्त नहीं करना चाहिए। उसे कुछ समय के लिये सभी कार्यों से मुक्त रखना चाहिए जिससे वह अपनी सृजनात्मकता का विकास करने की दिशा में प्रयास कर सके।
- बच्चे को टूटे फूटे खिलौने तथा साधन उपलब्ध कराने चाहिए जिससे वह उन्हें जोड़ने का प्रयास कर सके और उसमें सृजनात्मकता का विकास हो सके।

- बच्चे को कुछ मनोरंजन की गतिविधियों में व्यस्त करना चाहिए किंतु उसे टी.वी. अधिक नहीं देखने देना चाहिए। इसके स्थान पर उसे किसी चित्रकारी में, किसी प्रसिद्ध लेखक द्वारा लिखी हुई किताबों को पढ़ने में तथा किसी नाटक का अभ्यास करने के लिये प्रेरित करना चाहिए।
- इस समय बच्चे के मन में कई तरह की जिज्ञासाएं जन्म ले रही होती हैं अत: माता-पिता को चाहिए कि बच्चे की इन जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास करें।
- बच्चे को कुछ कार्य उसे खुद से करने दें चाहे वह उस कार्य में गलतियां करे या असफल हो जाये। इससे वह बार-बार उस कार्य को करेगा जब तक कि वह उसमें सफल ना हो जाये। इसके अलावा वह असफल होने से नहीं डरेगा तथा अपनी सृजनात्मकता को और अच्छे तरीके से प्रदर्शित करेगा।

आइये अब कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. खेल के प्रकार बताइये।

   ---

2. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं?

7.9 सारांश

इस इकाई में आपने शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास के सम्बन्ध में पढ़ा जिसके अंतर्गत आपने यह पढ़ा कि शैश्वावस्था में किस प्रकार संज्ञानात्मक विकास होता है। इसके अलावा आपने बुद्धि तथा बुद्धिलब्धि के सम्बंध में पढ़ा। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार किसी बच्चे की बुद्धि की गणना की जा सकती है। इसी के अन्तर्गत आपने जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत भी पढ़ा और अंत में आपने शैशवावस्था में होने वाले सृजनात्मक विकास के बारे में पढ़ा।

7.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **सृजनात्मकता:** किसी व्यक्ति की वह योग्यता जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है।
- **बुद्धि:** बुद्धि विभिन्न मानसिक योग्यताओं का एक समूह है।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. भाग 7.4 देखें।
2. भाग 7.5 देखें।
3. भाग 7.6.1 देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. भाग 7.7 देखें।
2. भाग 7.8 देखें।

7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.
2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram-Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
3. Marshall, M.H. and Janette B. Benson (2008), Encyclopedia of Infant and Early Childhood Development, Academic Press, San Diego.
4. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
5. Ruth Strang, (1971), An Introduction to Child Study, Fourth edition, The Macmillan Company, New York.

6. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
7. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.
8. http://www.en.wikipedia.org/wiki/infant (August 2014)
9. http://www.nlm.nih.gov/medlineplus/infant and newborn care.html (August 2014)
10. http://kidshealth.org/parent/newborn care/guide parents.html (August 2014)
11. MFN- 006, Public Nutrition (2006), Indira Gandhi National Open University, Laxmi Print India, New Delhi.

इकाई 8: भाषा विकास

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 भाषा का महत्व
8.4 भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांत
8.5 भाषा विकास
    8.5.1 भाषा विकास की अवस्थाएं
8.6 वाणी एवं वाणी दोष
    8.6.1 वाणी दोष
    8.6.2 वाणी दोष दूर करने के उपाय
8.7 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
8.8 सारांश
8.9 पारिभाषिक शब्दावली
8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं कि भाषा मनुष्य व समाज के बीच संचार को बुनियादी रूप से विकसित करती है। व्यक्ति के विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा माध्यम का कार्य करती है। इसमें विचार, अनुभूति तथा संदेशवाहन को प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया जाता है। बालक के विकास क्रम में भाषा का विकास होना परम आवश्यक है। भाषा विकास बच्चों के मानसिक और सामाजिक विकास में सहायता प्रदान करता है। भाषा के कारण ही मानव समस्त जीवों में श्रेष्ठ है। सभ्यता व संस्कृति का विकास भी भाषा विकास की ही देन है। बालक सर्वप्रथम अपनी माता से भाषा सीखता है, फिर अपने परिवार के सदस्यों द्वारा तथा तत्पश्चात् अपने आसपास के वातावरण से। भाषा के बिना अपनी कल्पना, आवश्यकता एवं भावना की अभिव्यक्ति कर पाना बहुत जटिल कार्य है। भाषा विकास एक लम्बी व जटिल प्रक्रिया है। शिशु में जन्म के तुरन्त बाद क्रन्दन के रूप में भाषा विकसित होने लगती है। शिशुओं में असहायता का मुख्य कारण उनकी भाषा की अयोग्यता है। 4-5 माह में शिशु अस्पष्ट

ध्वनियों का उच्चारण करते हुए धीरे-धीरे अर्थहीन शब्दों का उच्चारण करता है। इसी क्रम में निश्चित ध्वनि, शब्द एवं शब्दों के भण्डार से शिशु वाक्य बनाने की स्थिति तक पहुँच जाता है। आयु वृद्धि के साथ जैसे-जैसे भाषा विकसित होती है, वैसे-वैसे बालक में बुद्धिमत्ता के कारण वाक चातुर्यता भी विकसित होने लगती है। प्रत्येक समुदाय तथा समाज द्वारा विचारों के आदान-प्रदान के लिए अलग-अलग भाषा का प्रयोग किया जाता है और उसी भाषा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता है। अर्थात् जो भाषा बोली जाती है उसके द्वारा समाज कई सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराएं या विरासत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को देता है।

8.2 उद्देश्य

मानव भाषात्मक क्षमता का विकास अपनी व्यक्तिगत एवं सामूहिक उपलब्धि के द्वारा निर्मित या विकसित करता है। बालक जिस भाषा को सीखता और उपयोग में लाता है, उसमें उन सहस्त्र शब्दों का समावेश करता है जो उसके सामाजिक सदस्यों द्वारा बोले जाते हैं। मानव द्वारा विशिष्ट भाषा में प्रयुक्त सभी शब्द भंडार का ज्ञान या उपयोग संभव नहीं है परन्तु समाज में सुसमायोजित होने के कारण भाषा की जानकारी नितान्त आवश्यक है। भाषा की अपनी कुछ विशेषताएं होती हैं, जैसे भाषा पर सभी वर्ग, समुदाय व जाति का समानाधिकार होता है। यह देश, काल तथा परिस्थिति के कारण परिवर्तनशील होती है एवं भाषा का संबंध परम्पराओं से होता है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप;

- भाषा विकास के महत्व को जान पाएंगे;
- भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांतों तथा अवस्थाओं के बारे में जानकारी ले पाएंगे; तथा
- भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों तथा वाणी दोष के बारे में जान पाएंगे।

आइए, सर्वप्रथम हम भाषा के महत्व पर चर्चा करें।

8.3 भाषा का महत्व

भाषा विचारों, भावों व संवेगों को व्यक्त करने का माध्यम है। भाषा शैक्षिक, बौद्धिक, शारीरिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में लाभ पहुँचाती है। भाषा वह शक्ति है जिसके कारण मानव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर समस्त प्राणी जगत में स्वयं को सर्वोत्तम सिद्ध करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

आइए, भाषा की उपयोगिता के बारे में जानें।

- **सामाजिक संबंधों के निर्माण में सहायक:** भाषा वह माध्यम है जिसमें सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराएं, रीति-रिवाज, आदर्श एवं नियम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। जो बच्चे बहिर्मुखी होते हैं वह अपने साथियों में लोकप्रिय होते हैं तथा उनके सामाजिक संबंध भी

अपने समूह व साथियों से अच्छे होते हैं। इसके विपरीत अंतर्मुखी बालक लोकप्रिय नहीं होते। भाषा में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता होती है।

- **सामाजिक समायोजन में सहायक:** भाषा द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण बच्चों को सामाजिक समायोजन में कठिनाई नहीं होती है। जो व्यक्ति कई भाषाओं का ज्ञाता होता है, उसे समाज में समायोजित होने में आसानी होती है।
- **नेतृत्व विकास में सहायक:** भाषा के माध्यम से ही बालक में नेतृत्व की क्षमता विकसित होती है क्योंकि भाषा के द्वारा ही लोगों तक अपने विचारों को आसानी से पहुँचा कर उनका ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।
- **स्व-प्रत्यय निर्माण:** विचारों को व्यक्त करने हेतु भाषा का इस्तेमाल अपने व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर स्व-प्रत्यय निर्मित करता है जो व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होता है।
- **शैक्षिक उपलब्धि:** भाषा के ज्ञान द्वारा ही जीवन में शैक्षिक उपलब्धियाँ संभव होती हैं। शब्द-भंडार के विशाल होने पर वाक्य विन्यास व विषय के प्रस्तुतीकरण में सौंदर्य व मधुरता अधिक प्रबलता से पाई जाती है।
- **मानव विकास का आधार:** भाषा विकास द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का उचित विकास होता है। अपने विचारों के प्रस्तुतीकरण में संतुलित, सीमित व प्रभावशाली होने की क्षमता जिस बालक में होती है, वे अपने जीवन के हर क्षेत्र में विकास करते हैं।
- **साहित्य सृजन में सहायक:** साहित्य एवं भाषा को एक दूसरे का पूरक भी कहा जा सकता है क्योंकि किसी भी साहित्य को उसकी भाषा द्वारा ही आंका जाता है।
- **संस्कृति का प्रतिबिम्ब:** किसी भी व्यक्ति, समुदाय, समाज व राष्ट्र की सभ्यता व संस्कृति भाषा द्वारा ही प्रतिलक्षित होती है। जिन समूहों की भाषा अविकसित होती है उनकी सभ्यता व संस्कृति भी अविकसित होती है।

8.4 भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांत

जैसा कि आप जानते हैं कि भाषा का विकास शिशु के प्रथम क्रन्दन से ही प्रारम्भ हो जाता है परन्तु लम्बे व विलष्ट शब्दों का प्रयोग शिशु कब और कैसे करता है, इसका पता लगाने के लिए मनौवैज्ञानिकों ने कई अध्ययन किए एवं पता लगाया कि भाषा विकास कुछ सिद्धांतों पर आधारित होता है। उनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन निम्न प्रकार है:

- **स्वर अंगों की परिपक्वता:** बोलने की प्रक्रिया में कई अंग एक साथ कार्य करते हैं, जैसे गला, जीभ व स्वरयंत्र, होंठ, फेफड़े आदि। इन सभी अंगों की परिपक्वता भाषा विकास के लिए आवश्यक है।

- **अनुकरण की प्रणाली:** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा विकास के लिए न केवल अंगों की परिपक्वता का अपितु अनुकरण का होना भी आवश्यक है। बालक प्रारम्भ में अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों द्वारा बोले गए शब्दों की ध्वनियों एवं उच्चारण का अनुकरण करता है, तत्पश्चात आयु वृद्धि के साथ स्वरयंत्र में परिपक्वता आती है एवं बालक व्यंजनों का उच्चारण भी सीख जाता है। अतः माता-पिता को बालक के समक्ष स्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण करना चाहिए। यदि बालक गलत उच्चारण करे तो उसे सुधारें। अनुकरण द्वारा बालक शब्दों को बार-बार बोलकर आनंद की प्राप्ति करता है।
- **अनुबंधन की प्रणाली:** कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भाषा विकास को अनुबंधन प्रणाली पर आधारित बताया है। इसे उद्दीपन अनुक्रिया (Stimulus response) के बीच स्थापित सहचर्य के आधार पर जाना जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक द्वारा भाषा को अर्जित करना, ध्वनि एवं ध्वनि संयोजक के चयनात्मक पुनर्बलन पर निर्भर करता है। प्रारंभ में बालक अर्थहीन शब्दों का उच्चारण करता है परंतु जब उसके समक्ष उच्चारित शब्दों को साथ में प्रदर्शित किया जाता है तो वह अपने द्वारा उच्चारित शब्दों के अर्थ का संबंध वस्तु के साथ जोड़ लेता है।
- **बोलने के लिए प्रेरणा:** जैसा कि आप जानते हैं कि प्रारंभ में बालक टूटे-फूटे, अर्थहीन एवं निरर्थक शब्दों का उच्चारण करता है परंतु आयु वृद्धि एवं तंत्रिका तंत्र के परिपक्व होने के साथ वह धीरे-धीरे अर्थपूर्ण शब्दों को उच्चारित करने लगता है। बालक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बोलना सीखता है। यदि वह संकेतों व हाव-भाव के प्रयोग से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता जाता है तो उसका भाषा विकास कुंठित हो जाता है। यदि बालक को बोलने के लिए उचित प्रोत्साहन व प्रेरणा मिले तो भाषा विकास सुचारू रूप से होगा, साथ ही बालक का शब्द भण्डार भी विकसित होगा।
- **कोमास्की का सिद्धांत**: कोमास्की ने बालक के भाषा विकास "Language Acquisition Device (LAD)" के आधार पर समझाया। उनका मानना है कि बालक में जन्म से ही एक ऐसी प्रणाली होती है जिसे LAD कहते हैं। इस प्रणाली में बालक भाषा समझने एवं बोलने की प्रक्रिया स्वयं ही करता है तथा उसे समझने के बाद उसका पुनरुत्पादन करता है। कोमास्की के अनुसार जिस प्रकार आँख एवं तंत्रिका तंत्र प्रकाश की विभिन्न तरंगों को विश्लेषित कर रंगों का ज्ञान करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रवण तंत्रिका तंत्र भी मस्तिष्क की तंत्रिकाओं से उसी तरह संबंधित होते हैं। विभिन्न ध्वनियों को तंत्रिकाओं तक भेज दिया जाता है जिसे श्रवण तंत्रिकाएं ग्रहण करती हैं तथा उसे तंत्रिका तंत्र में विश्लेषण हेतु भेज दिया जाता है जिससे ध्वनियों/शब्दों का ज्ञान होता है।
- **भाषा का स्नायुविक आधार:** भाषा विकास स्नायु तंत्रों के विकास एवं परिपक्वता पर आधारित होता है। हमारे मस्तिष्क के cerebrum भाग के दो हिस्से होते हैं जिसे क्रमशः बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर तथा दायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर कहा जाता है। बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर व्यक्ति के भाषा विकास से संबंधित है। यदि गर्भावस्था या जन्म के समय किसी कारणवश बच्चे का बायाँ

सेरीब्रल हेमीस्फीयर क्षतिग्रस्त हो तो उसका भाषा विकास कुंठित व बाधित हो जाता है व बालक देर से बोलना सीखता है।

अगले भाग में भाषा विकास पर चर्चा से पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दें।

1. भाषा विकास व्यक्ति के सामाजिक समायोजन में किस प्रकार सहायक है?
2. कोमास्की ने बालक के भाषा विकास को किस आधार पर समझाया?
3. मानव मस्तिष्क का कौन-सा भाग भाषा विकास से संबंधित है?

8.5 भाषा विकास

भाषा का विकास एकाएक नहीं होता। यह एक लम्बी व जटिल प्रक्रिया है। भाषा विकास का प्रारंभ बालक के भीतर तभी होता है जब वह शब्दों को सही ढंग से उच्चारित करे। प्रारंभ में बालक अपनी आवश्यकताओं को हाव-भाव एवं प्रतीकात्मक शारीरिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त करता है। भाषा विकास के दो पक्ष हैं**;** गत्यात्मक पक्ष (Motor aspect) तथा मानसिक पक्ष (Mental aspect)। गत्यात्मक पक्ष बालक में कुछ ध्वनियों को बोलने की योग्यता से संबंधित है अर्थात् विभिन्न ध्वनियों में इस प्रकार का संयोजन हो कि इन संयोजित ध्वनियों को शब्द कहा जा सके। भाषा विकास का मानसिक पक्ष बोले गए शब्दों का अर्थ जानने की योग्यता से संबंधित है। बालक के भाषा विकास में कई अवस्थाएं आती हैं जो शिशु के क्रंदन से शुरु होकर वाक्य निर्माण तक पहुँचती हैं। इस इकाई में हम भाषा विकास के इन चरणों पर चर्चा करेंगे।

8.5.1 भाषा विकास की अवस्थाएं

बच्चों के भाषा विकास की अवस्थाओं को दो प्रमुख उप-अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है; भाषा विकास से पूर्व सम्प्रेषण (Pre-speech forms of communication) तथा वास्तविक वाणी विकास (Speech development)।

भाषा विकास से पूर्व सम्प्रेषण: इस अवस्था के अंतर्गत निम्न अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित हैं जो वास्तविक भाषा विकास से पूर्व विकसित होती हैं:

• **क्रन्दन (Crying):** शिशु के जीवन की शुरुआत क्रन्दन या रूदन से होती है। अतः यही उसकी प्रारंभिक भाषा होती है। इस अवस्था में शिशु को स्वर व व्यजनों का ज्ञान नहीं होता है। लगभग चार माह की अवस्था तक शिशु जो ध्वनियाँ निकालता है**,** उनमें स्वरों की संख्या अधिक होती है।

प्रारंभिक सप्ताहों में शिशु का रोना सर्वदा अनियमित होता है परन्तु आयु वृद्धि होने के साथ शिशु अपनी अनुभूतियों की आवश्यकता व लोगों का ध्यान आकर्षित करने हेतु क्रन्दन का सहारा लेते हैं। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि लगभग दो माह तक के शिशुओं में रोने का मुख्य कारण भूख लगना होता है। कुछ अन्य कारणों की वजह से भी शिशु अभिव्यक्ति हेतु रोने का सहारा लेते हैं जैसे शोर, तीव्र प्रकाश, शरीर में किसी प्रकार का दर्द, सोने में व्यवधान, थकान, भूख, भय, सोने की असहज स्थिति आदि। शिशु का क्रन्दन का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है, कुछ शिशु अपेक्षाकृत अधिक रोते हैं तथा कुछ कम। यह मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि शिशु के संकेतों को संरक्षक कितनी अच्छी तरह तथा जल्दी समझता है। आयु में वृद्धि के साथ बच्चा कुछ शब्द बोलना शुरु करता है तथा कुछ शारीरिक हाव-भावों से अपनी बात को समझा पाता है जिससे शिशु के क्रन्दन के स्वभाव में कमी आती है। अध्ययनों में पाया गया है कि रोने से बच्चे की मांसपेशियों में समन्वय बढ़ता है तथा संवेगात्मक तनाव भी दूर होता है परंतु आवश्यकता से अधिक रोना बच्चे के लिए शारीरिक तथा मानसिक दोनों रूप से हानिकारक होता है।

• **कूइंग एवं बबलाना (Cooing and Babbling):** बच्चे का रोना ही कुछ समय बाद उसके कूइंग/बबलाने या विस्फोटक ध्वनियों में परिवर्तित होता है जो शब्दोचारण के विकास में सहायक होता है। जन्म के लगभग दो माह बाद ही शिशु कुछ सरल ध्वनियाँ निकालने लगता है। ये ध्वनियाँ अधिगमित नहीं होती हैं परन्तु सभी बच्चों में देखी जा सकती हैं। इन खेलयुक्त ध्वनियों को कूइंग की संज्ञा दी जाती है। इनमें से कुछ ध्वनियाँ बबलाने में परिवर्तित हो जाती हैं तथा कुछ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। शिशु का बबलाना दूसरे माह से प्रारंभ होकर लगभग 15 माह तक चलता है। स्वर-यंत्र की परिपक्वता के लिए बबलाना आवश्यक है। बबलाने की क्रिया अनुकरण पर आधारित होती है। इसमें एक ही ध्वनि व स्वरों की पुनरावृत्ति होती है जैसे मा-मा-मा-मा, जिससे शिशु को आनंद की अनुभूति होती है। अधिक बबलाने से शिशु ध्वनि के संयोजन को भी सीखता है जिसके आधार पर उसका भाषा विकास होता है।

• **हाव भाव (Gestures):** बच्चों में हाव-भाव का आविर्भाव बबलाने के साथ होता है। वास्तविक भाषा बोलने से पूर्व की अभिव्यक्तियों में हाव-भाव का प्रयोग भी एक महत्वपूर्ण चरण है। भाषा विकास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चे शब्दों के स्थान पर हाव-भाव प्रदर्शित करते हैं। मुस्कुराकर, हाथ फैलाकर, उँगली दिखाकर, ऐसे कई हाव-भावों द्वारा बच्चे अपनी भावनाओं और विचारों को मूक भाषा में व्यक्त करते हैं। कई बार बच्चे अपनी बात को बेहतर तरीके से समझाने के लिए हाव-भावों के साथ कुछ शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। जैसे-जैसे भाषा का विकास बढ़ता है, बच्चे के हाव-भावों का प्रयोग कम होता जाता है।

वास्तविक वाणी विकास: इस अवस्था में वास्तविक भाषा विकास की अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित हैं जिनकी विस्तृत चर्चा हम आगे आने वाली इकाईयों में करेंगे। यहाँ पर हम संक्षिप्त में इस अवस्था की विभिन्न अभिव्यक्तियों पर दृष्टि डालेंगे।

- **आकलन शक्ति (Comprehension):** अन्य व्यक्तियों की भाव-भंगिमाओं तथा क्रियाओं को समझने की बालक की योग्यता ही उसकी आकलन शक्ति कहलाती है। बच्चों में इस शक्ति का विकास शब्दों के प्रयोग से पूर्व ही हो जाता है। बालक जितने शब्दों को बोल पाता है उससे अधिक शब्दों को वह समझ पाता है। ध्यान लगाकर सुनने से तथा आपस में अधिक वार्तालाप करने से बच्चे की आकलन शक्ति का विकास अधिक होता है।
- **उच्चारण:** जन्म के बाद लगभग छह माह तक शिशु अनेक निरर्थक ध्वनियाँ उच्चारित करता है परन्तु एक वर्ष का होने तक उसके शब्दों के उच्चारण में सुधार होने लगता है। यह उच्चारण वह अनुकरण द्वारा सीखता है। बालक में शब्दों के सही उच्चारण हेतु उचित मार्गदर्शन तथा वातावरण की आवश्यकता होती है।
- **शब्द भण्डार:** आयु में वृद्धि के साथ-साथ बालक के शब्द भण्डार में भी वृद्धि होती है। उसके शब्द भण्डार में न केवल नए शब्द जुड़ते हैं अपितु वह कई पूर्व में सीखे गए शब्दों के नए अर्थ भी सीखता है। शब्द भण्डार की दृष्टि से बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है जिसका कारण बुद्धि, वातावरण, प्रेरणा तथा अधिगम के उचित अवसरों की उपलब्धता है। बालक के शब्द भण्डार में सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार के शब्द भण्डार होते हैं। सामान्य शब्द भण्डार में वे सभी शब्द सम्मिलित हैं जिनका उपयोग बालक सामान्य परिस्थितियों में करता है। विशिष्ट शब्द भण्डार में मुख्यत: निम्न क्षेत्रों से सम्बन्धित शब्द आते हैं:
  - रंगों से सम्बन्धित
  - संख्याओं से सम्बन्धित
  - समय तथा धन से सम्बन्धित
  - शिष्टाचार से सम्बन्धित तथा अशिष्ट शब्द भण्डार
- **वाक्य निर्माण:** यह भाषा विकास की सबसे प्रमुख अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा अपने शब्द भण्डार में से शब्दों का चयन कर कुछ वाक्यों का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह अपने विचारों तथा आवश्यकताओं को व्यक्त कर पाता है। यह अवस्था आयु में वृद्धि के साथ-साथ और ज्यादा परिष्कृत होती जाती है अर्थात बच्चा नए-नए तथा जटिल वाक्यों का निर्माण करना सीखता है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. शिशु के जीवन की प्रारंभिक भाषा ..... होती है।
2. भाषा विकास की आरम्भिक अवस्था में शिशु के बबलाने की क्रिया ..... पर आधारित होती है।
3. बालक के शब्द भण्डार में ..... तथा ..... दो प्रकार के शब्द भण्डार होते हैं।

8.6 वाणी एवं वाणी दोष

वाणी व भाषा दो ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग लोगों द्वारा सामान्य बोलचाल में एक दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है हालांकि दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। वाणी में हम भाव को व्यक्त करने के लिए मुख से ध्वनि या शब्दों को उच्चारित करते हैं। स्पष्ट व नियंत्रित ध्वनि को ही वाणी कहा जाता है। विकास क्रम के आरंभ में शब्द अस्पष्ट व अनियंत्रित उच्चारित होते हैं परन्तु स्नायु मंड़ल के विकास के साथ ही वाणी में स्पष्टता आ जाती है। बालक द्वारा उच्चारित सभी ध्वनियाँ वाणी नहीं होती हैं। जब बालक को उच्चारित शब्दों के अर्थ का ज्ञान हो तभी उत्पन्न ध्वनियाँ वाणी कहलाती हैं। वे ध्वनियाँ जिन्हें बालक के आस-पास रहने वाले व्यक्ति आसानी से समझ सकें, उसे वाणी विकास कहा जाता है। इस प्रकार ध्वनियों व शब्दों के सम्मिलित रूप को वाणी कहा जाता है। भाषा विकास वाणी विकास का विस्तृत रूप है। वाणी विकास से ही भाषा विकास की शुरुआत होती है। जन्म के उपरान्त कुछ माह तक शिशु वाणी के माध्यम से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

अगले भाग में हम वाणी दोष के बारे में चर्चा करेंगे।

8.6.1 वाणी दोष

बालक की भाषा में कई प्रकार के दोष पाए जाते हैं। यह दोष स्वर यंत्र के पूर्ण रूप से परिपक्व न होने के कारण जीवन की प्रारंभिक अवस्था में देखने को मिलते हैं। ये दोष सामान्यतः अस्थायी होते हैं एवं आयु वृद्धि के साथ लुप्त हो जाते हैं। यदि वाणी दोषों को सुधारा नहीं जाए तो ये स्थायी हो जाते हैं जो बच्चों में हीन भावना विकसित कर उनके व्यक्तित्व विकास को कुंठित कर देते हैं। वाणी दोष से ग्रसित बच्चों को सामाजिक समायोजन में भी कठिनाई होती है।

हरलॉक के अनुसार बच्चों के वाणी दोष का संबंध उनकी दोषपूर्ण तथा अशुद्ध भाषा से होता है। दोषपूर्ण शब्द का प्रयोग अधिकांशतः उच्चारण संबंधी दोषों के लिए किया जाता है लेकिन विस्तृत अर्थों में इसका प्रयोग किसी भी प्रकार के भाषा दोष के लिए किया जा सकता है। विकार शब्द का प्रयोग उच्चारण के गंभीर दोषों के लिए किया जाता है। बच्चों में पाए जाने वाले कुछ सामान्य वाणी दोष निम्न प्रकार हैं:

- **भ्रष्ट उच्चारण (Lisping):** यह बच्चों में पाए जाने वाला एक सामान्य दोष है। भ्रष्ट उच्चारण के कई कारण होते हैं जैसे जबड़ों, दाँतों व होंठ की रचना का ठीक न होना, बच्चे की शैशव कालीन भाषा को दोहराने की प्रवृत्ति व माता-पिता द्वारा भाषा का उच्चारण स्पष्ट न होना आदि। जिस उच्चारण का संबंध वातावरण या शैशव कालीन भाषा से होता है, वह विद्यालयी अवस्था में लुप्त हो जाता है। ऐसा दूसरे बच्चों के द्वारा उपहास से बचने के प्रयास में होता है। भ्रष्ट उच्चारण का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि बच्चों के इस प्रकार के उच्चारण का उनके संरक्षक आनन्द लेते हैं जिससे इस प्रकार के विकार को बढ़ावा मिलता है।
- **अस्पष्ट उच्चारण (Slurring):** अस्पष्ट उच्चारण से अभिप्राय है बच्चे का शब्द के किसी एक अक्षर को ठीक से उच्चारित न कर पाना। यह दोष प्रायः होंठ, जीभ व जबड़े की निष्क्रियता व मांसपेशियों में विकृति, उत्तेजना, संवेगात्मक तनाव व बहुत जल्दी-जल्दी बोलने के कारण होता है। यदि 4 वर्ष की आयु तक यह दोष दूर न किया जाए या स्वतः दूर न हो तो यह स्थाई रूप ले लेता है।
- **तुतलाना (Stuttering):** तुतलाने में बालक किसी शब्द के प्रथम अक्षर या समूह को या पूरे शब्द को ही कई बार दोहराता है, जैसे ग ग ग ग गाड़ी। इसमें बालक की वाणी में पूर्ण सामंजस्य का अभाव होता है तथा वाणी पुनरावृत्ति वाली होती है। तुतलाने का वाणी दोष जीवन की प्रारंभिक अवस्था अर्थात ढाई वर्ष में ही शुरु हो जाता है जबकि कुछ बच्चों में तुतलाना 6 वर्ष की अवस्था में प्रारंभ होता है। तुतलाने का कोई निश्चित कारण नहीं होता है। कुछ बच्चे केवल माता-पिता के सामने ही तुतलाते हैं जबकि कुछ बच्चे अजनबी व्यक्तियों के साथ समायोजित न कर पाने की स्थिति में भय व घबराहट के कारण तुतलाते हैं। बालक का समायोजन जैसे-जैसे अच्छा होता जाता है, उसका तुतलाना कम होता जाता है।
- **हकलाना (Stammering):** हकलाना तुतलाने से भिन्न होता है। तुतलाने में किसी ध्वनि को बार-बार दोहराया जाता है जबकि हकलाने में ध्वनि अवरुद्ध हो जाती है। अर्थात ध्वनि का अवरुद्ध होना ही हकलाने का प्रमुख कारण है। हकलाने की उत्पत्ति संवेगात्मक परिस्थितियों अर्थात भय और घबराहट के कारण होती है। इस स्थिति में बालक के चेहरे में तथा शारीरिक स्थिति में असंतुलन या परिवर्तन आते हैं। हकलाना स्वर यंत्र, गला, जीभ, फेफड़ों तथा होंठों के बिगड़े हुए संतुलन के कारण उत्पन्न दोष होता है। ट्रेविस ने हकलाने का कारण मस्तिष्क में श्रवण और वाक् केन्द्रों का विकृत हो जाना बताया है। हकलाना बालक के समायोजन एवं विकास को प्रभावित करता है।
- **तीव्र अस्पष्ट वाणी (Cluttering):** इस प्रकार के वाणी विकार में बोलने की गति तीव्र होती है तथा शब्द अस्पष्ट होते हैं जिस कारण भाषा पूर्ण रूप से समझ नहीं आती है।

वाणी दोषों के बारे में जानने के बाद आइए इन दोषों को दूर करने के उपायों की चर्चा करें।

8.6.2 वाणी दोष दूर करने के उपाय

वाणी दोष बालक के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करता है एवं उनमें हीनता के भाव को उत्पन्न करता है। बच्चों को वाणी संबंधी दोषों से बचाने के लिए माता-पिता व शिक्षकों को ऐसे बच्चों की सहायता करनी चाहिए तथा कुछ उपाय करने चाहिए। ये उपाय निम्न हैं:

- प्रशिक्षण: बच्चों को प्रारंभ से ही उचित एवं सही उच्चारण का प्रशिक्षण देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो बच्चों को वाणी विशेषज्ञों की सहायता से प्रशिक्षण दिलाना चाहिए।
- उपहास न करना: बच्चों द्वारा बोले गए शब्दों के लिए उनका उपहास नहीं करना चाहिए एवं सबके सामने उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। इससे उनके मन में हीन भावना विकसित होती है एवं उनके व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- वाणि दोषयुक्त बच्चों से सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनके इस दोष के लिए उन्हें हीन भावना से नहीं देखना चाहिए।
- बच्चों के मस्तिष्क से भय, संघर्ष, संकोच, घबराहट आदि का निवारण करना चाहिए।
- अस्पष्ट उच्चारण की प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।
- माता-पिता को बच्चों पर कठोर नियंत्रण नहीं करना चाहिए। इससे उनमें संवेगात्मक तनाव उत्पन्न होता है।
- माता-पिता व शिक्षकों को स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए क्योंकि बच्चे शब्दों के उच्चारण में उन्हीं का अनुकरण करते हैं।
- अपने आयु वर्ग के बच्चों के साथ उठने-बैठने व खेलने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिए तथा उन्हें आपस में वार्तालाप के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- यदि बालक में वाणी दोष जन्म से ही आरंभ हो तथा ज्यादा समय तक बना रहे तो इसके निवारण हेतु चिकित्सकीय सलाह लेनी चाहिए।

वाणी दोषों को दूर कर बालक के जीवन को स्वस्थ एवं सरल बनाया जा सकता है।

8.7 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

भाषा विकास प्रत्येक बालक में एक समान होता है। कुछ बच्चों के शब्द भण्डार विस्तृत होते हैं एवं उच्चारण में स्पष्टता होती है। इसके विपरीत कुछ बच्चों के शब्द भण्डार अपेक्षाकृत कम विस्तृत होते हैं तथा उच्चारण अस्पष्ट होता है। यह अंतर व्यक्तिगत भिन्नताओं तथा भाषा के विलम्बित या सीमित विकास के कारण होता है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व निम्न हैं:

1. **परिपक्वता:** भाषा का विकास भी क्रियात्मक विकास के समान प्रारंभिक अवस्था में स्नायुओं की परिपक्वता पर निर्भर करता है, जैसे स्वरयंत्र, मस्तिष्क के वाणी केन्द्र, गला, जीभ, होंठ, दाँत आदि का परिपक्व न होना। जब तक सभी अंग परिपक्व होकर अपना कार्य नहीं करते तब तक

बच्चे की भाषा अच्छी तरह से प्रस्फुटित नहीं हो पाती है। अंगों की दृढ़ता के साथ वाणी व भाषा भी विकसित हो जाती है।

2. **सीखना व अनुकरण:** स्नायुविक परिपक्वता तथा अंगों की दृढ़ता प्राप्ति के उपरांत भाषा विकास वातावरण पर भी निर्भर करता है। वातावरण से तात्पर्य है सीखने के अवसर व अनुकरण की प्रवृत्ति। जिन घरों में बच्चों की संख्या अधिक होती है वहाँ छोटे बच्चे बड़े बच्चों का अनुकरण कर शीघ्र बोलने लगते हैं। 9-10 महीने के पश्चात् बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, अतः माता-पिता व अन्य सदस्यों को ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के समक्ष भ्रष्ट भाषा का प्रयोग न कर अच्छे एवं उचित शब्दों का यथा संभव प्रयोग करें। साधारणतया शिक्षित व सुसंस्कृत परिवारों में बच्चे शिष्ट व सुंदर भाषा का अनुकरण करते हैं, इसलिए उनके शब्द भण्डार में अच्छे शब्दों की बाहुल्यता देखने को मिलती है।
3. **अभिप्रेरणा:** भाषा विकास में अभिप्रेरणा, प्रलोभन व प्रोत्साहन का महत्वपूर्ण स्थान है। माता-पिता द्वारा किए गए प्यार दुलार छोटे बच्चों को शब्दों के उच्चारण हेतु प्रोत्साहित करते हैं। माता-पिता का स्नेह पाकर बच्चा उनके द्वारा बोले गए शब्दों को दोहराता है। जैसे ही बच्चा थोड़ा-थोड़ा उच्चारण आरंभ करे, तब उसी शब्द से संबंधित शब्दों के बारे में उससे प्रश्न करना चाहिए। इससे बच्चे को शब्दों के सही उच्चारण हेतु प्रोत्साहन मिलता है तथा उसे शब्दों के अर्थों का भी सही ज्ञान होता है।
4. **शब्द-अर्थ साहचर्य:** शब्दार्थ का सही ज्ञान न होने के कारण शब्दों को याद रखना व बोलना बच्चे के लिए कठिन होता है। नए शब्दों को बोलने में बच्चा हिचकिचाता है। अनुबंधन प्रक्रिया के द्वारा ही बच्चा नए शब्दों को ग्रहण कर पाता है। जिन वस्तुओं व व्यक्तियों की प्रतिमा बालक के मानस पटल पर अंकित होती है, उन्हें याद रखना व उनसे संबंधित शब्दों को उच्चारित करना वह सरलता पूर्वक कर पाता है।
5. **बुद्धि:** बुद्धि व भाषा विकास का आपस में घनिष्ठ संबंध है। जिन बच्चों की बुद्धि प्रखर होती है, उनमें भाषा जल्दी विकसित होती है। मंद बुद्धि बच्चों में बोलने की क्षमता देर से विकसित होती है। बुद्धिमान बालक के भीतर वृहद शब्द भंडार, शुद्ध उच्चारण, उचित शब्द चयन व वाक्य रचना की क्षमता/कौशल पाई जाती है।
6. **पारिवारिक संबंध:** जिन बच्चों के पारिवारिक संबंध अच्छे होते हैं वे जल्दी बोलना सीख जाते हैं। बाल मनोवैज्ञानिक थॉमसन, मैकार्थी व स्पिंज ने अनाथालय के कुछ बच्चों पर अध्ययन किया जहाँ पारिवारिक संबंधों का अभाव था और यह पाया कि वे बच्चे अधिक रोते हैं एवं कम बबलाते हैं। मुख से ध्वनियों की संख्या भी कम होने से उनका भाषा विकास देर से होता है।
7. **निर्देशन:** प्रेरणा के साथ भाषा विकास के लिए उचित निर्देशन की भी आवश्यकता होती है। बच्चों के उचित भाषा विकास के लिए संरक्षकों का निर्देशन भी अत्यंत आवश्यक है। निर्देशन

द्वारा बच्चे में शुद्ध उच्चारण व शब्द भण्डार विकसित किया जा सकता है। उचित निर्देशन के अभाव में बच्चे का भाषा विकास बाधित हो जाता है।

8. **व्यक्तिगत भिन्नता:** जो बालक बहिर्मुखी, उत्साही, सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ़ होते हैं, उनमें भाषा विकास अंतर्मुखी व शांत बच्चों की अपेक्षा शीघ्रता से होता है।
9. **सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति:** जिन बच्चों के परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति उत्तम होती है उनमें भाषा विकास भी उत्तम होता है। शिक्षित माता-पिता के संपर्क में बच्चे शुद्ध उच्चारण एवं सौम्य व सुन्दर शब्द भंडार विकसित करते हैं तथा भ्रष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं। इसके विपरीत अशिक्षित माता-पिता व निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में बच्चे का भाषा विकास प्रभावित होता है, बच्चे गन्दे भ्रष्ट शब्दों का प्रयोग भी सीख जाते हैं।
10. **कई भाषा का प्रयोग:** जिन परिवारों में एक से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं, उन परिवारों में बच्चों का भाषा विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। कई भाषाओं के शब्दों को याद रखना बच्चे के लिए कठिन होता है। साथ ही व्याकरण के नियमों का पालन करना भी कठिन होता है। दो या अधिक भाषाओं के प्रयोग से बालक में घबराहट व अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है एवं बालक यह निश्चित नहीं कर पाता कि किसी भाव को व्यक्त करने के लिए उसे किन शब्दों का प्रयोग करना है।
11. **लिंग भिन्नता:** प्राय:यह देखा गया है कि लड़कियों का शब्द भण्डार, वाक्यों में शब्दों की संख्या, वाक्य प्रयोग तथा शब्दों का चयन लड़कों की अपेक्षा बेहतर तथा परिष्कृत होता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा जल्दी बोलना सीखती हैं एवं उनका भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

इन तत्वों के बारे में जानने के बाद आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 3

सही अथवा गलत बताइए।

1. अस्पष्ट उच्चारण दोष प्राय: मांसपेशियों में विकृति, संवेगात्मक तनाव तथा बहुत जल्दी-जल्दी बोलने के कारण होता है।
2. बोलते समय ध्वनि का अवरुद्ध हो जाना तुतलाने का कारण है।
3. कई भाषाओं का प्रयोग करने वाले परिवारों के बच्चों का भाषा विकास शीघ्रता से होता है।
4. बहिर्मुखी तथा आर्थिक रूप से सुदृढ़ परिवारों के बच्चों की भाषा जल्दी विकसित होती है।

8.8 सारांश

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य जीवन की शैशवावस्था में भाषा विकास के बारे में अध्ययन करना है। इस इकाई में हमने मानव जीवन में भाषा विकास के महत्व के बारे में जाना। भाषा विकास के मुख्य सिद्धांतों जैसे स्वरयंत्रों की परिपक्वता, अनुकरण तथा अनुबंधन की प्रणाली आदि के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की। हमने भाषा विकास के विभिन्न चरणों, सिद्धातों तथा महत्व के बारे में जाना। बच्चों की भाषा में पाए जाने वाले विभिन्न वाणी दोषों जैसे भ्रष्ट तथा अस्पष्ट उच्चारण, हकलाना, तुतलाना आदि के बारे में जाना तथा उन्हें दूर करने के उपायों पर विस्तृत चर्चा की। अंत में भाषा विकास पर प्रभाव डालने वाले कारकों का अध्ययन किया जैसे परिपक्वता, अनुकरण करना, बुद्धि, पारिवारिक संबंध, व्यक्तिगत भिन्नता आदि। ये सभी तत्व बच्चों के भाषा विकास पर प्रभाव डालते हैं।

8.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **स्नायुतंत्र:** तंत्रिका तंत्र (Nerve fibers)
- **अनुबंधन:** मिला हुआ, संबंधित
- **Cerebrum:** मस्तिष्क का ऊपरी और अगला भाग

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दें।

1. भाषा द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण बच्चों को सामाजिक समायोजन में कठिनाई नहीं होती है। जो व्यक्ति कई भाषाओं का ज्ञाता होता है, उसे समाज में समायोजित होने में आसानी होती है।
2. कोमास्की ने बालक के भाषा विकास "Language Acquisition Device (LAD)" के आधार पर समझाया।
3. हमारे मस्तिष्क के cerebrum भाग के दो हिस्से होते हैं जिसे क्रमशः बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर तथा दायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर कहा जाता है। बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर व्यक्ति के भाषा विकास से संबंधित है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. क्रन्दन/रूदन

2. अनुकरण
3. सामान्य, विशिष्ट

अभ्यास प्रश्न 3

सही अथवा गलत बताइए।

1. सही
2. गलत
3. गलत
4. सही

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान: बाल विकास। बारहवां संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. डॉ0 जे0एन0 लाल एवं अनीता श्रीवास्तव, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान। तृतीय संस्करण, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 वीना निगम, मातृ कला एवं बाल विकास। पंचम संस्करण।
5. S.P. Chaube, Child Psychology. Lakshmi Narain Agarwal Educational Publishers, Agra.

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शैशवास्था में भाषा विकास की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
2. भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या करें।
3. भाषा दोष के प्रकारों की विस्तृत चर्चा करें।
4. भाषा संबंधी दोषों को दूर करने के उपायों का वर्णन करें।

इकाई 9: सामाजिक विकास

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सामाजिक विकास की विशेषताएँ
9.4 सामाजिक विकास के मानदण्ड
9.5 शैशवावस्था में सामाजिक विकास
9.5.1 शैशवावस्था की कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएँ
9.6 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
9.7 सारांश
9.8 पारिभाषिक शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची सूची
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

जन्म के समय शिशु पूर्णतया निर्बल, असहाय एवं दूसरों पर आश्रित होता है। इस अवस्था में वह न तो सामाजिक होता है, न असामाजिक और न ही समाज विरोधी। उसे अपने प्रत्येक कार्य हेतु माता-पिता व आस-पास के लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। आयु वृद्धि के साथ बच्चा समाज के व्यक्तियों के संपर्क में आता है जिससे उसका सामाजिक विकास होता जाता है। हरलॉक के अनुसार कोई भी बच्चा जन्म से ही सामाजिक या असामाजिक नहीं होता है, अपने आसपास लोगों की उपस्थिति होते हुए भी वह अकेला ही होता है। वह समाज में दूसरों के संपर्क में आकर समायोजन की प्रक्रिया सीखता है। इसलिए समाजीकरण की प्रक्रिया बालक के सामाजिक विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालक को समाज में रहने योग्य बनाती है। समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक रीति-रिवाज, नियम, संस्कृति तथा गुणों को सीखता है और उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। एच0 एम0 जॉनसन के अनुसार "समाजीकरण सीखने की वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति सामाजिक नियमों को सीखता है जो उसे समाज में रहने योग्य बनाते हैं और उसमें सहयोग की भावना का विकास करते हैं"। सरल शब्दों में "समाज के अनुसार रहना, समाज द्वारा बनाए गए नियमों पर चलना तथा समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करना" समाजीकरण कहलाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया समाज द्वारा मान्य व्यवहार, प्रदत्त भूमिकाओं के निर्वहन एवं सामाजिक

अभिवृत्तियों के विकास द्वारा ही सम्भव है। प्रत्येक समुदाय अपने बच्चों से कुछ अपेक्षाएँ एवं आशाएँ रखता है। बालक के भीतर सामाजिक गुणों और व्यवहारों की उत्पत्ति ही वह सामाजिक गुण है जिससे बालक अपने जीवन के मूल्यों एवं लक्ष्यों को पहचानता है।

9.2 उद्देश्य

सामाजिक विकास के अध्ययन द्वारा बच्चों में समाजीकरण की प्रक्रिया को समझने में सहायता प्राप्त होती है, साथ ही समाज द्वारा मान्य गुणों को विकसित करने में भी सहायता मिलती है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप;

- बच्चों में सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- सामाजिक विकास की विशेषताओं के बारे में जानेंगे;
- शैशवावस्था में सामाजिक विकास के बारे में समझेंगे; तथा
- सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

सर्वप्रथम हम सामाजिक विकास की विशेषताओं के बारे में चर्चा करेंगे।

9.3 सामाजिक विकास की विशेषताएँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के मनुष्य के जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। बच्चे में सामाजिक गुणों का विकास एकाएक नहीं होता है वरन् सामाजिकता एक क्रमिक विकास है जो आयु वृद्धि के साथ अनुभवों के आधार पर होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण उसकी सामाजिकता द्वारा ही होता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में सामाजिक गुणों का विकास तीव्र गति से, तत्पश्चात् मंदगति से होता है। सामाजिक विकास का मूलभूत आधार समाजीकरण है। समाजीकरण के द्वारा बालक समाज द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहारों के अनुरूप कार्य करना सीखता है।

बच्चों में सामाजिक विकास एकाएक न होकर जीवन पर्यन्त चलने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया है। विभिन्न आयु स्तरों पर सामाजिक विकास की अपनी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। उसमें से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:

1. **आरम्भिक सामाजिक प्रक्रिया:** जन्म के समय बच्चा न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक। आरम्भिक अवस्था में शिशु की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ ही सामाजिक विकास का प्रारम्भिक चरण है। बालक अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर उनके प्रति प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित करता है।
2. **बच्चों के साथ प्रतिक्रिया:** सामाजिक विकास में बच्चों की अनुक्रिया/प्रतिक्रिया का महत्वपूर्ण योगदान है। जैसे-जैसे बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है, वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करना सीखता है एवं सहयोग व मित्रता की भावना को विकसित करने लगता है।

3. **सामूहिक प्रतिक्रिया:** 3 से 4 वर्ष की अवस्था में बालक में सामूहिकता की भावना विकसित होने लगती है। खेल के माध्यम से बालक में मित्रता, आज्ञा पालन, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा, त्याग व नेतृत्व आदि गुणों का विकास होता है।
4. **सामाजिक प्रतिक्रिया:** 4 से 5 वर्ष की अवस्था में बालक का समाज के दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्पर्क होता है। वह समाज द्वारा मान्य व्यवहारों का अनुकरण कर अमान्य व्यवहार का त्याग करता है। सामाजिक प्रतिक्रियाओं के दौरान ही बालक में कई अन्य सामाजिक विशेषताएँ दिखाई देती हैं जो उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करती हैं, जैसे झगड़ा, क्रोध, मार-पीट, सहानुभूति एवं सहिष्णुता, निषेधात्मकता, प्रतिस्पर्धा, सहयोग आदि। इन विशेषताओं के बारे में आइए विस्तृत रूप से जानें।

- **झगड़ा, क्रोध एवं मारपीट:** बच्चों में ये गुण बाल्यावस्था से ही पाया जाता है परन्तु इसका विकास सामाजिक परिस्थितियों एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। जैसे एक से डेढ़ वर्ष के बालक के हाथ से खिलौना छीनने पर वह क्रोधित होकर रोने-चिल्लाने व हाथ-पैर पटकने लगता है। पूर्व बाल्यावस्था में झगड़ने व मारपीट की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। परन्तु यदि माता-पिता उचित प्रशिक्षण दें तो बच्चों में लड़ने-झगड़ने की भावना का विकास होने से रोका जा सकता है।
- **निषेधात्मकता:** सामाजिक प्रतिक्रिया के अन्तर्गत इच्छापूर्ति में बाधा होने पर बच्चा निषेधात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। निषेधात्मक स्थिति में वह नकारात्मक संवेगों का प्रदर्शन, तर्क-वितर्क व बड़ों की अवज्ञा करने लगता है। ऐसा व्यवहार बालक अपने सम्मान की रक्षा के लिए करता है।
- **सहानुभूति एवं सहिष्णुता:** सहानुभूति एवं सहिष्णुता एक स्वस्थ एवं सकारात्मक गुण है। बालक अपने मित्रों के साथ रहकर केवल झगड़ा या मारपीट करना ही नहीं सीखता है बल्कि उसमें सहानुभूति व सहिष्णुता के गुण भी विकसित होने लगते हैं। प्रारम्भ में बालक अपने परिवार के सदस्यों के प्रति सहानुभूति व सहिष्णुता प्रदर्शित करता है परन्तु बाद में समाज के लोगों के प्रति भी वह इस गुण को विकसित करता है।
- **प्रतिस्पर्धा:** यह भी सामाजिक प्रतिक्रियाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह बालक को प्रगति की ओर अग्रसर करता है। प्रत्येक बालक दूसरे बालक से आगे निकलना चाहता है। इस कारण वह पढ़ाई में मन लगाता है एवं खेल-कूद में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेता है। बालक में जब सामाजिक गुण उत्पन्न होते हैं तभी प्रतिस्पर्धा के गुण भी विकसित होने लगते हैं।
- **सहयोग:** सहयोग भी सामाजिक समायोजन के लिए एक आवश्यक सामाजिक तत्व है। सहयोग की भावना से बड़े से बड़ा कार्य भी आसानी से किया जा सकता है तथा अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यह गुण आपसी द्वेषों को भी दूर करता है।

9.4 सामाजिक विकास के मानदण्ड

सामाजिक विकास की विशेषताओं को जानने के पश्चात् अब हम इसके मानदण्डों की चर्चा करेंगे। सामाजिक विकास के मानदण्डों या कसौटियों से तात्पर्य उन विशेषताओं एवं लक्षणों से है जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक का सामाजिक विकास किस तरह व किस दिशा में हो रहा है। कसौटी "criteria" शब्द से बना है जिसका अर्थ है; "A standard of Judging". दूसरे शब्दों में इसे मानदण्ड भी कहा जा सकता है। सामाजिक विकास को मापने के लिए कुछ मानदण्ड निर्धारित किए जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. **सामाजिक परिपक्वता:** सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य बच्चे के उस व्यवहार से है जो बच्चे की उस आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार होता है। समाज के मूल्यों, नियमों, आदर्शों, परम्पराओं तथा संस्कृति के साथ सामाजिक परिपक्वता सुदृढ़ होती जाती है। बहिर्मुखी व्यक्तित्व के बालकों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले बालकों की अपेक्षा सामाजिक परिपक्वता अधिक पाई जाती है।
2. **सामाजिक समायोजन:** सामाजिक समायोजन से तात्पर्य बालक की उस योग्यता से है जिसके द्वारा वह स्वयं को शीघ्रता तथा आसानी से अपने समूह या समाज के सदस्यों के साथ स्थापित कर अपनी पहचान बनाता है। बच्चे के सामाजिक समायोजन में संवेगों का प्रभाव भी पड़ता है। नकारात्मक संवेगों से ग्रसित बालक का सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता। वहीं धनात्मक संवेगों की अनुभूति वाले बालक का सामाजिक समायोजन अच्छा/उत्तम होता है।
3. **सामाजिक अनुरूपता:** सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार कार्य करना सामाजिक अनुरूपता कहलाता है। प्रतिमान से तात्पर्य समूह या समाज के आदर्श, रीति-रिवाज, परम्परा, मूल्य, दर्शन, संस्कृति आदि से है।
4. **सामाजिक अंतःक्रियाएँ:** सामाजिक अंतःक्रिया समाज में उपस्थित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक प्रक्रिया या विचारों का आदान प्रदान होता है। यह मुख्यतः दो प्रकार से होती है: संगठनात्मक तथा विघटनात्मक।

संगठनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया सामाजिक सम्बन्धों को मजबूती एवं बल प्रदान करता है। ये सामाजिक ढाँचे को मजबूत बनाता है। संगठनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया के अन्तर्गत दया, त्याग, मित्रता, क्षमा, सहानुभूति, सहयोग आदि निहित हैं।

विघटनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया दोषपूर्ण सामाजिक विकास की ओर संकेत करता है। इससे सामाजिक सम्बन्धों में खटास उत्पन्न होती है। ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, लोभ आदि विघटनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया के अन्तर्गत निहित हैं।

5. सहभागिता: बालक द्वारा किस सीमा तक सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी की जा रही है, इससे उसकी सामाजिक सहभागिता का पता लगाया जा सकता है। उत्तम व स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए सामाजिक सहभागिता का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

इकाई के अगले खण्ड में हम शैशवावस्था में सामाजिक विकास का अध्ययन करेंगे तथा साथ ही जीवन की अन्य अवस्थाओं में सामाजिक विकास की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। परन्तु इसके पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों पर दृष्टि डालें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सामाजिक विकास क्रमिक रूप से जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
   b. जन्म से 1 वर्ष की आयु की अवस्था में बच्चे में सामूहिकता की भावना विकसित होने लगती है।
2. सामाजिक परिपक्वता से आप क्या समझते हैं?
3. सामाजिक अंत:क्रियाएँ मुख्यत: कितने प्रकार की होती हैं?

9.5 शैशवावस्था में सामाजिक विकास

शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक, भाषात्मक व संवेगात्मक विकास की तरह ही सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं। इन प्रतिमानों का विकास एकाएक न होकर क्रमबद्ध तरीके से जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न गति से होता है। बच्चों की सामाजिक क्रियाओं के प्रति अभिवृत्तियाँ, रुचियाँ व साथियों के चुनाव के भी प्रतिमान होते हैं जिनके आधार पर बालक के सामाजिक विकास के स्तर का पता लगाया जा सकता है। जन्म के उपरान्त ही शिशु में सामाजिकता विकसित होने के कारण वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने आसपास के लोगों पर निर्भर होने लगता है। सामाजिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। प्रस्तुत खण्ड में हम मुख्य रूप से शैशवावस्था में सामाजिक विकास पर प्रकाश डालेंगे तथा जीवन की अन्य विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास

यह सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में शिशु मात्र एक जैविकीय प्राणी होता है जिसे अपनी प्रत्येक आवश्यकता हेतु दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह "सचेतनता" की अवस्था (Consciousness stage) कहलाती है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में शिशु उन व्यक्तियों के प्रति सचेतन होता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। प्रारम्भ में दो से ढाई माह के शिशु का समाज उसकी माँ होता है। वह अपनी माँ की आहट, आवाज व परछाई पहचानने लगता है

और माँ के निकट जाना चाहता है। यदि माँ उसे अपने निकट नहीं लेती है तो वह रोने लगता है। लगभग तीन माह तक की आयु में शिशु की श्रवण प्रणाली विकसित हो जाती है तथा दृष्टि पर भी नियंत्रण हो जाता है। वह अपने आसपास की वस्तुओं तथा लोगों की गतिविधियों का निरीक्षण करने लगता है। इस अवधि में वह अपने आसपास के लोगों के हाव-भाव तथा आवाज का अनुकरण करता है। पाँच से छः माह में शिशु दूसरे व्यक्तियों के प्रति भी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता है। इस अवस्था में शिशु का सामाजिक विकास अधिक स्पष्ट हो जाता है जिस कारण वह क्रोधपूर्ण व मधुर वाणी में अन्तर समझने लगता है। इस आयु में उसका सामाजिक विकास पूर्व की अपेक्षा अधिक हो जाता है। सात से आठ माह में लोगों का ध्यानाकर्षित करने के लिए शिशु विभिन्न प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित करता है। वह परिचित व्यक्तियों को देखकर मुस्कुराता है व अपरिचित व्यक्ति के समक्ष शांत व ड़रा-सहमा रहता है। आठ से नौ माह का बालक भाषा सम्बन्धी ध्वनियों का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देता है। वह वयस्कों तथा बड़े बच्चों के द्वारा किए गए व्यवहार सम्बन्धी अभिव्यक्तियों का भी अनुकरण करने लगता है। एक वर्ष का बालक स्वकेन्द्रित होता है। इस आयु में शिशु अधिक सामाजिक नहीं होता। डेढ़ वर्ष का बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलने लगता है परन्तु द्वंद की स्थिति इस समय अधिक होती है। दो वर्ष की अवधि पूर्ण होने तक बालक में द्वंद की भावना कम होकर सहयोग की भावना विकसित होने लगती है। जन्म से लेकर 2 वर्ष की अवधि तक बच्चों में सामाजिक विकास तीन अवस्थाओं में होता है जिसका वर्णन निम्न प्रकार है:

- प्रथम अवस्था में शिशु विभिन्न व्यक्तियों में अन्तर करने में असमर्थ होता है। वह अपने आसपास रहने वाले लोगों को देखता है व मुस्कुराता है। यह अवस्था कुछ सप्ताह की होती है।
- द्वितीय अवस्था में शिशु मानव चेहरों को पहचानने लगता है। इस अवस्था में वह अपनी माँ व आसपास रहने वाले लोगों को देखकर तीव्र प्रतिक्रिया करता है एवं हाथ-पैर मारना व मुस्कुराना आदि क्रियाएं प्रतिक्रिया स्वरूप करता है।
- तृतीय अवस्था तब विकसित होती है जब बच्चा चलने में सक्षम हो जाता है। वह स्वयं लोगों के समीप जाकर सामाजिक संपर्क बनाता है।

9.5.1 शैशवावस्था की कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएँ

शैशवावस्था में शिशु में कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएं देखी जा सकती हैं। दो वर्ष तक के बालक में मुख्यतः निम्न सामाजिक प्रतिक्रियाएं देखी जा सकती हैं:

1. **ध्यानाकर्षण:** ध्यानाकर्षण की प्रवृत्ति शैशवावस्था से प्रारम्भ हो जाती है। दूसरों का ध्यानाकर्षित करने के लिए शिशु रोना, चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना, जमीन पर लेटना आदि क्रियाएं करता है।

2. **अनुकरण:** अनुकरण ही बालक को सामाजिक बनाता है। एक से डेढ़ वर्ष में बालक मुखाकृतियाँ (Facial expressions), हाव-भाव (Gesture), भाषा एवं गति (Language and movement) और सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान का अनुकरण करना सीखता है।
3. **आश्रितता:** जन्म से 2 वर्ष तक की अवधि के दौरान बच्चों में आश्रितता की प्रवृत्ति होती है। वह अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों पर आश्रित होता है।
4. **शर्मीलापन:** एक वर्ष का बालक अपरिचित व्यक्तियों को देखकर शर्माने की क्रियाएँ करता है।
5. **ईर्ष्या:** शिशु में ईर्ष्या की भावना 1 वर्ष में आरम्भ हो जाती है। ईर्ष्या की उत्पत्ति माँ के दूसरे बालक को गोद में उठाने, दुलारने की स्थिति में एवं बालक के खिलौने से दूसरे बालक के खेलने की स्थिति में होती है।
6. **निषेधात्मक व्यवहार:** लगभग एक वर्ष के बालक में निषेधात्मक व्यवहार देखने को मिलता है। इस अवस्था में बालक में आज्ञा के विपरीत कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। आज्ञा का उल्लंघन करते समय वह मुस्कुराकर खुशी या आनन्द की प्राप्ति करता है।
7. **सहयोग:** एक से डेढ़ वर्ष की अवस्था में बच्चों में ईर्ष्या एवं लड़ाई-झगड़े की प्रवृत्ति पाई जाती है। किन्तु 2 वर्ष की आयु तक पहुँचने पर उनमें सहयोग की भावना विकसित होने लगती है।
8. **स्वप्रेमी:** जैसा कि आप जानते हैं कि इस अवस्था में बालक स्वकेन्द्रित व स्वप्रेमी होता है। वह अपनी माता से लेकर घर के सभी चीजों पर अपना ही अधिकार समझता है एवं अपनी क्रियाओं द्वारा दूसरों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करता है।

जैसा कि आपने अनुभव किया होगा कि समाजीकरण की प्रवृत्ति बच्चों में प्रारम्भिक अवस्था से ही विकसित हो जाती है परन्तु यदि माता-पिता बच्चे को समाज से दूर रखें तो उसका समाजीकरण संभव नहीं हो पाता। अतः माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों को बालक में सामाजिकता के विकास में सहयोग करना चाहिए।

अगले खण्ड में हम जीवन की अन्य विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास पर संक्षिप्त में चर्चा करेंगे। इन पर विस्तृत चर्चा हम आने वाली इकाईयों में करेंगे।

- **पूर्व बाल्यावस्था (2-6 वर्ष) में सामाजिक विकास**

पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास की गति काफी तीव्र होती है क्योंकि इस समय बालक पारिवारिक दायरे से बाहर निकलकर अपने आसपास, स्कूल में अपने मित्रों व शिक्षकों के सम्पर्क में आकर उनसे समाज के नियमों व मान्यताओं को सीखता है एवं अपनी मनोवृत्तियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाता है। इस अवस्था में बालक में निम्न प्रमुख सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं:

1. **अनुकरण:** अनुकरण ही बालक को सामाजिक प्राणी बनाता है। 3-4 वर्ष का बालक मुखाकृतियों, हाव-भाव, भाषा एवं गतिविधियों का अनुकरण करना सीख जाता है।
2. **खेल:** पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों के भीतर खेल की भावना तीव्रता से विकसित होती है। खेलों के द्वारा ही बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं सामूहिकता की भावना का विकास होता है।
3. **निषेधात्मकता:** आज्ञा के विपरीत कार्य करना निषेधात्मकता कहलाता है। बच्चों में इस प्रवृत्ति का विकास पूर्व बाल्यावस्था में चरम सीमा पर होता है। निषेधात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति क्रियाओं में हस्तक्षेप व इच्छापूर्ति न होने पर होती है।
4. **आक्रामकता:** पूर्व बाल्यावस्था में आक्रामकता का गुण कुछ मात्रा में अवश्य होता है। आयु वृद्धि के साथ 5 वर्ष की आयु में यह अपनी चरम सीमा पर होता है। इसके बाद इसकी तीव्रता एवं आवृत्ति दोनों ही कम हो जाती हैं। बालक के व्यवहार में आक्रामकता माता-पिता के असमान व्यवहार, ध्यानार्कषण, प्रभुत्व की भावना एवं क्रिया में व्यवधान के कारण होता है।
5. **झगड़ा तथा मारपीट:** इस आयु में बालक अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सामूहिक खेलों में अन्य बालकों से झगड़ा व मारपीट करते हैं।
6. **सहयोग व सहानुभूति:** जहाँ एक ओर बालक झगड़ा व मारपीट करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनमें सहयोग व सहानुभूति की भावना भी विकसित होने लगती है। बालक में न केवल परिवार बल्कि समूह व साथियों के शारीरिक व मानसिक कष्टों में सहयोग व सहानुभूति की भावना देखने को मिलती है।
7. **चिढ़ाना व तंग करना:** यह एक असमाजिक व निषेधात्मक व्यवहार है। यह मौखिक आक्रामक व्यवहार है जिससे बालक मानसिक प्रहार कर दूसरे बालक को क्रोधित कर एवं रुलाकर आनन्दित होता है।
8. **ईर्ष्या:** यह भी निषेधात्मक व्यवहार है जो 3-6 वर्ष की अवस्था में विकसित होता है। ईर्ष्या मुख्यत: प्रतियोगिता व प्रतिस्पर्धा के कारण विकसित होती है।
9. **प्रतियोगिता:** यह एक स्वस्थ सामाजिक विकास है जो 3 वर्ष की अवस्था से देखा जा सकता है। 4 वर्ष का बालक उत्तमता एवं श्रेष्ठता के भाव को अच्छी तरह समझता है। इसी कारण वह दूसरों से श्रेष्ठ व अच्छा बनने का प्रयास करता है। प्रतियोगिता की भावना का विकास ईर्ष्या की भावना से होता है।
10. **मित्रता:** लगभग 5 वर्ष की आयु में मित्रता का भाव स्थाई हो जाता है। बालक अपने मित्रों का चुनाव अपने पारिवारिक स्तर, समान आयु, पास-पड़ोस, लिंग आदि के आधार पर करता है।

- **उत्तर बाल्यावस्था (6-12 वर्ष) में सामाजिक विकास**

उत्तर बाल्यावस्था तक बच्चों में क्रियात्मक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व भाषा सम्बन्धी विकास होने के कारण वह अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति बेहतर ढंग से करने लगते हैं। इस अवधि को टोली अवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में बालक अपनी आयु, विचार व एक जैसी क्रिया कलापों के बच्चों के समूह में रहना पसंद करते हैं। इस अवस्था में विकसित होने वाली प्रमुख सामाजिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **सामुदायिकता:** इस अवस्था में समूह के बीच रहने व सामाजिक समायोजन स्थापित होने के कारण बालक में सामुदायिक भावना विकसित होने लगती है। बालक के स्कूल जाने की वजह से उसका सामाजिक दायरा बढ़ जाता है।
2. **समूह भक्ति:** सामाजिक दायरा व मित्रों के साथ समायोजन स्थापित होने के कारण बालक धीरे-धीरे समूह प्रेमी बन जाता है। वह अपनी योजनाओं में अपने मित्रों को सम्मिलित करता है क्योंकि परिवार के बजाय वह मित्रों के विचारों को अधिक महत्त्व देता है।
3. **मित्रता:** इस अवस्था में बालक में मित्रता एवं सहयोग की भावना अधिक होती है तथा द्वेष कम होता है।
4. **यौन विरोध:** इस अवस्था में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण कम होता है एवं बच्चे समान लिंग के साथियों के साथ खेलना पसंद करते हैं। उन्हें विपरीत लिंग के बच्चों का हस्तक्षेप पसंद नहीं होता है।
5. **नेतृत्व:** पूर्व बाल्यावस्था में बालक आक्रामक व स्वप्रेमी होने के कारण दूसरों पर अपना प्रभुत्व नहीं दिखा पाता परन्तु उत्तर बाल्यावस्था में बहिर्मुखी प्रतिभा के बालक अपनी बुद्धि व आत्म संयम के गुणों के कारण दूसरों पर अपना नेतृत्व स्थापित करने में सफल हो जाते हैं।
6. **सहयोग:** खेलों के माध्यम से बच्चों में सहयोग तथा सुरक्षा की भावना विकसित होती है।
7. **सहानुभूति:** सामूहिकता के कारण बालक में दया, प्रेम, त्याग व सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है जो न केवल परिवार अपितु मित्रों के प्रति भी अभिव्यक्त होता है।
8. **प्रतियोगिता एवं स्पर्धा:** इस अवस्था में बालक अपने लक्ष्यों के प्रति सजग होते हैं। इसी कारण वे प्रतियोगिता कर अपने साथियों से आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं।
9. **खेल की भावना:** सामूहिक खेलों में प्रवृत्ति बढ़ने के कारण लड़के घर के बाहर व लड़कियाँ घर के अन्दर के खेलों में रुचि लेने लगती हैं।

- **किशोरावस्था में सामाजिक विकास**

किशोरावस्था में सामाजिक विकास काफी तीव्र गति से होता है। इसी कारण इसे "सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था" भी कहा जाता है। किशोर अपने परिवार, विद्यालय व मित्रों से सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। किशोरावस्था के प्रारम्भ में सामाजिक विकास मंद गति से होकर बाद के वर्षों में तीव्र गति से पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में बालक साधारणतया वयस्कों जैसा

सामाजिक व्यवहार करने लगता है। किशोर परिवार की अपेक्षा अपने साथियों के साथ समय बिताने में अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी सोच, रुचियों, अभिवृत्तियों, मूल्यों तथा आदर्शों पर माता-पिता का कम तथा साथियों का प्रभाव अधिक होता है। किशोरों में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण होता है। किशोरावस्था की प्रमुख सामाजिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. **समूह का सदस्य होना:** किशोरावस्था में बालक-बालिका विभिन्न समूह के सदस्य बनते हैं एवं परिस्थितियों के अनुकूल समूह के बीच व्यवहार करना सीखते हैं। व्यवहार परिवर्तन का मुख्य कारण यौन परिपक्वता है। वे संगठित समूह बनाकर पूरी निष्ठा व लगन से सामूहिक क्रियाओं में भाग लेते हैं।
2. **सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना:** इस आयु में किशोर सामाजिक व सामूहिक क्रियाओं में रुचि दिखाते हैं एवं स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं। इन सामूहिक क्रियाओं से किशोरों में मैत्री सम्बन्धों का विकास होता है।
3. **सामाजिक रुचियों का विकास:** इस अवस्था में किशोर सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने लगते हैं। सामाजिक संगठनों के सदस्य बनकर वे संगठन के कार्यों को रुचिपूर्वक करते हैं।
4. **सामाजिक चेतना का विकास:** इस आयु में यह ज्ञात होने लगता है कि समाज में उनका अस्तित्व, वर्ग, समानता, भिन्नता, अपेक्षा, नियम व कानून क्या हैं जिससे किशोरों में सामाजिक चेतना जागृत होती है।
5. **पारिवारिक सम्बन्ध:** किशोरावस्था में गलत व सही में पहचान होने के कारण माता-पिता का नियंत्रण कम हो जाता है व उनसे सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं।
6. **स्पर्धा एवं प्रतियोगिता:** जीवन में उत्तम स्थान प्राप्ति की इच्छा किशोर बालक-बालिकाओं में स्पर्धा एवं प्रतियोगिता की भावना जागृत करती है।
7. **नेतृत्व की भावना:** परिपक्वता किशोरों में नेतृत्व की भावना को विकसित करती है। जो किशोर प्रतिभावान, बहिर्मुखी, सम्मानित और शारीरिक रूप से बलशाली होते हैं, वे समाज में आसानी से नेतृत्व प्राप्त कर लेते हैं।
8. **मित्रता:** समान रुचि तथा सोच-विचार वाले किशोरों की मित्रता प्रगाढ़ होती है। मित्रता समान लिंग तथा विपरीत लिंग दोनों ही में पाई जाती है।
9. **सामाजिक परिपक्वता:** किशोरावस्था में बालक-बालिकाओं में शारीरिक के साथ सामाजिक परिपक्वता भी पूर्ण रूप से हो जाती है। सामाजिक बोध विकसित होने के कारण किशोर समाज व परिवार की अपेक्षाएं, सही-गलत में भेद करना पूर्णता सीख लेता है। इसी कारण इस अवस्था को 'विकसित सामाजिकता की अवस्था' भी कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. शैशवावस्था सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था है जिसे ..... की अवस्था भी कहा जाता है।
2. दो वर्ष की अवधि पूर्ण होने तक बालक में द्वंद की भावना कम होकर ..... की भावना विकसित होने लगती है।
3. आक्रामकता का गुण पूर्व बाल्यावस्था में प्रारम्भ होता है तथा आयु वृद्धि के साथ ..... की आयु में अपनी चरम सीमा पर होता है।
4. उत्तर बाल्यावस्था को ..... अवस्था भी कहा जाता है।
5. किशोर सामाजिक व सामूहिक क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं जिससे उनमें ..... का विकास होता है।

आइए, अब सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करें।

9.6 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बालक के सामाजिक विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. **पारिवारिक वातावरण:** यह बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। छोटे परिवार में बालक की देखरेख अच्छी होती है एवं माता-पिता का भरपूर प्यार मिलता है। जबकि बड़े परिवारों में बालक को अनुकरण के ज्यादा अवसर तो प्राप्त होते हैं परन्तु माता-पिता का नियंत्रण अधिक रहता है। कभी-कभी यह नियंत्रण न होने के कारण बच्चे दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं और माता-पिता व बच्चों का आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाता है जिससे बालक का सामाजिक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। कठोर नियंत्रण, तिरस्कार बच्चे के आत्मविश्वास को कम कर उसे अंतर्मुखी या क्रान्तिकारी बना देते हैं। परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति भी बच्चे के सामाजिक विकास को प्रभावित करती है। आर्थिक तंगी व निम्न सामाजिक स्थिति बच्चों में आत्मविश्वास में कमी व हीन भावना उत्पन्न करती है और उनके सामाजिक समायोजन में बाधा उत्पन्न करती है। माता-पिता का आचरण, आपसी सम्बन्ध, आदतें भी बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करती हैं।
2. **स्वास्थ्य एवं शारीरिक बनावट:** जिन बच्चों का स्वास्थ्य उत्तम तथा शारीरिक गठन सुन्दर एवं अच्छा होता है, उनका सामाजिक विकास अस्वस्थ, कुरूप व कुण्ठित विकास वाले बच्चों की तुलना में अच्छा होता है। स्वस्थ बालक प्रतियोगिता, नेतृत्व, सामूहिकता, सहयोग जैसे सामाजिक गुणों से परिपूर्ण होता है। इसके विपरीत भद्दे, कुरूप तथा शारीरिक दोषों वाले बच्चों में हीनता की भावना उन्हें समाज से दूर कर अंतर्मुखी बना देती है।
3. **विद्यालय का वातावरण:** विद्यालय बालक के सामाजिक विकास में विविध रूपों से सहायक होता है। विद्यालय में बालक समान उम्र के साथियों के साथ उठना-बैठना, विचारों का आदान-

प्रदान कर मैत्रीपूर्ण व्यवहार, सामूहिकता तथा दूसरों का सम्मान करना सीखता है जिससे उसका सामाजिक वातावरण विकसित होता है। विद्यालय में वह शिक्षकों के व्यवहार का अनुकरण करना भी सीखता है।

4. **मनोरंजन के अवसर:** जिन बच्चों को मनोरंजन जैसे खेलना, सैर-सपाटा, सर्कस, घूमना, नाटक व शिक्षाप्रद सिनेमा देखने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है, वे प्रसन्नचित्त व स्वस्थ रहते हैं एवं उनका सामाजिक समायोजन भी अच्छा होता है। इसके विपरीत मनोरंजन के अभाव में बालक झगड़ा, मारपीट, लड़ाई आदि में अपना अधिकांश समय बिताते हैं व कभी-कभी वे समाज विरोधी कार्य भी करने लगते हैं। स्वस्थ मनोरंजन के अभाव में बालक बाल अपराधी बन जाते हैं।
5. **साथी समूह (Peer group):** बालक के सामाजिक विकास को उसके समूह के साथी भी प्रभावित करते हैं। बड़े समूह में बालक विभिन्न सामाजिक मूल्यों व प्रतिमानों को तीव्रता से सीखता है। यदि साथी अच्छे, सुसंस्कृत व उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले होते हैं तो बालक में स्वस्थ सामाजिक गुणों का विकास होता है। समूह के साथी अच्छे न होने की स्थिति में बालक विभिन्न दुर्गुणों को सीखता है।
6. **बालक का व्यक्तित्व:** प्रत्येक बालक का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। कुछ बच्चे अंतर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं जबकि कुछ बहिर्मुखी व्यक्तित्व के। अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले बच्चों का दायरा सीमित होता है जबकि बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले बच्चों में आत्मविश्वास, नेतृत्व की भावना, विस्तृत सामाजिक दायरा, प्रसन्नचित व मिलनसार होना आदि गुण दिखाई देते हैं जिस कारण उनकी लोकप्रियता अधिक होती है।
7. **संवेगात्मक व्यवहार:** संवेगात्मक स्थिरता वाले बालक दूसरे लोगों के साथ आसानी से सामाजिक संपर्क बना लेते हैं। वहीं दूसरी तरफ नकारात्मक संवेग जैसे गुस्सैल, चिड़चिड़े, जिद्दी, हठी प्रवृत्ति वाले बालक को समाज में पसंद नहीं किया जाता जिस कारण उनका सामाजिक विकास ठीक से नहीं हो पाता है।
8. **बुद्धि:** तीव्र बुद्धि वाले बालक लोगों का ध्यान आकर्षित करने में सफल होते हैं। उनका सामाजिक समायोजन उत्तम होता है। इसके विपरीत मंद बुद्धि वाले बच्चों का सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता है।
9. **परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति:** जिस परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊँचा होता है वहाँ बच्चों का सामाजिक विकास उत्तम होता है। इसी कारण वे आसानी से दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं व आत्मविश्वास से परिपूर्ण होते हैं।
10. **लिंग भेद:** लिंग-भेद भी बालकों के सामाजिक व्यवहार में भिन्नता उत्पन्न करता है। बालिकाओं में सहनशक्ति, सहिष्णुता, सहानुभूति और त्याग की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसके विपरीत लड़के कम सहनशील तथा कठोर प्रवत्ति के होते हैं।

इस भाग के साथ ही शैशवावस्था में सामाजिक विकास के विषय पर चर्चा को हम विराम देते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कीजिए।

9.7 सारांश

जैसा कि हमें ज्ञात है कि जन्म के समय शिशु पूर्णतया निर्बल, असहाय एवं दूसरों पर आश्रित होता है। उसे अपने प्रत्येक कार्य हेतु माता-पिता व आस-पास के लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। आयु वृद्धि के साथ वह समाज के व्यक्तियों के संपर्क में आता है जिससे उसका सामाजिक विकास होता है। इस इकाई में हमने शिशु के सामाजिक विकास के विभिन्न आयामों के बारे में जाना। हमने सामाजिक विकास की विभिन्न विशेषताओं पर चर्चा की जैसे सामूहिक एवं सामाजिक प्रतिक्रिया, सहानुभूति एवं सहिष्णुता, सहयोग, प्रतिस्पर्धा, निषेधात्मक व्यवहार, ईर्ष्या आदि। हमने सामाजिक विकास के विभिन्न मानदण्डों पर भी चर्चा की। ये मानदण्ड वह विशेषताएं हैं जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक का सामाजिक विकास किस तरह व किस दिशा में हो रहा है। सामाजिक परिपक्वता, सामाजिक समायोजन, सामाजिक अनुरूपता, सामाजिक सहभागिता तथा सामाजिक अंत:क्रियाएं सामाजिक विकास के विभिन्न मानदण्ड हैं। हमने शिशु के सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जाना। शैशवावस्था में शिशु में कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएं देखी जा सकती हैं जिनके आधार पर शिशु के सामाजिक विकास के बारे में जाना जा सकता है। इसके साथ हमने जीवन की अन्य अवस्थाओं में सामाजिक विकास के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी ली। सामाजिक विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं, जैसे पारिवारिक तथा विद्यालय का वातावरण, स्वास्थ्य, साथी समूह, संवेग, बुद्धि, परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति एवं लिंग भेद।

9.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **सामाजिक परिपक्वता:** आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार।
- **सामाजिक अनुरूपता:** सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार कार्य करना।
- **सामाजिक अंत:क्रिया:** समाज में उपस्थित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक प्रक्रिया या विचारों का आदान प्रदान। जैसे, दया, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति, शत्रुता, ईर्ष्या, लोभ आदि।
- **अनुकरण:** नकल करना, दोहराना।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सही
   b. गलत
2. सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य बच्चे के उस व्यवहार से है जो बच्चे की उस आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार होता है।
3. सामाजिक अंत:क्रियाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं; संगठनात्मक तथा विघटनात्मक।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. सचेतनता
2. सहयोग
3. पाँच वर्ष
4. टोली अवस्था
5. मैत्री सम्बन्धों

अभ्यास प्रश्न 3

1. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक: पारिवारिक वातावरण, स्वास्थ्य एवं शारीरिक बनावट, विद्यालय का वातावरण, मनोरंजन के अवसर, साथी समूह, बालक का व्यक्तित्व, संवेगात्मक व्यवहार, बुद्धि, परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा लिंग भेद।

9.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पंचशील प्रकाशन ,जयपुर।
3. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान: बाल विकास, बारहवां संस्करण। विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. डॉ0 जे0 एन0 लाल एवं अनिता श्रीवास्तव, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. S.P. Chaube, Child Psychology. Lakshmi Narain Agarwal educational publishers, Agra.

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक विकास की विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या करें।
2. सामाजिक विकास के प्रमुख मानदण्डों/कसौटियों का वर्णन करें।
3. सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
4. बालक के जीवन में सामाजिक विकास के महत्व की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
5. शैशवावस्था में सामाजिक विकास के प्रमुख चरणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 10: संवेगात्मक विकास

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 संवेग: परिभाषा एवं विशेषताएँ
10.4 संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ
10.5 संवेगों का महत्व
10.6 संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की भूमिका
10.7 बालकों के संवेगों की विशेषताएँ
10.8 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
10.9 संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक
10.10 संवेगात्मक स्थिरता
10.11 संवेगात्मक संतुलन
    10.11.1 संवेगात्मक संतुलन प्राप्ति के तरीके
10.12 सारांश
10.13 पारिभाषिक शब्दावली
10.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

वे प्रतिक्रियाएं जिनके माध्यम से मानव अपने आंतरिक उद्दीपनों को व्यक्त करते हैं, तदोपरांत हल्केपन का अनुभव करते हैं, संवेग कहलाते हैं। संवेग मानव जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व बलवान पक्ष होता है। हम प्रतिदिन अपने व्यवहार के माध्यम से संवेगों का प्रदर्शन करते हैं। ये संवेग समय एवं परिस्थिति के अनुरूप बदलते रहते हैं। प्रौढ़ अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने में सक्षम होते हैं परन्तु बच्चे संवेगों पर नियंत्रण रखने में असक्षम होते हैं। वे हर समय किसी न किसी संवेग का अनुभव करते हैं। बालकों के भीतर अनेक प्रकार के व्यवहारों को उत्पन्न करने में उनके संवेग ही प्रेरक वृत्तियों का कार्य करते हैं। संवेग बालकों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए नितांत आवश्यक होते हैं एवं बालक के सामाजिक समायोजन में सहायता प्रदान करते हैं। संवेगात्मक विकास संज्ञानात्मक, शारीरिक व संवेगों की सम्मिलित प्रक्रिया द्वारा ही संभव है। इसके द्वारा

बालकों के भीतर अनुभव, अभिव्यक्ति व सोचने विचारने की क्षमता व गुण विकसित होते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम बच्चों के संवेगात्मक विकास के बारे में जानेंगे तथा मूल रूप से शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप:

- बच्चों में संवेगात्मक विकास के महत्व के बारे में जानेंगे;
- संवेगों की विशेषताओं की जानकारी ले पाएंगे;
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा कर पाएंगे; तथा
- संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानेंगे।

10.3 संवेग: परिभाषा एवं विशेषताएँ

संवेग अंग्रेजी शब्द "इमोशन" का पर्यायवाची है जिसकी उत्पत्ति मूल रूप से लैटिन शब्द "Emover" से हुई है जिसका शब्दिक अर्थ उत्तेजित करना, हिला देना, भड़कना या बेचैन करने से सम्बन्धित है। संवेग की स्थिति में व्यक्ति असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करता है। इस उद्वेलित/उत्तेजित अवस्था को ही संवेग कहते हैं। इस उत्तेजना का प्रदर्शन व्यक्ति अपने शारीरिक व मानसिक व्यवहार द्वारा दर्शाता है। इस अवस्था में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों दशाओं में व्यापक परिवर्तन हो जाता है जैसे बेचैनी का अनुभव, हृदय की धड़कन का बढ़ना, रक्तचाप में परिवर्तन, श्वसन क्रिया में तेजी होना आदि।

पी0 टी0 यंग के अनुसार "संवेग व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित तीव्र मनोवैज्ञानिक क्रियाएं हैं जिनकी उत्पत्ति कई मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है तथा इसमें व्यवहार, चेतना, अनुभूति, अनुभव और आंतरिक अवयवों की क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं"।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार "संवेग शरीर की वह जटिल अवस्था है जिसमें साँस लेने, नाड़ी, ग्रंथियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि की अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है, तद्नुकूल माँसपेशियाँ निर्धारित व्यवहार करने लगती हैं"।

इंगलिश एवं इंगलिश के अनुसार "संवेग जटिल भावना की अवस्था है। इसमें गत्यात्मक तथा ग्रंथीय क्रियाएं होती हैं। यह एक जटिल व्यवहार है जिसमें आन्तरिक अवयवों की क्रियाएँ महत्वपूर्ण हैं"।

संवेगों की परिभाषाओं को जानने के बाद इनकी विशेषताओं पर आइए दृष्टि डालें।

संवेगों की विशेषताएँ:

- संवेग प्रत्येक प्राणी में उपस्थित होते हैं जो मानव व्यवहारों के रूप में परिलक्षित होते हैं।
- संवेग व्यापक होते हैं।
- संवेग स्थायी तथा अस्थायी दोनों प्रकार के होते हैं।
- संवेग किसी व्यक्ति,वस्तु या स्थिति के कारण विद्यमान होते हैं।
- संवेग व्यक्तिगत होते हैं अर्थात दो व्यक्तियों के संवेगों में समानता नहीं होती है।
- संवेग की स्थिति में व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है।
- संवेगों की उत्पत्ति मन से होती है तथा प्रकटीकरण शारीरिक क्रियाओं द्वारा होता है, अर्थात संवेगों का सम्बन्ध मानसिक तथा शारीरिक दोनों स्थितियों से होता है।

10.4 संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ

संवेगों का मानव जीवन में बहुत महत्व है। संवेगात्मक विकास बालक के संपूर्ण विकास को प्रभावित करता है। संवेगात्मक विकास की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

- संवेगात्मक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है जो विभिन्न अवस्थाओं में क्रमिक रूप से चलता रहता है। जैसे जन्म के समय शिशु में कोई विशिष्ट संवेग नहीं होते हैं परंतु धीरे-धीरे वातावारण से परिचित होते पर संवेग विकसित होने लगते हैं।
- संवेगात्मक विकास साधारण से जटिल ओर बढ़ता है। शैशवावस्था में बालक का संवेगात्मक विकास सरल होता है। आयु में वृद्धि के साथ बालक विभिन्न अनुभवों को सीखता है तथा उसके संवेगों की प्रकृति जटिल होने लगती है।
- संवेगात्मक विकास अनुभवों के साथ परिपक्व होता जाता है। यह परिपक्वता शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक भी होती है। बच्चों के संवेग क्षण-क्षण में परिवर्तित होते हैं जबकि व्यस्क परिस्थितियों के अनुसार उनका मूल्यांकन कर संवेगों को प्रदर्शित करते हैं।
- संवेगों की उत्पत्ति मानव व्यवहारों द्वारा होती है। मानव की क्रियाओं द्वारा विभिन्न भाव प्रदर्शित होते हैं जिनसे संवेगों की उत्पत्ति होती है।

10.5 संवेगों का महत्व

संवेग एक जटिल अवस्था है जिसमें व्यक्ति किसी भी परिस्थिति को अधिक बढ़ा हुआ महसूस करता है जिसके फलस्वरूप उसमें शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं जिससे व्यक्ति का व्यवहार पहुँचने या हटाने (Approach or withdrawl) की ओर संगठित होता है। बच्चों में संवेगात्मक विकास उनके सामाजिक विकास में स्वयं को आसपास के वातावरण में स्थापित करने के प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संवेगात्मक विकास जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं से ही प्रारंभ हो जाता है जो मनुष्य के जीवन में परिपक्वता प्राप्ति के साथ नियंत्रित होता है। संवेग व्यक्ति

को आकस्मिक परिस्थितियों से निपटने का साहस, धैर्य एवं बल प्रदान करते हैं जिससे वह विषम परिस्थिति में भी अपनी सुरक्षा कर पाता है। संवेग की स्थिति में थायरॉइड ग्रंथि से थायरॉक्सिन हारमोन का अत्यधिक मात्रा में स्त्राव होता है जिससे व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

बच्चों के संपूर्ण विकास में संवेग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवेग व्यक्ति के विकास एवं सामाजिक समायोजन में सहयोग प्रदान करते हैं। निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा हम संवेगों का बालक के जीवन में महत्व को भली-भाँति जान सकते हैं:

- **हर्ष एवं आनंद की अनुभूति:** संवेगों द्वारा बालकों को हर्ष, खुशी, आनंद, उल्लास व उत्साह की अनुभूति होती है, फलतः उनमें सकारात्मक गुणों का विकास होता है एवं वह बहुमुखी प्रतिभा, सुंदर व्यक्तित्व, सजीले व आकर्षक व्यक्ति बनते हैं। सुख व आनंद की स्थिति में शरीर की मासपेशियाँ तनाव मुक्त हो जाती हैं तथा व्यक्ति आनंद की अनुभूति करता है।
- **सामाजिक समायोजन में सहायक:** संवेग बालकों को सामाजिक समायोजन स्थापित करने में भी अमूल्य भूमिका निभाते हैं। आनंद देने वाले संवेगों को अपनाकर तथा अच्छी आदतों का निर्माण कर बालक समाज के साथ अच्छी तरह समायोजित होता है। इसके विपरीत नकारात्मक संवेगों की अधिकता सामाजिक समायोजन में बाधक होती है।
- **आदतों के निर्माण में सहायक:** संवेग अच्छी आदतों के निर्माण में भी सहायक होते हैं। सकारात्मक संवेगों की अभिव्यक्ति से सुख की अनुभूति तो होती ही है, साथ ही माता-पिता, अभिभावकों व शिक्षकों से प्रशंसा या प्रोत्साहन पाकर संवेगात्मक अनुक्रियाओं की पुनरावृत्ति बालक की आदत के रूप में बदल जाती है।
- **स्वर अंगों की परिपक्वता:** संवेगों की प्रतिक्रिया के कारण गला, स्वरयंत्र, जीभ, होंठ व जबड़ों की मांसपेशियों में परिपक्वता आती है जो भाषा विकास में सहायक होती है। बालक अपने विचारों, भावों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं, साथ ही चेहरे के हावभाव तथा शरीर की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से भी दर्शाते हैं।
- **आत्म मूल्यांकन तथा सामाजिक मूल्यांकन में सहायक:** बच्चे संवेगों द्वारा स्वयं का मूल्यांकन करते हैं। संवेगों द्वारा वे दूसरे व्यक्तियों का सामाजिक मूल्यांकन भी करते हैं। सुखदायक संवेगों का प्रदर्शन करने वाले बच्चे समाज द्वारा पसंद किए जाते हैं तथा लोकप्रिय होते हैं। ऐसे बच्चे नेतृत्व की क्षमता भी रखते हैं।
- **भाषा का विकास:** संवेग व्यक्ति की शारीरिक क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। सकारात्मक संवेगों के कारण हृदय की धड़कनें व नाड़ी गति बढ़ जाती है, मांसपेशियों की थकान कम हो जाती है तथा यकृत से ग्लाइकोजन अधिक मात्रा में निकलने लगता है। थायरॉइड एवं एड्रीनल ग्रंथियों से हारमोन्स का अधिक स्त्राव होने के कारण बालक क्रियाशील हो जाता है। क्रियाशीलता में वृद्धि के कारण स्वरयन्त्र में परिपक्वता आती है और भाषा विकास में सहायता मिलती है। परंतु यदि

इस क्रियाशीलता का उपयोग सृजनात्मक कार्यों में न हो तो बालक में निराशा, चिड़चिड़ापन व व्यवहारिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा उन बालकों में भाषा विकास भी बाधित होता है।

- **मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव:** संवेग मानसिक क्रियाओं को बाधिक करते हैं। नकारात्मक संवेगों (भय, क्रोध, ईर्ष्या) से बालक उद्वेलित हो जाता है। फलतः उसके सीखने, समझने, स्मरण, तर्क शक्ति आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस कारण बालक अपनी क्षमता तथा बुद्धिलब्धि को कम अभिव्यक्त कर पाता है एवं अपने साथियों से पीछे रह जाता है।

10.6 संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की भूमिका

संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की अहम् भूमिका है। आयु वृद्धि के साथ मस्तिष्क एवं अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों का विकास होता है। इसमें एड्रीनल ग्रंथि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जन्म के समय एड्रीनल ग्रंथि का आकार काफी छोटा होता है परंतु आयु वृद्धि के साथ इसका विकास हो जाता है। संवेगात्मक विकास परिपक्वता पर ही नहीं अपितु वातावरण एवं शिक्षण पर भी निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि सीखने की विधियों, अनुबन्धन (conditioning) एवं अनुकरण (imitation) द्वारा उत्पन्न संवेगों के बिना परिपक्वता संभव नहीं है।

जॉन्स ने 1928 में संवेगात्मक विकास में परिपक्वता के महत्व पर एक अध्ययन किया। उन्होंने विभिन्न आयु वर्ग के बालकों को एक कमरे में रखा तथा वहाँ साँप छोड़कर उनमें भय उत्पन्न किया। उन्होंने पाया कि 2 वर्ष से कम उम्र के बालक साँप को देखकर बिल्कुल भयभीत नहीं हुए। 3 वर्ष के बालक थोड़ा सावधान हो गए एवं 4 वर्ष के बालक ने साँप से डर कर उससे बचने का प्रयास किया। इसका अर्थ यह है कि परिपक्वता से संवेग भी प्रभावित होता है। संवेगों के विकास में परिपक्वता की तुलना में अधिगम अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिगम को नियंत्रित कर विभिन्न संवेगों की अभिव्यक्ति को सिखाया जा सकता है।

अगले भाग में बढ़ने से पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 1

सही अथवा गलत बताइए।

1. संवेग व्यक्तिगत होते हैं तथा दो व्यक्तियों के संवेगों में समानता नहीं होती है।
2. संवेगात्मक विकास आयु वृद्धि के साथ जटिल से साधारण की ओर बढ़ता है।
3. संवेगों की प्रतिक्रिया के कारण स्वर सम्बन्धी अंगों में परिपक्वता आती है जो भाषा विकास में सहायक होती है।
4. संवेग मानसिक क्रियाओं को बाधिक करते हैं।

10.7 बालकों के संवेगों की विशेषताएँ

यद्यपि बालकों के अधिगम, परिपक्वता व अनुभव के कारण उनके संवेगों में प्रौढ़ों के संवेगों की तुलना में काफी अंतर होता है। बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति बिना नियंत्रण के आसानी से कर देते हैं। बालकों के संवेगों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **बालकों के संवेग तीव्र होते हैं:** बालकों के संवेगों में उग्रता एवं तीव्रता होती है। बालक मानसिक अपरिपक्वता व अनुभव की कमी के कारण संवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाते तथा उनका अनुचित प्रदर्शन करते हैं। धीरे-धीरे आयु वृद्धि के साथ मानसिक परिपक्वता आती है तथा अनुभव क्षमता के आधार पर बालक को संवेगों की उचित एवं स्वीकार्य अभिव्यक्ति का ज्ञान होता जाता है।
- **संवेग क्षणिक होते हैं:** बालकों के संवेग तीव्र परन्तु क्षणिक होते हैं। उनके संवेगों के क्षणिक होने का प्रमुख कारण कम अनुभव, कम विकसित बौद्धिक योग्यता, मानसिक अपरिपक्वता, ध्यान विस्तार एवं स्मृति विस्तार में कमी होता है जिस कारण बालकों के संवेग पल-पल में परिवर्तित होते रहते हैं।
- **संवेगों की पुनरावृत्ति:** बालक अपने संवेगों को थोड़ी-थोड़ी देर के अंतराल में बार-बार प्रदर्शित करते हैं। बच्चे लगभग सभी संवेगों जैसे क्रोध, भय, दुख, घृणा, प्रेम, प्रसन्नता आदि की पुनरावृत्ति दिन भर में कई बार करते हैं। ऐसा वह मानसिक अपरिपक्वता तथा वातावरण से समायोजन न कर पाने के कारण करते हैं।
- **वैयक्तिक भिन्नता:** बालकों के संवेगात्मक व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता झलकती है। जैसे आपने अनुभव किया होगा कि सभी नवजात शिशुओं के संवेगात्मक व्यवहार में समानता रहती है परन्तु आयु वृद्धि के साथ मानसिक परिपक्वता के कारण बालकों के संवेगात्मक व्यवहार में भिन्नता दिखाई देती है। जैसे नवजात शिशु तेज ध्वनि सुनकर रोने लगते हैं परंतु थोड़ा बड़ा होने पर तेज ध्वनि सुनकर बच्चा विभिन्न क्रियाओं के रूप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, जैसे रोना, डरकर चुप हो जाना, सहम जाना आदि।
- **बालकों के संवेगों की शक्ति परिवर्तित होती रहती है:** प्रारंभिक अवस्था में संवेगों की शक्ति में तीव्रता देखने को मिलती है। परन्तु आयु के बढ़ने के साथ ही संवेगों के प्रदर्शन की शक्ति परिवर्तित हो जाती है। कुछ संवेग शांत रूप में प्रदर्शित होते हैं जबकि कुछ तीव्र रूप में। संवेगों की शक्ति में परिवर्तन का मुख्य कारण बालक का बौद्धिक विकास एवं मूल्यों का ज्ञान है।
- **बालकों के संवेगों को उनके व्यवहार के लक्षणों द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है:** बालक अपने संवेगों का प्रदर्शन शीघ्रता से कर लेते हैं। कोई भी संवेगात्मक अनुभूति उनके व्यवहार में आसानी से परिलक्षित हो जाती है। जबकि प्रौढ़ अपने संवेगों को प्रत्यक्ष रूप से

प्रदर्शित नहीं करते तथा परिस्थिति अनुसार छुपा लेते हैं। अप्रिय संवेगों जैसे घृणा, ईर्ष्या, दुख, अप्रसन्नता को बालक अपने व्यवहार द्वारा प्रदर्शित कर देते हैं जबकि वयस्क ऐसा नहीं करते हैं।

- **बालकों के संवेग मूर्त वस्तुओं एवं परिस्थितियों से संबंधित होते हैं:** बालकों के संवेग मुख्यतः मूर्त वस्तुओं से संबंधित होते हैं। इसी कारण बालक ड़रावनी चीजें देखकर डर जाते हैं एवं परिचित व प्रिय लोगों को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। जबकि वयस्क सुख अथवा दु:खकी कल्पना कर ही प्रसन्नता अथवा दु:खका अनुभव करते हैं।

10.8 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

मनुष्य के विकास क्रम में संवेगात्मक विकास का महत्वपूर्ण योगदान है। यदि संवेगों का संतुलित रूप से विकास न हो तो व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण सुचारु रूप से नहीं हो पाता है और कई विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मानव जीवन में संवेगात्मक विकास समान गति से न होकर विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न गति से होता है। इस भाग में हम शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा करेंगे।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

जन्म के समय शिशुओं में कुछ संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ देखी जाती हैं जो अपेक्षाकृत अपरिपक्व होती हैं। शिशु में संवेग पाए जाते हैं पर वे अविकसित होते हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति कुछ क्रियाओं तक ही सीमित होती है। शिशु बाह्य उद्दीपकों के प्रति अनुक्रियाएं करता है जो प्राय: सभी उद्दीपकों के लिए समान होती हैं, आयु वृद्धि के साथ संवेगात्मक अभिव्यक्तियों में आसानी से भेद किया जा सकता है। साधारणतया शैशवावस्था में शिशु अपने संवेगों को महसूस नहीं कर पाते, इस कारण उनके संवेगों को समझना चुनौतीपूर्ण होता है। उनके मुख के हाव-भाव देख कर ही संवेगों की पहचान की जाती है। संवेगात्मक विकास स्वयं को आस पास के वातावरण में स्थापित करने एवं सामाजिक समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वाट्सन के अनुसार शिशुओं में मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन संवेग पाए जाते हैं:

1. **भय:** भय की अनुभूति 6 माह के बाद आरंभ होती है। अनजान व्यक्ति या परिस्थितियाँ, तीव्र ध्वनि, अकेलापन बालक में भय की स्थिति उत्पन्न करते हैं। इस स्थिति में बालक रोकर, हाथ-पैर पटककर आदि अभिव्यक्तियों द्वारा भय का प्रदर्शन करता है।
2. **खुशी/प्रेम:** खुशी या प्रेम का प्रदर्शन मुस्कुराहट के साथ आरम्भ होकर बालक की खिलखिलाहट तक होता है। इस संवेग की उत्पत्ति स्नेहपूर्ण वातावरण द्वारा होती है। शिशु के मुस्कुराने की शुरुआत 6-10 सप्ताह की आयु में होती है एवं 3-4 माह की आयु में खिलखिलाने वाले उद्दीपक प्रभावी हो जाते हैं।
3. **क्रोध:** क्रोध का प्रदर्शन शिशु की प्रिय वस्तु छिन जाने या शारीरिक गतिविधियों में अवरोध के कारण होता है। 4-6 माह से लेकर 2 वर्ष की अवस्था के बालकों में क्रोध की तीव्रता एवं आवृति

लगातार बढ़ती जाती है। संवेग संज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक विकास के साथ ही क्रोध की प्रतिक्रिया में भी अहम भूमिका निभाते हैं।

शैशवास्था में संवेगों का प्रदर्शन दूसरों के संवेगों का विश्लेषण समझने के कौशल पर निर्भर करता है। 3-4 माह में शिशु की संवेदनशीलता चेहरे के भाव द्वारा अभिव्यक्त होती है। पाँचवे माह से शिशु चेहरे की भंगिमा को संगठित कर बोलने वाले की आवाज से संवेगों को समझना सीख जाता है। 8-10 महीने में वह सामाजिक संदर्भ में व्यवहार करता है। इस अवस्था में शिशु अपने विश्वसनीय लोगों पर अपरिचित/अनजान परिस्थिति में विश्वास करना सीख जाता है। 1 साल की अवस्था में वह लोगों को पहचानना, नए खिलौनों से खेलना आदि में क्रोध, भय एवं प्रेम या खुशी आदि का प्रदर्शन सीख जाता है।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा के बाद आइए जीवन की अन्य अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास पर संक्षिप्त चर्चा करें। आने वाली इकाईयों में हम इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में शैशवावस्था की अपेक्षा स्थिरता आ जाती है एवं संवेगों की तीव्रता भी कम होने लगती है। अपने संवेगों पर बालक का नियंत्रण होने लगता है। तीन वर्ष के बच्चे अपने अस्तित्व को पहचान कर अपने माता-पिता के अतिरिक्त अलग वातावरण खोजते हैं जिससे उनके भीतर घबराहट, क्रोध, भय, निराशा, असफलता, ईर्ष्या, जिज्ञासा, प्रेम, खुशी, स्नेह, आनंद जैसे स्वभाविक संवेग स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। बाल्यावस्था में उत्पन्न होने वाले संवेगों का उल्लेख निम्न प्रकार है:

- **क्रोध**: यह एक आन्तरिक अनुभूति है जो आक्रामकता, हताशा व असन्तोष के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। बाल्यावस्था में क्रोध की उत्पत्ति शारीरिक क्रियाओं में बाधा, आन्तरिक दशा, निराशा, चिढ़ाने, आलोचना, असफलता, इच्छापूर्ति न होना, अरुचिकर कार्य, माता-पिता द्वारा तिरस्कार आदि के कारण होती है। क्रोध की अवस्था में बालक रोकर, चीजों को तोड़कर या बड़ों को मार कर अपना संवेग व्यक्त करते हैं। क्रोधात्मक व्यवहार सामाजिक दृष्टि से मान्य नहीं होता है इसलिए इसका निवारण किया जाना आवश्यक है। जिन बालकों में क्रोध की प्रवृत्ति अधिक होती है उनका सामाजिक समायोजन उत्तम कोटि का नहीं होता।
- **भय:** भय की उत्पत्ति मुख्यतः व्यक्तिगत अप्रिय अनुभूति, अनुकरण एवं अनुबंधन के कारण होती है। भय ऐसी आंतरिक दशा/अनुभूति है जिसमें बालक उस परिस्थिति, वस्तु या प्राणी से दूर भागने का प्रयास करता है। अतः भय पलायन की प्रवृत्ति को जागृत करता है। भय की स्थिति में बालकों में रोने, चीखने, रोंगटे खड़े होना, मंद श्वास गति, हृदय गति व रक्तचाप में वृद्धि आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। आयु वृद्धि के साथ भय की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। भय की स्थिति निरंतर बने रहने पर बालक दब्बू व कायर हो जाते हैं जिससे उनका सामाजिक समायोजन स्थापित नहीं हो पाता।

- **ईर्ष्या:** ईर्ष्या क्रोध से उत्पन्न संवेग है जिसमें अप्रसन्नता का भाव निहित होता है। बाल्यावस्था में माता-पिता का ध्यान प्राप्त करने हेतु बालक ईर्ष्या का संवेग प्रस्तुत करते हैं। ईर्ष्या की अभिव्यक्ति क्रोध से मिलती जुलती होती है, जैसे आक्रामकता, जिद करना, अवज्ञा करना आदि। आयु वृद्धि के साथ ईर्ष्या के स्वरूप में बदलाव आता है। बालक के बौद्धिक विकास के साथ इस संवेग में कमी आ जाती है। अत्यधिक ईर्ष्या के कारण बालक का व्यक्तित्व, सामाजिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध होने लगता है। अतः बालक में ईर्ष्या के निवारण के लिए माता-पिता, शिक्षक एवं अभिभावकों को सहयोग देना चाहिए तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा एवं स्वस्थ वातावरण प्रदान करना चाहिए।
- **चिंता**: इसकी उत्पत्ति भय और परेशानी से होती है। चिंता का पादुर्भाव बालक के स्कूल जाने पर होता है तथा आयु वृद्धि के साथ इसमें वृद्धि होती है। परिवार की खराब आर्थिक स्थिति, अभिभावकों द्वारा डाँटे जाने पर, स्वास्थ्य ठीक न होने पर, विद्यालय में पढ़ाई में पिछड़ने पर आदि कारणों से बालक चिन्ता की स्थिति में रहते हैं। इस स्थिति में लगातार रहने से बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा व स्वास्थ्य दुर्बल हो जाता है। वह सामान्य बालक से अलग व्यवहार करने लगता है। इससे उसका व्यक्तित्व विकास बाधित होने लगता है। चिंता के निवारण के लिए बालक को सहानुभूति पूर्वक निर्देशित करना चाहिए एवं उन परिस्थितियों से दूर रखना चाहिए जिनसे चिंता की उत्पत्ति होती है।
- **जिज्ञासा:** जिज्ञासा एक सुखद संवेग है। यह संवेग मानसिक विकास में सहायक है एवं बालक की रुचि तथा अपने सम्बन्धित वातावरण में विकसित होता है जो सीखने एवं जानने की इच्छा को विकसित करता है। यदि बालक की जिज्ञासा को शान्त न किया जाए तो बालक में सीखने की इच्छा उदासीन हो जाती है। इसकी उत्पत्ति 3 वर्ष से प्रारम्भ होकर 6 वर्ष की आयु में अपनी चरम सीमा में होती है। तीव्र बुद्धि के बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक होती है।
- **स्नेह:** यह सुखद एवं धनात्मक संवेग है जिसका विकास क्रमिक गति से शैशवास्था में ही प्रारंभ हो जाता है। स्नेह शारीरिक एवं मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। डेढ़ वर्ष से 2 वर्ष की आयु में बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलकर अपने स्नेह का प्रदर्शन करता है। 3-4 वर्ष में वह खिलौनों तथा जानवरों से स्नेह करने लगता है। बालक स्नेह की अभिव्यक्ति शारीरिक व मौखिक दोनों रूप से करता है। इस संवेग के कारण बालक का सामाजिक समायोजन सरलता पूर्वक हो जाता है।
- **आनन्द एवं सुख:** आनन्द का संवेग किसी वस्तु या बात से सुख प्राप्ति से संबंधित है। आनन्द के कारण चेहरे के भावों में परिवर्तन आता है। 3-4 वर्ष की आयु में यह भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। 4-5 वर्ष में जिज्ञासा शांत होने पर बालक को आनन्द व सुख की अनुभूति होती है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

मनुष्य जीवन में यह अवस्था अत्यंत भावनात्मक होती है। वह इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते लगभग सभी संवेगों का अनुभव प्राप्त कर चुका होता है। इस अवस्था को उथल-पुथल एवं तनाव (Storm and stress) की अवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में किशोर बालक-बालिकाओं को शारीरिक परिवर्तन, माता-पिता की अपेक्षाओं, प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण एवं सामाजिक प्रतिबंधों के साथ समायोजन स्थापित करने में कई बार कठिनाई का सामना करना पड़ता है जिससे वे निराशा एवं कुंठाओं से ग्रसित होने लगते हैं। प्रारम्भिक किशोरावस्था में संवेगों की तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक तथा अस्थिर होती है जबकि उत्तर किशोरावस्था में संवेगों की तीव्रता कम एवं अपेक्षाकृत स्थिर होने लगती है। किशोरावस्था में प्रकट होने वाले संवेगों में क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, स्नेह व प्रसन्नता प्रमुख होते हैं।

- **क्रोध:** क्रोध का प्रदर्शन प्रत्येक किशोर भिन्न प्रकार से करता है। ऐसा साधारणतया सामाजिक प्रतिबन्ध, आलोचना तथा पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण होता है।
- **भय:** भय की उत्पत्ति अपने प्रिय व्यक्ति या वस्तु के छिन जाने या प्रतिष्ठा में कमी होने के कारण होती है अर्थात् यह संवेग काल्पनिक सम्भावनाओं से उत्पन्न होता है।
- **ईर्ष्या:** ईर्ष्या की अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप में होती है। किशोरों में ईर्ष्या की उत्पत्ति सृजनात्मक प्रतिस्पर्धा में उदासीनता, उनके मार्ग में बाधा उत्पन्न होने के कारण होती है। इस दशा में किशोर आलोचना कर या कटुशब्दों के द्वारा ईर्ष्या का प्रदर्शन करते हैं।
- **चिन्ता:** किशोरों में प्रतिष्ठा एवं भविष्य की चिन्ता, प्रियजन से बिछड़ने, साथियों के प्रतिरोध आदि के कारण इस संवेग की उत्पत्ति होती है। किशोरावस्था में विकसित मानसिक स्थिति एवं कल्पना के कारण इसमें वृद्धि होती है।
- **स्नेह:** किशोरावस्था में स्नेह/प्रेम साधारणतया विपरीत लिंग के प्रति अधिक होता है। इस अवस्था में यह संवेग तीव्रता से विकसित होता है परन्तु सबके सामने इसका प्रदर्शन करने में किशोरों को संकोच की अनुभूति होती है।
- **आनन्द एवं सुख:** किशोरावस्था में इसका विकास सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त करने, माता-पिता द्वारा विश्वसनीयता प्राप्त करने, अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने, अपने समूहों में मान्य होने आदि कारणों से होता है।

किशोरावस्था में संवेगशीलता द्वारा उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास प्रभावित होता है जिससे उनका सामाजिक समायोजन बाधित होता है। यदि संवेगों को नियंत्रित न किया जाए तो उनके व्यक्तित्व में भी दोष उत्पन्न होने लगते हैं। संवेगों में स्थिरता या नियंत्रण के अभाव में किशोर अंतर्मुखी, उदासीन, नकारात्मक व चिड़चिड़े हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. बालकों के संवेग तीव्र परन्तु ..... होते हैं।
2. शैशवावस्था में सभी नवजात शिशुओं का संवेगात्मक व्यवहार लगभग..... होता है।
3. भय संवेग की अनुभूति ..... माह के बाद आरंभ होती है।
4. तीव्र बुद्धि के बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति ..... होती है।
5. शारीरिक परिवर्तनों, प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण एवं सामाजिक प्रतिबंधों के कारण समायोजन स्थापित न कर पाने की वजह से किशोरावस्था को ..... की अवस्था भी कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्नों के पश्चात् आइए संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानें।

10.9 संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

संवेगात्मक विकास परिपक्वता एवं शिक्षण द्वारा प्रभावित होता है परंतु कई ऐसे कारण भी होते हैं जिनके फलस्वरूप बालकों का संवेगात्मक व्यवहार प्रभावित होता है। इनमें से कुछ तत्व स्वयं बालकों के भीतर विद्यमान होते हैं तथा कुछ परिवार एवं सामाजिक परिवेश से संबंधित होते हैं। आइए कुछ मुख्य कारकों पर चर्चा करें।

- **बुद्धि:** वैज्ञानिकों की दृष्टि में औसत बुद्धि वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता कम व अनियंत्रित होती है। इसके विपरीत तीव्र बुद्धि वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता पर्याप्त होती है।
- **शारीरिक स्वास्थ्य:** कमजोर, दुर्बल, अस्वस्थ व रोगों से ग्रसित बच्चे साधारणतया चिड़चिड़े, क्रोधी, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि दु:खद संवेगों से घिरे होते हैं जिससे उनका सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता जबकि स्वस्थ बालक सुखद संवेगों अर्थात् प्रसन्नचित, जिज्ञासू व स्नेह से परिपूर्ण होते हैं।
- **थकान व भूख:** थकान की अवस्था में बालक में संवेगात्मक अस्थिरता एवं उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है जिस कारण वे संवेगात्मक रूप से अधिक क्रियाशील हो जाते हैं। थकान के साथ भूख भी लगने की अवस्था में यह स्थिति और ज्यादा अनियंत्रित हो जाती है।
- **आर्थिक स्थिति:** साधारण तौर पर यह पाया गया है कि मध्यम व उच्च आर्थिक स्थिति वाले बालकों का संवेगात्मक समायोजन अच्छा होता है और निम्न आर्थिक स्थिति वाले बालकों के भीतर संवेगात्मक स्थिरता कम होती है। अर्थात् परिवार की आर्थिक स्थिति द्वारा संवेगात्मक विकास प्रभावित होता है।

- **बच्चों का जन्मक्रम:** बच्चों के जन्मक्रम द्वारा भी उनका संवेगात्मक व्यवहार प्रभावित होता है। माता-पिता द्वारा अपनी प्रथम संतान को अधिक लाड़ प्यार व संरक्षण प्राप्त होता है। परिवार में दूसरे बच्चे के आगमन के उपरांत वह स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तथा ईर्ष्यालू, क्रोधी व झगड़ालू प्रवृत्ति का बन जाता है।
- **लिंग:** लिंग भेद के कारण संवेगात्मक अभिव्यक्ति भी बालक एवं बालिका में अंतर उत्पन्न करते हैं। जैसे बालिकाओं में ईर्ष्या, प्रेम व स्नेह जैसे संवेगों की प्रचुरता होती है जबकि बालकों में क्रोध, जिज्ञासा जैसे संवेग अधिक होते हैं।
- **परिवार का आकार:** संयुक्त परिवारों में रहने वाले बालकों को अनुकरण के ज्यादा अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनका संवेगात्मक विकास तीव्र गति से होता है। जबकि एकाकी परिवार में अनुकरण के अवसर कम प्राप्त होने के कारण बालकों का संवेगात्मक विकास धीमी गति से होता है।
- **बालक का व्यक्तित्व:** आनुवंशिक गुणों एवं वातावरण द्वारा प्रभावित होने के कारण कुछ बालक बहिर्मुखी व कुछ अंतर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं। बहिर्मुखी बालकों में संवेगात्मक स्थिरता व संतुलन अंतर्मुखी बालकों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।
- **सामाजिक वातावरण:** बालक जिस सामाजिक वातावरण में जीवन यापन करता है, उस समूह के सदस्यों द्वारा किए गए संवेगात्मक व्यवहारों का अनुकरण वह स्वतः ही सीख लेता है।
- **पारिवारिक वातावरण:** पारिवारिक वातावरण भी बालकों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। जिन परिवारों में आपसी प्रेम, समर्पण, त्याग, शांति, सुरक्षा आदि का वातावरण होता है, वहाँ बालक का संवेगात्मक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन परिवारों में आपसी कलह, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि पाए जाते हैं वहाँ संवेगात्मक विकास उचित रूप से नहीं हो पाता।
- **अभिभावक-बालक संबंध:** माता-पिता द्वारा बालकों के पालन-पोषण की विधियों एवं उनकी मनोवृत्तियों द्वारा बालकों के संवेगों की मात्रा एवं स्वरूप का निर्धारण होता है। अति संरक्षित एवं अति सतर्क माता-पिता के बच्चों में आत्मविश्वास की कमी उत्पन्न हो जाती है। तिरस्कृत बच्चे आक्रामक, झगड़ालू एवं क्रोधी व्यवहार करने लगते हैं व समय के साथ वे समाज विरोधी व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। कठोरता बालक को अंतर्मुखी एवं दब्बू बना देती है जिससे उसमें भय की भावना विकसित होती है। जिन बालकों के माता-पिता पक्षपाती होते हैं उनमें ईर्ष्यालु प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

उपरोक्त सभी तत्वों द्वारा संवेगों का विकास प्रभावित होता है। बालकों के भीतर स्वस्थ संवेगात्मक विकास लाने में माता-पिता, अभिभावकों एवं शिक्षकों को पूरा ध्यान देना चाहिए।

10.10 संवेगात्मक स्थिरता

संवेगों के अंतर्गत बालक कई प्रकार की धनात्मक एवं ऋणात्मक अनुभूतियाँ प्राप्त करता है। अतः संवेगों पर सामाजिक नियंत्रण होना अति आवश्यक है। बालकों में संवेगात्मक स्थिरता से आशय है कि वे अपने संवेगों का प्रदर्शन एक निश्चित सीमा में करें क्योंकि संवेगों का अधिक प्रदर्शन व बहुलता सामाजिक समायोजन में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है। माता-पिता को चाहिए कि वे संवेगों पर नियंत्रण करने हेतु बालकों को प्रशिक्षित करें क्योंकि बालकों के संवेगात्मक व्यवहार का प्रतिमान निर्धारित हो जाने के पश्चात् उसमें परिवर्तन करना कठिन हो जाता है। इसलिए माता-पिता, अभिभावकों व शिक्षकों का यह दायित्व है कि वे बच्चों में संवेगात्मक स्थिरता लाने का प्रयास करें एवं ऋणात्मक संवेगों पर आवश्यकतानुसार नियंत्रण रखें जिससे वे परिपक्व न हो पाएँ। संवेगों को नियंत्रित करने की प्रमुख विधियाँ निम्नानुसार हैं:

- **प्रतिगमन (Regression):** व्यक्ति जब अपने संवेगात्मक तनावों को दूर करने के लिए कम परिपक्व प्रत्युत्तरों का सहारा लेता है तो यही मनोरचना प्रतिगमन कहलाती है। इस व्यवहार द्वारा संवेगों में स्थिरता लाई जा सकती है।
- **उद्यमिता (Industriousness):** बालकों को संवेगात्मक अस्थिरता से बचाने की यह एक अत्यन्त लाभदायी विधि है। इसके अंतर्गत बालक को सदैव व्यस्त रखा जाता है क्योंकि क्रियाशील रहने से उसमें नकारात्मक भाव एवं विचार उत्पन्न नहीं होते हैं। परन्तु इस विधि के क्रियान्वयन के दौरान बालकों पर निगरानी रखनी चाहिए। बालकों को व्यस्त रखने के लिए उनके रुचिकर एवं पसंद के कार्य करवाने चाहिए।
- **दमन (Repression):** यह भी एक प्रकार की मानसिक मनोरचना है जिसके द्वारा अप्रिय प्रसंगों एवं घटनाओं को जानबूझकर अपने चैतन्य मन से निकाल दिया जाता है। वयस्क व्यक्ति इसी प्रक्रिया के द्वारा अप्रिय प्रसंगों को भूलते हैं परन्तु बालकों में संवेगों के दमन हेतु उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है जिससे वह शांत होकर दूसरे कार्यों में व्यस्त हो जाता है। संवेगों का दमन दो प्रकार से होता है:

आन्तरिक दमन (Internal Repression): इसमें व्यक्ति संवेगों का दमन स्वयं ही कर लेता है, जैसे दु:ख की स्थिति में शांतचित्त दिखाई देना।

बाह्यदमन (External Repression): इसमें माता-पिता, शिक्षकों एवं समाज के लोगों द्वारा संवेगों का दमन कराया जाता है। जैसे बालक के झगड़ा करने पर उसे रोकना एवं डाँटना।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दमन द्वारा संवेगों पर नियंत्रण करना उचित नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें बालक बाहर से तो शांतचित्त एवं गम्भीर प्रतीत होते हैं परन्तु उनके आंतरिक मन में अंतर्द्वंद चलता रहता है जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होता है।

- **शोधन (Sublimation):** यह संवेग नियंत्रण की सबसे उत्तम व सर्वश्रेष्ठ विधि है। इसमें संवेगों की अभिव्यक्ति पद्धति तथा स्वरूप में परिवर्तन कर दिया जाता है। शोधन दो प्रकार से किया जाता है:

मार्ग बदल कर: मार्ग बदलने से तात्पर्य है कि इसमें संवेगात्मक अवस्था को सकारात्मक मोड़ दिया जाता है एवं संवेगों की अभिव्यक्ति सामाजिक मान्यता के अनुसार करना सिखाया जाता है।

सकारात्मक सोच उत्पन्न कर: सकारात्मक सोच के अन्तर्गत अपने भाव एवं विचारों को ही बदल दिया जाता है। इससे संवेगों का दमन भी नहीं होता एवं उनकी अभिव्यक्ति भी हो जाती है जिससे बालक में मानसिक दोष उत्पन्न नहीं होता है।

- **विस्थापन (Displacement):** विस्थापन वह मनोदशा है जिसमें व्यक्ति अपने संवेग को दूसरे व्यक्ति, वस्तु या विचार में स्थानान्तरित कर संतुष्ट होता है। जैसे बालक को माता-पिता द्वारा यदि डाँटा जाता है तो वह अपने छोटे भाई-बहनों पर अपना क्रोध प्रदशित कर अपने संवेगों को शान्त करता है।
- **संवेगात्मक रेचन (Emotional Catharsis):** जब दमित संवेगों की अभिव्यक्ति सृजनात्मक, रचनात्मक, मनोरंजक व सांस्कृतिक क्रियाओं द्वारा की जाती है तो उसे संवेगात्मक रेचन कहते हैं। रेचन से तात्पर्य "दमित संवेगों को मुक्त करना" है।

रेचन आमतौर पर दो तरीके से किया जाता है:

शारीरिक रेचन: शारीरिक रेचन के अन्तर्गत दमित संवेगों की अभिव्यक्ति शारीरिक क्रियाओं द्वारा की जाती है। जैसे खेल, योगा एवं कठिन व्यायाम कर संवेगों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

मानसिक रेचन: मानसिक रेचन मूक होता है। इसमें संवेगात्मक सहनशीलता आवश्यक है। इसमें बालक उन परिस्थितियों, वस्तुओं या व्यक्तियों के प्रति स्वयं का दृष्टिकोण बदल देता है जिनके कारण संवेग उत्पन्न हुए हैं।

- **स्वतंत्र अभिव्यक्ति (Free Expression):** यह विधि प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो तथा माँन्टेसरी द्वारा प्रतिपादित की गई। इसके अन्तर्गत बालकों को अपने संवेगों की अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण अवसर दिया जाता है क्योंकि संवेगों के दमन से बालक हीन भावना एवं कुण्ठा से ग्रसित हो दब्बू हो जाता है। संवेगों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के परिणामों से अवगत होकर वह उन पर नियंत्रण करना सीख जाता है।

10.11 संवेगात्मक संतुलन

संवेगात्मक संतुलन से तात्पर्य समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार समाज द्वारा मान्य तरीकों से संवेगों की अभिव्यक्ति है। इसके विपरीत जब बालक समाज के मान्य तरीकों से संवेगों को

अभिव्यक्त नहीं करता है तो उसे संवेगात्मक रूप से असंतुलित कहा जाता है। इस संवेगात्मक असंतुलन के कारण बालकों का सामाजिक विकास एवं सामाजिक समायोजन प्रभावित होता है। शर्मीलेपन के कारण बालक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं।

संवेगात्मक असंतुलन में दो स्थितियाँ होती हैं:

उच्च संवेगात्मकता (Heightened Emotionality): उच्च संवेगात्मकता से तात्पर्य है संवेगों के प्रदर्शन की अतितीव्रता एवं सामान्य से अधिक आवृत्ति। उच्च संवेगात्मकता से स्वास्थ्य एवं सामान्य विकास प्रभावित होता है। इस स्थिति में पाचक रसों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है तथा हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। यह सभी लक्षण स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं। आन्तरिक परिवर्तन के साथ ही बाह्य व्यवहारों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे ऊँचे स्वर में बोलना, हकलाना आदि।

निम्न संवेगात्मकता (Lowered Emotionality): निम्न संवेगात्मकता के अन्तर्गत संवेगों के अनुभव की तीव्रता एवं आवृत्ति सामान्य से कम होती है। बालक उपयुक्त समय में अपने संवेग प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। ऐसे बालक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं। निम्न संवेगात्मकता से बालक का सामाजिक समायोजन विपरीत रूप से प्रभावित होता है। ऐसे बालकों को सहानुभूति पूर्वक प्रोत्साहित कर इस आदत के निराकरण में मदद करनी चाहिए। जैसे बालक को खेल के समय प्रश्न पूछकर उसकी जिज्ञासा को बढ़ाना चाहिए।

10.11.1 संवेगात्मक संतुलन प्राप्ति के तरीके

संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के लिए निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं:

- **वातावरण पर नियत्रंण:** संवेगात्मक संतुलन हेतु बालकों को अपने भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण पर नियंत्रण करना सीखना चाहिए। इसके लिए उन्हें नकारात्मक तथा ऋणात्मक संवेगों को त्याग कर सकारात्मक एवं धनात्मक संवेगों को अपनाना चाहिए।
- **संवेगात्मक सहनशीलता:** संवेगात्मक सहनशीलता से अभिप्राय है कि बालक दूसरों के उग्र संवेगों को सहन करे एवं अपने उग्र संवेगों को नियंत्रित रखे। सहनशीलता से स्वतः ही संवेगों में संतुलन आ जाता है।
- **उचित प्रशिक्षण द्वारा:** उचित प्रशिक्षण एवं निर्देशन द्वारा बालकों में संवेगात्मक संतुलन लाया जा सकता है। माता-पिता तथा शिक्षकों का यह दायित्व होता है कि बालकों को संवेग प्रदर्शन में उचित मार्गदर्शन दें।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।

1. परिवार में बच्चों के जन्म क्रम द्वारा बालकों का संवेगात्मक व्यवहार किस प्रकार प्रभावित होता है?
2. उद्यमिता द्वारा संवेगात्मक स्थिरता किस प्रकार लाई जा सकती है?
3. शोधन विधि द्वारा संवेग नियंत्रण कितने प्रकार से किया जा सकता है?
4. उच्च संवेगात्मकता की स्थिति में व्यक्ति में किस प्रकार के आंतरिक परिवर्तन देखे जाते हैं?
5. संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के तरीकों को सूचीबद्ध कीजिए।

10.12 सारांश

बालक प्रतिदिन अपने व्यवहार के माध्यम से संवेगों का प्रदर्शन करते हैं। ये संवेग समय एवं परिस्थिति के अनुरूप बदलते रहते हैं। शैशवावस्था में शिशु के संवेग कम विकसित एवं लगभग समान होते हैं। ये संवेग आयु में वृद्धि के साथ विकसित होते हैं तथा इनमें वैयक्तिक भिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं। इस इकाई में हमने शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा की। हमने संवेगों तथा संवेगात्मक विकास की विशेषताओं के बारे में जाना। हमने जाना कि संवेगात्मक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है जो साधारण से जटिल की ओर बढ़ती है तथा समय के साथ परिपक्व होती जाती है। बालकों के जीवन में संवेगों के महत्व पर हमने चर्चा की। बालकों के संवेगों की विशेषताओं पर चर्चा के बाद हमने यह जाना कि बालकों के संवेग तीव्र परन्तु क्षणिक होते हैं तथा ये आयु एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। शैशवावस्था में मूल रूप से क्रोध, भय तथा प्रेम/खुशी के संवेग देखे जाते हैं। संवेगात्मक व्यवहार को कई कारक प्रभावित करते हैं, जैसे बुद्धि, स्वास्थ्य, परिवार की आर्थिक स्थिति, लिंग, बच्चों का जन्मक्रम आदि। बालकों के उचित सामाजिक समायोजन हेतु संवेगात्मक स्थिरता अति आवश्यक है जो कई विधियों जैसे उद्यमिता, दमन, शोधन, विस्थापन, स्वतंत्र अभिव्यक्ति आदि द्वारा लाई जा सकती है। बालकों में संवेगात्मक संतुलन का होना भी आवश्यक होता है। संवेगात्मक संतुलन से तात्पर्य समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार समाज द्वारा मान्य तरीकों से संवेगों की अभिव्यक्ति है। इस संतुलन की प्राप्ति हेतु कई तरीके अपनाए जा सकते हैं, जैसे नियंत्रण, सहनशीलता तथा प्रशिक्षण। संवेगात्मक असंतुलन के कारण बालकों का सामाजिक विकास एवं सामाजिक समायोजन प्रभावित होता है।

10.13 पारिभाषिक शब्दावली

- **संवेग:** व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित वह क्रियाएं जिनकी उत्पत्ति कई मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है तथा इसमें व्यवहार, चेतना, अनुभूति, अनुभव और आंतरिक अवयवों की क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं।

- **दमन:** एक प्रकार की मानसिक मनोरचना जिसके द्वारा अप्रिय प्रसंगों एवं घटनाओं को जानबूझकर अपने चैतन्य मन से निकाल दिया जाता है।
- **संवेगात्मक रेचन:** दमित संवेगों को मुक्त करना।
- **प्रतिगमन:** संवेगात्मक तनावों को दूर करने के लिए व्यक्ति द्वारा कम परिपक्व प्रत्युत्तरों का सहारा लेना।

10.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

सही अथवा गलत बताइए।

1. सही
2. गलत
3. सही
4. सही

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. क्षणिक
2. समान
3. 6 माह
4. अधिक
5. उथल-पुथल एवं तनाव (Storm and stress)

अभ्यास प्रश्न 3

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।

1. माता-पिता द्वारा अपनी प्रथम संतान को अधिक लाड़ प्यार व संरक्षण प्राप्त होता है। परिवार में दूसरे बच्चे के आगमन के उपरांत पहला बच्चा स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तथा ईर्ष्यालू, क्रोधी व झगड़ालू प्रवृत्ति का बन जाता है।
2. उद्यमिता विधि के अंतर्गत बालक को सदैव व्यस्त रखा जाता है क्योंकि क्रियाशील रहने से उसमें नकारात्मक भाव एवं विचार उत्पन्न नहीं होते हैं। बालकों को व्यस्त रखने के लिए उनके पसंद के कार्य करवाये जाते हैं।
3. शोधन विधि द्वारा संवेग नियंत्रण दो प्रकार से किया जा सकता है; मार्ग बदल कर तथा सकारात्मक सोच उत्पन्न कर।

4. उच्च संवेगात्मकता की स्थिति में पाचक रसों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है तथा हृदय की धड़कन तेज हो जाती है।
5. संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के लिए निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं:
   - वातावरण पर नियत्रंण
   - संवेगात्मक सहनशीलता
   - उचित प्रशिक्षण

10.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पंचशील प्रकाशन ,जयपुर।
3. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान: बाल विकास, बारहवां संस्करण। विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. डॉ0 जे0 एन0 लाल एवं अनिता श्रीवास्तव, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. S.P. Chaube, Child Psychology. Lakshmi Narain Agarwal educational publishers, Agra.

10.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बालकों के संवेगों की क्या विशेषताएँ हैं?
2. संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. संवेगों पर नियंत्रण या संवेगात्मक स्थिरता प्राप्ति के उपायों की व्याख्या कीजिए।
4. संवेगात्मक विकास के परिपक्वता की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

खण्ड 4

पूर्व बाल्यावस्था

इकाई 11: शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 शारीरिक विकास
11.4 क्रियात्मक विकास
    11.4.1 स्थूल क्रियात्मक विकास
    11.4.2 सूक्ष्म क्रियात्मक विकास
11.5 पूर्व बाल्यावस्था में शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
    11.5.1 आनुवंशिक कारक
    11.5.2 वातावरणीय कारक
11.6 पूर्व बाल्यावस्था में शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके।
11.7 सारांश
11.8 पारिभाषिक शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने शैशवावस्था के अंत तक शिशु में होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक क्षमताओं के सम्बन्ध में पढ़ा। शैशवावस्था के दौरान शिशु की वृद्धि एवं विकास की दर आश्चर्यचकित करने वाले होती है जिसे उसकी संवेदी क्षमताओं तथा आकार में होने वाली वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है। शिशु के 2 वर्ष के होने तक क्रियात्मक विकास भी बहुत चरम अवस्था में होता है। इस अवधि में शिशु कई कौशल सीख जाता है जैसे चलना, वस्तु को अपने हाथों से पकड़ना आदि।

इस इकाई में आप पूर्व बाल्यावस्था में प्रवेश करते समय शिशु में उपस्थित शारीरिक एवं क्रियात्मक क्षमताओं के सम्बन्ध में पढ़ेंगे। 2 से 6 वर्ष के दौरान शिशु में क्रियात्मक कौशल तथा आकार वृद्धि

में और अधिक सुधार होता जाता है। इन वर्षों में वृद्धि की दर बहुत तीव्र होती है तथापि यह शैशवावस्था की अपेक्षा कुछ कम होती है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप निम्न के बारे में जान पायेंगे:

- पूर्व बाल्यावस्था के दौरान शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक।
- पूर्व बाल्यावस्था के दौरान होने वाले प्रमुख शारीरिक तथा क्रियात्मक विकासों के सम्बन्ध में जानकारी।
- आप यह भी जान पायेंगे कि पूर्व बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को किस प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है।

11.3 शारीरिक विकास

नीचे दिए गए चित्रों से आप एक ही शिशु को शैशवावस्था से पूर्व बाल्यावस्था तक की विभिन्न अवस्थाओं में देख सकते हैं।

चित्र 11.1 एक शिशु की शैशवावस्था से पूर्व बाल्यावस्था तक की विभिन्न अवस्थाएं

2 माह

9 माह

2 वर्ष 6 माह

5 वर्ष

इन समस्त चित्रों को देखकर आप शिशु में होने वाले किन प्रमुख परिवर्तनों को महसूस कर सकते हैं? नीचे दिये गये स्थान पर अपने विचार लिखिये।

आपने भी शिशु में शैशवावस्था से पूर्व बाल्यावस्था के दौरान कई शारीरिक अंतर महसूस किए होंगे जो कि स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहे हैं जैसे लम्बाई, शारीरिक अनुपात तथा शिशु के आकार में परिवर्तन आदि। आइये अब इन्हीं तथा कुछ अन्य शारीरिक विकासों के सम्बन्ध में विस्तार से पढ़ें।

- **शरीर अनुपात तथा आकार**

पूर्व बाल्यावस्था के दौरान सर्वाधिक स्पष्ट दिखायी देने वाले शारीरिक परिवर्तन शारीरिक अनुपात तथा आकार से सम्बंधित हैं। जैसे ही शिशु पूर्व बाल्यावस्था के वर्षों में प्रवेश करता है वह शैशवावस्था से बिलकुल अलग दिखने लगता है। धीरे धीरे शिशु बचपन का मोटापा खोने लगता है क्योंकि इस समय शिशु लंबा, पतला, सीधे तथा लंबे पैर वाला एवं शिशु का शारीरिक अनुपात एक वयस्क व्यक्ति के समान हो जाता है। आपने गौर किया होगा कि सभी शिशु लगभग एक समान ही दिखायी देते हैं।

पूर्व बाल्यावस्था में शिशु की लम्बाई तथा वजन निरंतर बढ़ता रहता है क्योंकि शिशु प्रति वर्ष लम्बा हो रहा होता है तथा उसका भार बढ़ रहा होता है। सामान्यतया छोटे बच्चे लगभग 2 से 3 इंच प्रति वर्ष बढ़ते हैं। शरीर आकार में यह वृद्धि आनुवंशिक कारकों, हार्मोन्स के स्त्राव तथा शिशु के स्वास्थ्य आदि से प्रभावित होती है। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के शिशुओं के शारीरिक आकार में आनुवंशिक प्रवृत्तियों के कारण विभिन्नता पायी जाती है। लड़कियों तथा लड़कों की लम्बाई तथा वजन में भी थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक ऐसा बच्चा जिसे पर्याप्त पोषण युक्त आहार मिल रहा हो तथा वह बीमार न हो वह अपनी पूरी लम्बाई प्राप्त करता है।

बच्चे का विकास कितना अच्छी प्रकार से हो रहा है इस बात का अंदाज उसकी लम्बाई तथा वजन में हो रही वृद्धि से लगाया जा सकता है। बच्चे की बाँह के घेरे को मापकर भी बच्चे की वृद्धि का अंदाजा लगाया जा सकता है। यदि बच्चे का वजन, लम्बाई या सिर तथा भुजा के घेरे या बी. एम. आई. बच्चे की उम्र के अनुपात में नहीं हैं तो यह इस बात का संकेत हो सकता है कि बच्चा या तो किसी बीमारी से या कुपोषण से पीड़ित हो सकता है। ऐसी स्थिति में बच्चे को पूरक आहार देकर

उसके स्वास्थ्य तथा पोषण की स्थिति को सुधारा जा सकता है। और यदि ऐसा न किया जाए तो इसका प्रभाव बच्चे के भविष्य में होने वाले विकास पर भी पड़ता है।

अत: बच्चे के विकास की सही स्थिति का पता लगाने हेतु उसकी लम्बाई, वजन तथा सिर एवं बाँह के घेरे का निरंतर परीक्षण करते रहना आवश्यक है।
अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि यह कैसे पता लगाया जाए कि बच्चे की लम्बाई, वजन अथवा सिर या बाँह के घेरे उसकी आयु के अनुरूप हैं या नहीं?

इस प्रश्न का जवाब हमें विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा बनाए गए मानकों में मिलता है जिसमें उन्होंने लम्बाई, वजन तथा सिर एवं भुजा के घेरों में वृद्धि के मानदंड तय किए हैं। बच्चे की लम्बाई तथा वजन आदि की जांच विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा बनाए गए विकास निगरानी चार्ट द्वारा की जा सकती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा बनाए गए मानकों का प्रयोग भारतवर्ष में चल रही सबसे बड़ी बाल्यावस्था योजना एकीकृत बाल विकास योजना (ICDS) में किया जा रहा है।

- **हड्डियाँ एवं दाँत**

पिछली इकाइयों को पढ़कर आप अब यह तो जान ही गए होंगे कि जन्म के समय बच्चे की हड्डियाँ बहुत मुलायम होती हैं जोकि आयु के साथ-साथ कठोर होती जाती हैं। पूर्व बाल्यावस्था में प्रवेश करने के समय तक हड्डियाँ कुछ दृढ़ हो जाती हैं, ये आसानी से नहीं टूटती हैं तथा यदि टूट भी जाएँ तो बहुत जल्दी जुड़ भी जाती हैं।

पूर्व बाल्यावस्था में बच्चे के दांतों में भी बहुत परिवर्तन आते हैं तथा 6 वर्ष की उम्र से बच्चे के दाँत या दूध वाले दाँत टूटने लगते हैं। बच्चे के दांतों का विशेष ख़याल रखना चाहिए ताकि कुछ प्रमुख परेशानियों जैसे दन्त क्षय आदि से उसे बचाया जा सके। इसके लिए बच्चे को एक मुलायम ब्रश देना चाहिए तथा यह ध्यान देना चाहिए कि वह रोजाना ब्रश करे। बच्चे को बार-बार मीठा खाने से रोकना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देना चाहिए कि बच्चे को भोजन के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम मिल रहा हो।

- **मस्तिष्क**

शैशवावस्था तथा पूर्व बाल्यावस्था मस्तिष्क विकास की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण समय है क्योंकि लगभग 90 प्रतिशत मस्तिष्क का विकास इसी समय हो जाता है। शैशवावस्था की अपेक्षा पूर्व बाल्यावस्था में मस्तिष्क विकास अधिक तीव्रता से होता है इस समय सिर और मस्तिष्क शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक वृद्धि करते हैं। मस्तिष्क पर हुए वैज्ञानिक शोधों से पता चलता है कि पूर्व बाल्यावस्था के वर्ष मुख्य रूप से मस्तिष्क के अग्र भाग के विकास हेतु अति महत्वपूर्ण होते हैं। मस्तिष्क का यह भाग कल्पना करने तथा ध्यान केंद्रित करने के लिए जिम्मेदार होता है। यह मस्तिष्क

के अन्य भागों के साथ मिलकर भी कई महत्वपूर्ण कार्य करता है जैसे बच्चे में भाषा, चलने फिरने में नियंत्रण तथा संतुलन आदि का विकास। मस्तिष्क विकास के साथ तंत्रिका तंत्र के विकास से बच्चे में भाषा कौशल में सुधार, शारीरिक क्रियात्मक समन्वय, कल्पना करने की क्षमता तथा याददाश्त में विकास होता है।

- **हस्त प्राथमिकता**

हस्त प्राथमिकता का मतलब है दोनों हाथों में से एक हाथ को कार्य करने में प्राथमिकता देना जैसे खाना खाने तथा लिखने आदि में। इससे एक हाथ अधिक प्रभावी हो जाता है। प्रभावी हाथ सामान्यतया अधिक मजबूत होता है तथा अधिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकता है। अधिकतर व्यक्तियों का दाहिना हाथ प्रभावी होता है जबकि कुछ लोगों का बायाँ हाथ प्रभावी होता है।
पूर्व बाल्यावस्था के दौरान बच्चे में स्पष्ट रूप से यह दिखने लगता है कि उसमें दाहिना या बायाँ कौन सा हाथ प्रभावी होगा। अध्यापक एवं माता-पिता बच्चे को दाहिने हाथ के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं किन्तु बच्चे पर कोई दबाव नहीं डालना चाहिए। अत: यदि बच्चा सभी कार्यों के लिए बांये हाथ का ही प्रयोग कर रहा है तो उसे करने देना चाहिए। बच्चे का दाहिने या बांये हाथ का प्रयोग सामान्य बात है।

- **शौचालय प्रशिक्षण**

2 वर्ष की आयु के पश्चात बच्चे को शौचालय प्रयोग करने की समझ आ जाती है। किन्तु मल मूत्र त्याग के पश्चात सफाई हेतु अभी भी वे दूसरों पर निर्भर होता है। 3 वर्ष की आयु तक उसका मलमूत्र त्याग पर स्वयं का नियंत्रण हो जाता है तथा 4 वर्ष की आयु तक वह स्वतंत्र रूप से शौचालय का प्रयोग करने लगता है।

- **दृष्टि**

आप यह देख सकते हैं कि बहुत से पूर्व विद्यालयी बच्चे दूरदर्शी होते हैं अर्थात वे अपने पास की वस्तुओं की अपेक्षा दूर की वस्तुओं को आसानी से देख सकते हैं। पूर्व बाल्यावस्था के अंत तक यह प्रकृति परिवर्तित हो जाती है तथा बच्चा अब नजदीक की वस्तुओं पर आँखों को केंद्रित करने लगता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बच्चे का अभी भी दृष्टि तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों का विकास हो रहा है उसे उचित प्रकार की पुस्तकें पढ़ने को देनी चाहिए। इस समय बच्चों को दी जाने वाली पुस्तकों में निम्न विशेषताएँ होनी चहिए:

- पुस्तक की विषयवस्तु बड़ी तथा अक्षर स्पष्ट होने चाहिए क्योंकि बच्चे की दृष्टि का विकास अभी भी हो रहा होता है।
- छोटे बच्चे तथा पूर्व विद्यालयी बच्चे ऐसी पुस्तकों को पसंद करते हैं जिनमें लिखा हुआ भाग कम हो तथा चित्र अधिक दिए हुए हों। यहाँ तक कि एक पृष्ठ में एक या दो पंक्तियों से ज्यादा लिखा हुआ भाग नहीं होना चाहिए।

- पुस्तक पर चित्र बड़े बड़े, रंगीन तथा बहुत कम विवरण वाले होने चाहिए।
- बच्चों को कहानी, चित्रों वाली, कविताओं आदि की पुस्तकें पसंद आती हैं।
- पुस्तक में साधारण भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- पुस्तक में घिसे पिटे तथा पक्षपातपूर्ण शब्दों का प्रयोग नहीं होना चाहिए। अपितु यह विभिन्न संस्कृतियों तथा व्यक्तियों के प्रति संवेदनशील तथा सम्मानपूर्ण होने चाहिए।
- पुस्तक में ऐसे पृष्ठों का प्रयोग किया गया हो जो पलटने में आसान हों जैसे मोटे प्रकार के पृष्ठ या मोटे गत्ते की तरह के पृष्ठ।

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्न कथनों में सही या गलत बताइये।
   a. पूर्व बाल्यावस्था के दौरान वृद्धि की दर बहुत तीव्र होती है यहाँ तक कि शैशवावस्था की तुलना में कहीं अधिक होती है।
   b. एक छोटे बच्चे की लम्बाई लगभग 2 से 3 इंच हर वर्ष बढ़ती है।
   c. बच्चे में हो रही वृद्धि की निरंतर देखरेख से बच्चे के विकास में हो रही किसी प्रकार की देरी का अंदाजा लगाया जा सकता है जिससे उसमें आवश्यक दखल देकर सुधार किया जा सके।
   d. मस्तिष्क का विकास अन्य विकासात्मक क्षेत्रों के विकास से नजदीक से बंधा हुआ होता है।
2. एक पूर्व विद्यालयी बच्चे के लिए पुस्तक का चयन करते समय आप किन किन बातों को ध्यान में रखेंगे?

.....

.....

.....

11.4 क्रियात्मक विकास

क्रियात्मक शब्द का अर्थ है गति और चाल। बच्चा जैसे जैसे बढ़ता जाता है उसके चलने की क्षमता में सुधार होता जाता है। क्रियात्मक कौशलों का विकास बच्चे के शारीरिक विकास के साथ होता है। पूर्व बाल्यावस्था के दौरान तीव्र शारीरिक विकास के साथ-साथ बच्चे का अपने शरीर पर बहुत नियंत्रण हो जाता है। अब बच्चा बहुत सारी शारीरिक क्रियाएँ और अधिक बारीकी तथा बल के साथ करने लगता है। बच्चे अपनी प्रारंभिक अवस्था में बहुत ऊर्जावान होते हैं।

क्रियात्मक विकास मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं: स्थूल क्रियात्मक कौशल का विकास तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास।

इन दोनों प्रकार के क्रियात्मक विकासों के दौरान होने वाली कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न प्रकार हैं :

आयु वर्ग	स्थूल क्रियात्मक कौशल	सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल
2 से 4 वर्ष	• बच्चा 2 1/2 से 4 फीट तक कूद सकता है। • अब बच्चा एक सीधी पंक्ति में चल सकता है। • सीढ़ी में ऊपर नीचे चढ़ उतर सकता है लेकिन किसी भी अगली सीढ़ी में पैर रखने से पहले वह दोनों पैर पिछली सीढ़ी पर साथ रखता है। थोड़ा बड़ा हो जाने पर वह दोनों पैरों को अलग-अलग रखकर चलने लगता है। नीचे उतरना वह और बाद में सीखता है। • वह कुछ समय के लिए एक पैर पर खड़ा रह सकता है। • गेंद को सही दिशा में फेंक सकता है लेकिन उतनी सफाई से नहीं।	• ब्लॉक की सहायता से इमारत बना सकता है। • मिट्टी को किसी न किसी आकार में ढाल लेते हैं। • 4 वर्ष की उम्र तक पहुँचने तक बच्चा घसीटकर लिखने लगता है तथा क्रेयान की सहायता से चित्रकारी करने लगता है। • जिपर का प्रयोग कर सकते हैं। • कम धार वाली कैंची से कागज़ काट सकता है।
4 से 6 वर्ष	• उल्टा तथा सीधा दोनों तरफ चल सकता है। • 4 से 5 फीट ऊंचाई अच्छे समन्वय से साथ कूद सकता है। • सीढ़ी में ऊपर नीचे दोनों पैरों को अलग-अलग रखकर चढ़ सकता है। • गेंद को 5 से 6 फीट की दूरी पर रखे लक्ष्य पर एकदम सही से मार सकता है।	• ब्लॉक की सहायता से और अधिक जटिल आकार बना सकता है। • बटन को लगा तथा खोल सकता है। • अब बच्चा विकास की दृष्टि से लिखने के लिए तैयार है। • वह कुछ आकार जैसे गोला, वर्ग आदि को तथा कुछ बड़े शब्दों की नक़ल कर सकता है।

जब हम उपलब्धियों के सम्बन्ध में बात करते हैं तो यह आभास होना आवश्यक है कि इन उपलब्धियों को प्राप्त करने की दर हर बच्चे के लिए भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरणार्थ कुछ बच्चे

सीढियों पर दोनों पैर अलग-अलग रखकर चलना जल्दी सीख लेते हैं जबकि यही सीखने में कुछ बच्चे अधिक समय लेते हैं। एक स्वस्थ बच्चा इन उपलब्धियों को जल्दी प्राप्त कर लेता है। तथापि यदि बच्चा इन उपलब्धियों को प्राप्त करने में बहुत पीछे हो रहा हो तो माता-पिता को कारण का पता लगाकर उसे जल्द से जल्द दूर करने का प्रयास करना चाहिए और यदि फिर भी बच्चा बहुत अधिक समय ले रहा हो तो शीघ्र डॉक्टर से संपर्क करना चाहिए।

आइये अब हम पढ़ें कि पूर्व बाल्यावस्था के दौरान किस तरह इन दोनों प्रकार के कौशलों का विकास होता है।

11.4.1 स्थूल क्रियात्मक कौशलों का विकास

स्थूल क्रियात्मक विकास के अंतर्गत वो कौशल आते हैं जिनके लिए शरीर की बड़ी मांसपेशियों के प्रयोग की आवश्यकता होती है। जैसे पैर, हाथ तथा धड़ की बड़ी मांसपेशियाँ। स्थूल क्रियात्मक विकासों में दौड़ना, कूदना, एक टांग पर कूदना तथा लात मारना आदि आते हैं।

संतुलन

पूर्व बाल्यावस्था के दौरान बच्चे बेहतर संतुलन स्थापित कर सकते हैं। एक 3 से 4 वर्ष का बच्चा एक पैर पर बहुत थोड़े समय के लिए खड़ा हो सकता है। यह क्षमता उम्र के साथ बढ़ती जाती है। 6 वर्ष की उम्र का बच्चा संतुलन बीम पर आसानी से चल सकता है।

चलना तथा दौड़ना

जब बच्चा 3 वर्ष का हो जाता है वो शुरु के वर्षों की तरह लड़खड़ाकर चलना छोड़ देता है तथा अब वो आसानी से चल सकता है। एक 3 से 4 वर्ष का बच्चा दौड़ भी सकता है लेकिन एक सीधी दिशा में। 3 वर्ष की उम्र तक बच्चा सीधी रेखा में चल या दौड़ सकता है किन्तु वह दौड़ते हुए आसानी से पलट या रुक नहीं सकता। 4 से 5 वर्ष के मध्य बच्चा आगे या पीछे आसानी से चल सकता है तथा अपने चलने की गति को नियंत्रित कर सकता है। पूर्व बाल्यावस्था के अंत तक बच्चा शुरुआत के वर्षों की अपेक्षा आसानी से तथा और अधिक गति से दौड़ सकता है।

कूदना तथा उछलना

बच्चे खेलते समय कूदना पसंद करते हैं। 3 से 4 वर्ष का बच्चा कुछ दूरी तक कूद सकता है। 6 वर्ष की उम्र तक बच्चा कुछ अवरोधक जैसे रस्सी या टायर आदि को कूदकर पार कर लेता है।

गेंद के साथ खेलना: पकड़ना, फेंकना तथा लात मारना

खेलना, पकड़ना तथा फेंकना बच्चे के पसंदीदा खेल हैं। क्या आपने कभी एक 2 वर्ष के बच्चे को गेंद को पकड़ते हुए देखा है? आपने देखा होगा कि जब बच्चा गेंद को पकड़ रहा होता है तो वह गेंद पकड़ने के लिए अपनी हथेली का प्रयोग करने के स्थान पर अपनी पूरी बांहों का प्रयोग करता है।

ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस समय तक बच्चे में इतनी सामर्थ्य तथा समन्वय नहीं होता कि वह गेंद को केवल अपनी हथेली से पकड़ सके। जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वह बहुत आसानी से गेंद को पकड़ने लेता है। एक तीन वर्ष का बच्चा गेंद से फेंक पकड़ खेलते समय गेंद को सामान्य दिशा में फेंक सकता है लेकिन उसका निशाना बहुत अचूक नहीं होता है। हालाँकि वह एक स्थिर गेंद को बल्ले से मार सकता है। जबकि एक 5 से 6 वर्ष का बच्चा 5 से 6 फीट की दूरी पर रखे किसी लक्ष्य को गेंद से बहुत सही से मार सकता है।

इसी प्रकार एक 3 से 4 वर्ष का बच्चा गेंद को पैर से मारकर एक बहुत कम दूरी पर रखे लक्ष्य तक ही फेंक सकता है जबकि एक 5 से 6 वर्ष का बच्चा 3 से 4 फीट तक के लक्ष्य तक बहुत अचूक निशाना मार सकता है।

यह देखा गया है कि स्थूल क्रियात्मक क्रियाओं को लड़के अधिक आत्मविश्वास तथा ताकत के साथ कर सकते हैं। जबकि सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों जैसे एक टांग पर कूदने या रस्सी कूदने में जहां संतुलन तथा पैर की गतिविधियों के मध्य समन्वय की आवश्यकता होती है, इनमें लड़कियाँ लड़कों से आगे होती हैं।

11.4.2 सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों का विकास

सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों में वो कौशल आते हैं जिनमें शरीर की छोटी मांसपेशियों का प्रयोग होता है, मुख्य रूप से हाथ में (अंगुलियाँ तथा कलाई) उपस्थित मांसपेशियाँ। सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों में लिखना, काटना, चिपकाना, जूते के फीते बांधना आदि आते हैं।

क्या आपने कभी आखों को बंद करके लिखने का प्रयास किया है? आप पायेंगे कि एक वयस्क होने के बावजूद आप स्पष्ट नहीं लिख पाते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि आँखों को बंद कर देने के पश्चात आप आँख और हाथों के समन्वय का लाभ नहीं उठा पाते हैं। आँख और हाथ का समन्वय किसी व्यक्ति के हाथों को कार्य करने में मार्गदर्शक का कार्य करता है। 2 से 6 वर्ष के मध्य बच्चे का आँख हाथ के समन्वय में इतना अधिक सुधार आ जाता है कि उसका अपनी छोटी मांसपेशियों में और अधिक नियंत्रण हो जाता है जोकि सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों के विकास में योगदान करती हैं। इस आयु में तंत्रिका तंत्र का भी विकास होता है तथा यह भी सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों के विकास में योगदान करता है। इस कौशल के विकसित होने के कारण बच्चे को रंग भरना, ब्लॉक से खेलना, फाड़ना तथा चिपकाना, किसी धागे में मोती पिरोना आदि कार्यों में विशेष रुचि पैदा हो जाती है जिनमें हाथों की छोटी मांसपेशियों का प्रयोग होता है। सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों में विकास से बच्चे में स्वयं सहायता कौशलों जैसे कपड़े पहनना, नहाना तथा खाना खाने आदि का भी विकास हो जाता है।

ब्लॉक से इमारत बनाना

चित्र संख्या 11.2: ब्लॉक से खेलती बच्ची

आपने इस आयु के बच्चों को ब्लॉक से इमारत बनाते हुए देखा होगा (चित्र संख्या 11.2)। जब एक 3 वर्ष का बच्चा लकड़ी के ब्लॉक की सहायता से कोई इमारत बनाता है तो इमारत सीधी नहीं बनती है। ब्लॉक को सही प्रकार से व्यवस्थित करने के इस कौशल में आयु के साथ और अधिक सुधार आ जाता है और 5 वर्ष की उम्र तक बच्चा केवल इमारत ही नहीं बना लेता अपितु घर, अस्पताल आदि भी बना लेता है।

चित्रकारी

सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों का विकास बच्चे द्वारा बनायी गयी चित्रकारी में भी दिखायी देता है। एक ढाई साल के बच्चे के लिए पेंसिल से घिसट घिसट कर लिखना ही चित्रकारी है जबकी पूर्व विद्यालयी वर्षों के अंत तक बच्चे की चित्रकारी तथा रंग करने में निपुणता आ जाती है। आइये अब बच्चे में विभिन्न आयु वर्गों के दौरान उसकी चित्रकारी में आये परिवर्तन को देखें:

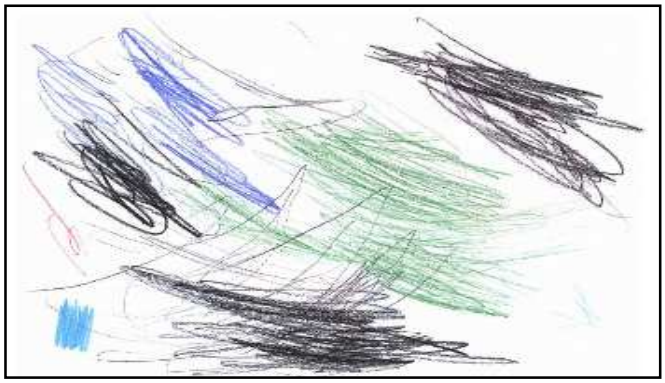

चित्र 11.3 एक 2 वर्ष के बच्चे द्वारा पेंसिल घसीटना

1. **पेंसिल या पैन घसीटना:** यह चित्रकारी की प्रथम अवस्था है जोकि लगभग $1^{1/2}$ वर्ष से शुरु हो जाती है। बचपनावस्था के दौरान बच्चे इन कार्यों को करने में बहुत आनंद लेते हैं जैसे पेन्सिल वाले रंग को हाथों को आगे पीछे करके कागज़ पर रगड़ना तथा कागज़ पर विभिन्न प्रकार के आड़े तिरछे निशान बनाना। 3 वर्ष की उम्र तक इन असमान निशानों के स्थान पर कुछ गोलाकार संरचनाएं तथा ज्यामितीय संरचनाएं आ जाती हैं।

चित्र 11.4 एक 3 वर्ष के बच्चे द्वारा बनायी गयी मानव आकृति

2. **आकृतियाँ प्रकट होना:** 3 से 4 वर्ष के मध्य बच्चा गोलाकार संरंचनाओं को रेखाओं से जोड़कर मानव आकृति देने का प्रयास करने लगता है। हालाँकि ये आकृतियाँ शरीर रचना की दृष्टि से सही नहीं होती हैं क्योंकि इनमे गर्दन तथा शरीर के अन्य अंग नहीं होते हैं।

3. **अधिक यथार्थवादी चित्रकारी:** 5 से 6 वर्ष के बच्चे की चित्रकारी अधिक यथार्थवादी होने लगती है। एक 6 वर्ष का बच्चा मानव आकृति बनाने में सही सही अनुपात का प्रयोग करता है तथा उसके बनाए हुए चित्र में सिर, धड़ तथा पैर अधिक वास्तविक अनुपात में तथा सही स्थान पर होते हैं।

लिखना

शुरुआत में बच्चा पेंसिल घिसने तथा लिखने में अंतर नहीं कर पाता है। 4 वर्ष की आयु पर बच्चा विकासात्मक रूप से लिखने के लिए तैयार हो जाता है। इस समय बच्चा पढ़ना सीख जाता है तथा शब्दों एवं अक्षरों को समझने लगता है तथा उन्हें एक रेखा में व्यवस्थित करने में सक्षम हो जाता है।

11.5 पूर्व बाल्यावस्था में शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

आनुवंशिक तथा वातावरणीय दोनों प्रकार के कारक विकास के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। आइये अब देखें कि किस प्रकार ये कारक बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करते हैं।

11.5.1 आनुवंशिक कारक

जैसा कि आप जानते हैं हम सभी अपने माता-पिता तथा पूर्वजों से प्राप्त कुछ गुणों के साथ जन्म लेते हैं जो हमारे शरीर में जीन्स द्वारा आते हैं। जीन्स बच्चे की अधिकतर शारीरिक तथा क्रियात्मक क्षमताओं का निर्धारण करते हैं जैसे कि बच्चे की लम्बाई, बच्चे का स्वरूप, मस्तिष्क का आकार या बच्चा कितनी तेज दौड़ सकता है आदि। इसके अतिरिक्त यह बच्चे की कुछ आतंरिक क्रियाओं का भी निर्धारण करते हैं जैसे हार्मोन का उत्पादन या किसी बीमारी के प्रति संवेदनशीलता आदि। तथापि अकेले जीन्स बच्चे शारीरिक या क्रियात्मक विकास का निर्धारण नहीं करते हैं। वातावरण तथा जीन्स सम्मिलित रूप से बच्चे के विकास का निर्धारण करते हैं।

11.5.2 वातावरणीय कारक

निम्नलिखित वातावरणीय कारक बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करते हैं

स्वास्थ्य देखभाल

आपने देखा होगा कि एक बच्चा जो किसी बीमारी जैसे डायरिया, एनीमिया आदि से गुजर रहा हो उसके वजन में वृद्धि रुक जाती है तथा वह एक स्वस्थ बच्चे के भांति विकसित नहीं हो पाता है। अत: हम यह जानते हैं कि यदि एक बच्चा स्वस्थ नहीं है तो यह बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रभावित करता है। छोटे बच्चे इन बीमारियों के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं क्योंकि वह अभी वृद्धि कर रहे होते हैं तथा उनकी प्रतिरक्षा प्रणाली भी अभी विकसित हो रही होती है। इस समय बच्चा अपनी स्वास्थ्य सुरक्षा तथा वातावरणीय तत्त्वों से सुरक्षा के लिए पूर्ण रूप से अपने आस पास उपस्थित वयस्कों पर निर्भर होता है। बच्चे की देखभाल करने वालों को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि बच्चा शुद्ध एवं स्वच्छ वातावरण में हो जो उसके खेलने के लिए सुरक्षित हो। इसके अलावा बच्चे के परिवार का किसी चिकित्सक से संपर्क होना चाहिए जिससे कि भविष्य में यदि बच्चे को स्वास्थ्य संबंधी कोई शिकायत हो जाए तो सहायता प्राप्त की जा सके। इसके अतिरिक्त बच्चे को बीमारियों से बचाने के लिए समय समय पर सभी आवश्यक टीके लगा लेने चाहिए जिससे बच्चे को कुछ गंभीर बीमारियों जैसे क्षय रोग, डिप्थीरिया, काली खांसी, पोलियो, खसरा, टिटनेस तथा टायफायड आदि से बचाया जा सके।

पोषण

बच्चे के स्वास्थ्य पर उसके द्वारा लिए जा रहे भोजन का सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चा सही पोषक तत्वों से युक्त भोजन सही मात्रा में नही ले रहा है तो वह कुपोषण का शिकार हो सकता है। कुपोषण दो प्रकार का होता है अल्प पोषण तथा अधिक पोषण। अल्पपोषण उस स्थिति में होता है जब बच्चा उचित मात्रा में पोषक तत्व न ले रहा हो। पोषक तत्वों की कमी से बच्चे को कई बीमारियाँ घेर लेती हैं जैसे एनीमिया, स्कर्वी, प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण, आयोडीन की कमी आदि। अत्यधिक पोषण पोषक पदार्थों की अधिक मात्रा से होता है जिसके कारण मोटापा हो सकता है जोकि कई बीमारियों जैसे हृदय रोग, उच्च रक्त चाप, मधुमेह आदि का कारण बनता है। शुरुआत वर्षों में अल्पपोषण के कारण बच्चे का मानसिक एवं तंत्रिका तंत्र प्रणाली का विकास प्रभावित होता है।

प्रोत्साहन एवं आराम

एक बच्चे का क्रियात्मक विकास तभी सही तरीके से हो सकता है जब बच्चा किसी कार्य को कर पाए। अत: एक अति संरक्षी माता-पिता जोकि हमेशा बच्चे की देखभाल करते रहते हैं तथा बच्चे को हमेशा बिस्तर पर ही रखते हैं, उनका बच्चा चलना सीखने में वक्त लगायेगा क्योंकि वह फर्श पर चलने का अभ्यास नहीं कर पा रहा होता है। बच्चे का शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहन गतिविधियों तथा खेलों के द्वारा बढ़ावा मिलता है।

इन सबके अतिरिक्त जो बच्चा पूरी नींद नहीं लेता है जितनी उसे आवश्यकता होती है (11 से 13 घंटे) वह बच्चा अन्य गतिविधियों तथा खेलों में भी उचित प्रकार से प्रतिभाग नहीं कर पाता। अत: उचित विकास के लिए पूरी नींद अत्यंत आवश्यक है। शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास दोनों साथ-साथ होते हैं। उदाहरण के लिए एक 3 वर्ष का बच्चा जो लंबे समय से अल्पपोषण का शिकार है वह अल्प भार तथा छोटे कद का रह जाता है तथा उसे कार्य को करने के लिए ऊर्जा भी नहीं प्राप्त हो पायेगी। शरीर में ऊर्जा की कमी हो जाने के कारण बच्चा खेलने में भी रुचि नहीं दिखायेगा तथा वह कई क्रियात्मक कौशल जैसे गेंद फेंकना, कैच करना, पैर से मारना आदि सीखने से वंचित रह जाएगा। इस प्रकार आपने देखा कि बच्चे के शारीरिक विकास के साथ-साथ उसका क्रियात्मक विकास भी देरी से होगा।

11.6 पूर्व बाल्यावस्था में शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को बढ़ावा देने के तरीके

आपने 11.3 भाग में यह पढ़ा कि बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को आनुवंशिक तथा वातावरणीय दोनों कारक प्रभावित करते हैं। बच्चे के विकास को प्रभावित करने वाले आनुवंशिक कारकों को नियंत्रित करना संभव नहीं है किन्तु वातावारणीय कारकों को इस प्रकार नियंत्रित किया

जा सकता है कि बच्चे का अधिकतम विकास हो सके। आइये अब कुछ उपायों के बारे में पढ़ें जिनके द्वारा हम बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को वातावरणीय कारकों की सहायता से और अधिक बढ़ावा दे सकते हैं।

- सर्वप्रथम यह सुनिश्चित कर लीजिए कि बच्चा संतुलित तथा पर्याप्त पोषक तत्व युक्त आहार ले रहा है या नहीं। पूर्वविद्यालयी बच्चा सामान्य रूप से एक दिन में 5 से 6 बार भोजन करता है।
- उसकी स्वच्छता का पूरा ध्यान रखना चाहिए जैसे उसके नाखून कटे होने चाहिए, उसके हाथ धुले हुए होने चाहिए, उसे रोज नहलाना चाहिए आदि।
- बच्चे को दिन में दो बार ब्रश कराना चाहिए।
- बच्चे को सभी टीके समय पर लगवाने चाहिए।
- बच्चे की वृद्धि की दर लगातार नोट करनी चाहिए।
- बच्चे को एक स्वच्छ, स्वस्थ तथा प्रेरणादायक वातावरण देना चाहिए।
- माता-पिता को यह बात पता होनी चाहिए कि प्रत्येक बच्चे की वृद्धि की दर अलग-अलग होती है।
- क्रियात्मक विकास को प्रेरित करने के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का चयन करना चाहिए।
- बच्चे की प्रतिदिन की सूची में घर के भीतर तथा बाहर दोनों प्रकार से खेले जाने वाले खेल होने चाहिए।
- बच्चे को पर्याप्त आराम भी मिलना चाहिए ताकि वह दिन भर सक्रिय बना रहे।

ये सभी गतिविधियां तथा बच्चे को घर से उपलब्ध होने वाला सामान एवं वातावरण बच्चे के शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को प्रभावित करता है। इसके कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न हैं :

बच्चे के शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास को प्रेरित करने वाली गतिविधियां तथा खेल सामग्री	
गतिविधियां / खेल	**खेल सामग्री**
• रेखा पर चलना: बच्चा ड्रम की थाप पर जमीन पर चाक से बनी हुई रेखा पर चल सकता है। • पुल बनाकर उसके नीचे चलना: दो बच्चे एक रस्सी को या एक छड़ी को पकड़ते हैं, अन्य बच्चे उसके नीचे एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर धीरे	आइये अब खेल के उन सामानों के सम्बन्ध में पढ़ें जोकि सूक्ष्म क्रियात्मक विकास को बढ़ावा देते हैं: • ड्रेस का ढांचा: इस प्रकार के ढांचे से बच्चा अपने कई काम खुद करना सीखता है जैसे कपड़ों के बटन लगाना, हुक

धीरे बढ़ते हैं।

- गेंद पास करना: बच्चे एक घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं तथा एक के बाद दूसरे को गेंद पास करते हैं जबकि अध्यापक कोई संगीत बजा रहे होते हैं।

- छपाई: बच्चे को विभिन्न प्रकार की छपाई की गतिविधियों जैसे हाथ से छपाई, अँगुलियों से छपाई तथा पत्तियों से छपाई आदि में सम्मिलित किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त भी बच्चे के शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को प्रेरित करने वाले कुछ खेल हो सकते हैं। आप कोई दो ऐसी ही गतिविधियों के बारे में नीचे दिए गए स्थान में लिखिए:

1)

2)

लगाना या चेन लगाना आदि।

- मुक्त खेल खेलने के लिए रेत, खेल का आटा, ब्लॉक, रंग तथा पेंट आदि का प्रयोग।
- मोतियों को धागे में पिरोना।

आइये अब उन वस्तुओं के बारे में पढ़ें जो स्थूल क्रियात्मक कौशलों के विकास में सहायक हैं:

- बड़ी मुलायम गेंद।
- झूला झूलना।
- जंगल जिम।
- बड़े टायर (जिनसे बच्चे अंदर बाहर कूद सकें)

इनके अतिरिक्त भी कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास में सहायक होती हैं। अब आप ऐसी किन्हीं दो वस्तुओं के सम्बन्ध में नीचे दिए गए स्थान में लिखिए:

1)

2)

आपने यह देखा होगा कि सामान्यतया वो गतिविधियां जो स्थूल क्रियात्मक कौशलों को बढ़ावा देती हैं घर के बाहर होती हैं जबकि जो सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों को बढ़ावा देती हैं वो गतिविधियां अधिकतर घर के अंदर होती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. नीचे उन गतिविधियों की एक सूची दी गयी है जिनसे पूर्व विद्यालयी बच्चा आनंद लेता है। आपको इस सूची में से बच्चे के स्थूल क्रियात्मक कौशलों का विकास तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशलों के विकास में सहायता करने वाली गतिविधियों को अलग-अलग करना है।

कूदना, साइकिल चलाना, लिखना, रस्सी कूदना, पेपर मोड़ना, फ़ुटबाल खेलना, मिट्टी को विभिन्न आकार देना, पेपर को फाड़ना तथा टुकड़ों को चिपकाना, झूला झूलना, नाचना।

वह गतिविधियां जो बच्चे के स्थूल क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करती हैं।	वह गतिविधियां जो बच्चे के सूक्ष्म क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करती हैं।

2. शुरुआती वर्षों में बच्चे की चित्रकारी की क्या अवस्थाएं होती हैं?

--- ---

11.7 सारांश

इस इकाई में आपने शुरुआती वर्षों में बच्चों में होने वाले शारीरिक तथा क्रियात्मक विकासों के सम्बन्ध में पढ़ा। इस समय बच्चे की वृद्धि दर बहुत तीव्र होती है किन्तु शैशवावस्था के बराबर नहीं। आपने यह भी पढ़ा कि बच्चे के विकास को आनुवंशिक तथा वातावरणीय दोनों कारक प्रभावित करते हैं। इस दौरान बच्चे शारीरिक रूप से अत्यधिक क्रियाशील होते हैं। माता-पिता का यह फर्ज है कि बच्चे को एक सुरक्षित तथा प्रोत्साहन भरा वातावरण प्रदान करें।

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **WHO:** विश्व स्वास्थ्य संगठन
- **ICDS:** एकीकृत बाल विकास योजना
- **अल्पपोषण:** वह स्थिति जब व्यक्ति उचित मात्रा में पोषक तत्व न ले रहा हो तथा आवश्यकता से कम ले रहा हो।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही या गलत बताइये
   a. गलत
   b. सही
   c. सही
   d. सही
2. इस उत्तर के लिए इकाई का 11.2 भाग देखें।
3. इस उत्तर के लिए इकाई का 11.4.2 भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1.

वह गतिविधियां जो बच्चे के स्थूल क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करती हैं	वह गतिविधियां जो बच्चे के सूक्ष्म क्रियात्मक विकास को प्रोत्साहित करती हैं
कूदना साइकिल चलाना रस्सी कूदना फ़ुटबाल खेलना झूला झूलना नाचना	लिखना पेपर मोड़ना मिट्टी को विभिन्न आकार देना पेपर को फाड़ना तथा टुकड़ों को चिपकाना

2. इस उत्तर के लिए इकाई का 11.3.2 भाग देखें।

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Berk, L.E. (2008). Exploring lifespan development. Pearson Education, Inc.: Boston.
2. Kaul V. (2010). Early Childhood Education Programme. NCERT: New Delhi
3. Roland, C. (2006) Young in Art: a developmental look at child art. Retrieved on 25th May from http://www.artjunction.org/young_in_art.pdf
4. Santrock, J.W. (2011). Child Development (13th ed.). McGraw-Hill: New York.
5. Shaffer, D. R., & Kipp, K. (2014). Developmental psychology: Childhood and adolescence (9th ed.). Cengage Learning: USA

चित्र संदर्भ:

चित्र 11.1: Megha Shirodkar

चित्र 11.2: http://www.webzubra.com/pleasant-kids-pretend-play-toys/

चित्र 11.3 तथा 11.4: http://www.beginningsnursery.org/marks.html

इकाई 12: संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 पूर्व बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास
    12.3.1 पूर्व बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ
12.4 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत: पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था
    12.4.1 प्रतीकात्मक सोच
    12.4.2 कल्पनाएं और जादुई सोच
    12.4.3 आत्मकेन्द्रित सोच
    12.4.4 तर्क की शुरुआत
    12.4.5 पूर्वसंक्रियात्मक बालक की संज्ञानात्मक क्रियाएं
12.5 वाइगोत्स्की का सिद्धांत: बालक के संज्ञान पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव
    12.5.1 निजी भाषा
    12.5.2 समीपस्थ दूरी का क्षेत्र
12.6 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने के तरीके
12.7 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास
    12.7.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा के प्रमुख सीमा चिह्न
    12.7.2 शब्द भण्डार
    12.7.3 व्याकरण
    12.7.4 वार्तालाप कौशल
12.8 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके
12.9 सारांश
12.10 पारिभाषिक शब्दावली
12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप पूर्व बाल्यावस्था में होने वाले संज्ञानात्मक व भाषा विकास का अध्ययन करेंगे। 2-6 वर्ष की आयु में इन दोनों ही क्षेत्रों में महत्वपूर्ण विकास होता है क्योंकि बच्चे इस आयु में बहुत तेजी से सीखते हैं। यह विकास आनुवंशिक कारकों के साथ-साथ पर्यावरणीय कारकों से भी प्रभावित होता है। प्रारम्भिक वर्षों में बच्चे प्रारम्भिक विद्यालय, प्राइमरी शिक्षा केन्द्र व आंगनबाड़ी जाना भी शुरु करते हैं। यह बच्चों में भाषा व संज्ञानात्मक कौशल के विकास को प्रभावित करता है। संज्ञानात्मक व भाषा विकास एक दूसरे पर पूर्णत: निर्भर न होकर कुछ सीमा तक एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। बच्चों का संज्ञानात्मक विकास उनकी आसपास की भाषा के द्वारा भी प्रभावित होता है। भाषा द्वारा बालक के संज्ञानात्मक विकास में वृद्धि होती है जिसके बारे में अधिक जानकारी आप इस इकाई में दिए गए वाइगोत्स्की के सिद्धान्त के अध्ययन द्वारा ले पाएंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप;

- पूर्व बाल्यावस्था में होने वाले संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास के बारे में जानेंगे;
- विभिन्न कारकों जैसे सीखने का अच्छा वातावरण, खेल क्रिया-कलाप तथा खेल सामग्रियों द्वारा संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास को प्रोत्साहित करने वाले तरीकों से परिचित होंगे;
- पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत की पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था से अवगत होंगे; तथा
- वाइगोत्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के बारे में जानेंगे।

12.3 पूर्व बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास

पूर्व बाल्यावस्था में बालक कई नए संज्ञानात्मक कौशल में सक्षम हो जाता है। इस अवधि की शुरुआत में बच्चा ऐसे खेल में प्रतिभाग करता है जिसमें वह वास्तविक रूप से विश्वास करने लगता है तथा इस प्रकार के खेल उसकी प्रतीकात्मक रूप से सोचने की क्षमता विकसित करते हैं। प्रतीकात्मक सोच का अर्थ है कि बच्चा अपने मस्तिष्क में उत्पन्न शब्दों व चित्रों का उपयोग कर अपने आसपास के वातावरण का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है। इसका अर्थ है कि बालक ने यह समझना आरंभ कर दिया है कि लिखित शब्दों व चित्रों का भी अर्थ होता है। इस आयु में अधिक परिष्कृत संज्ञानात्मक व भाषा कौशल बच्चे को प्रारम्भिक शिक्षा कौशल जैसे पढ़ने से सम्बन्धित कौशल, लेखन व संख्यात्मक कार्यों को करने हेतु तैयार करता है।

प्रतीकात्मक सोच विकसित होने के कारण बच्चे में संज्ञानात्मक कौशल जैसे मिलान, वस्तुओं में आपसी सम्बन्धों की पहचान, वर्गीकरण आदि भी विकसित होते हैं। इसके अलावा बच्चे इस आयु में कल्पना कर सकते हैं, संख्या, रंग, समय, स्थान की परिकल्पना कर सकते हैं व अपनी प्रारम्भिक तर्क शक्ति विकसित कर लेते हैं। इस उम्र के बच्चों की ध्यान अवधि नवजात शिशु की अपेक्षा बढ़ जाती है परन्तु यह ज्यादा लम्बी नहीं होती। इस उम्र के बच्चे जल्दी विचलित हो सकते हैं इसलिए इनके सीखने की गतिविधियों की अवधि छोटी होनी चाहिए। उदाहरण स्वरूप 3-4 वर्ष के बच्चों को 15-20 मिनट से ज्यादा अवधि की गतिविधियों में संलग्न नहीं करना चाहिए। पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की स्मृति शक्ति भी बढ़ जाती है। बच्चा अपने आस पास के चीजों की बहुत अच्छे से पहचान कर लेता है परन्तु उनकी याद रखने की क्षमता बड़े बच्चों की तरह कुशल नहीं होती है।

12.3.1 पूर्व बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ

पूर्व बाल्यावस्था की कुछ संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ नीचे तालिका में दी गई हैं:

आयु	संज्ञानात्मक उपलब्धि
2-4 वर्ष	• बच्चे अब प्रतीकात्मक गतिविधियों में अधिक सम्मिलित होते हैं, जैसे भाषा, विश्वास करने वाले खेल। • बच्चे एक समय में दिखाई गई 3-4 वस्तुओं का निरीक्षण करने तथा उन्हें याद रखने में सक्षम हों। • बच्चे को रंग, आकार आदि किसी भी एक पहलू पर वस्तुओं को वर्गीकृत करने में सक्षम होना चाहिए। • प्रारम्भिक रंगों के नाम व पहचान करने में सक्षम होना चाहिए। • उन्हें आकार के अनुरूप वस्तुओं का मिलान करने एवं उन्हें विभाजित करने में सक्षम होना चाहिए। • दैनिक कार्यों के सन्दर्भ में दिन एवं रात के समय की पहचान होनी चाहिए।
4-6 वर्ष	• प्रतीकात्मक सोच से सम्बन्धित परिष्कृत गतिविधियां। • एक समय में दिखाई गई 6-7 वस्तुओं का निरीक्षण करने तथा उन्हें याद रखने में सक्षम होना चाहिए। • 2-3 पहलुओं जैसे रंग, आकार आदि के आधार पर वस्तुओं को विभाजित करने में सक्षम होना चाहिए। • एक ही रंग के अलग-अलग शेड्स की संकल्पना की समझ होनी चाहिए। • बच्चों को 4-5 वस्तुओं को पृथक कर उन्हें आकार के क्रम में डालने में सक्षम होना चाहिए।

	• उन्हें विभिन्न महीनों के नाम पता होना चाहिए। • 10 तक गिनती करने में सक्षम होना चाहिए।

इन उपलब्धियों के बारे में अगले भागों में दिए गए पियाजे व वाइगोत्स्की के सिद्धान्तों में आप विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे। पियाजे व वाइगोत्स्की के द्वारा दिए गए सिद्धान्त बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के बारे में आपकी जानकारी को समृद्ध करेंगे। आइए उन सिद्धांतो के बारे में जानें जो बालक के प्रारम्भिक वर्षों के बारे में हमें जानकारी देते हैं।

12.4 पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत:पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था

पूर्व के भागों को पढ़ने से आपको ज्ञात हुआ होगा कि पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत द्वारा हमें बाल्यकाल की विभिन्न अवस्थाओं में संज्ञानात्मक विकास के बारे में जानकारी मिलती है। आपने पूर्व में संवेदी-पेशीय अवस्था के बारे में पढ़ा जो शैशवावस्था (2 वर्ष की अवधि तक) से मिलता है। संवेदी-पेशीय अवस्था के पश्चात् पियाजे के सिद्धांत में संज्ञानात्मक विकास की पूर्वसंज्ञानात्मक अवस्था सम्मिलित है जो 2 वर्ष से प्रारंभ होकर 6-7 वर्ष तक रहती है।

आइए इस सिद्धान्त के विभिन्न गुणों के बारे में जानें।

12.4.1 प्रतीकात्मक सोच

एक व्यस्क के रूप में जब आप एक पेड़ के बारे में पढ़ते हैं या किसी पेड़ का चित्र देखते हैं तो आप जानते हैं कि यह एक वास्तविक पेड़ का प्रतिनिधित्व कर रहा है। वास्तविक दुनिया के आधार पर कुछ प्रतीकों (लिखित शब्द या चित्र) की समझ को प्रतीकात्मक विचार कहते हैं। सोचने की यह क्षमता जो संवेदी-पेशीय अवस्था के अंत से शुरु होती है, पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था के दौरान परिष्कृत हो जाती है। इसके अलावा पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था का बच्चा मन में वस्तुओं, चित्रों एवं घटनाओं का मानसिक चित्रण करने में तब भी सक्षम होता है जब यह वस्तुएं उसके सामने नहीं होती हैं। एक 6 माह के बच्चे के विपरीत एक 3 वर्ष का बालक एक पेड़ के सामने न होने पर भी उसकी कल्पना कर सकता है। जैसा कि आपने खण्ड 12.3 में पढ़ा यह विकास बच्चों को कई और कौशल सिखाने में भी सक्षम होता है।

12.4.2 कल्पनाएं और जादुई सोच

छोटे बच्चों के साथ बातचीत करने में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी सोच व्यस्कों से भिन्न होती है। कभी-कभी यह प्रतीत होता है कि छोटे पूर्व विद्यालयी बच्चे अपनी जादुई दुनिया में रहते हैं। जैसे वे कह सकते हैं कि "चन्द्रमा आकाश में रुई की एक गेंद जैसा है" या "अगर मैं पापा से तेज

कार चलाऊँ तो ही मैं कार में बैठ सकता हूँ" या "पेड़ चिड़ियाओं को खा लेते हैं"। इसके साथ ही उनकी चित्रकला भी अमूर्त तथा वास्तविक जीवन से भिन्न होती है। उनके चित्रों में पेड़ नीले व आकाश पीले रंग का हो सकता है। व्यस्कों को यह चीजें मूर्खतापूर्ण, अजीब या रचनात्मक लग सकती हैं परन्तु बच्चों में यह कल्पनाओं और जटिल सोच की शुरुआत होती है।

कई बार बच्चे बनावटी या झूठे कृत्रिम खेल खेलते हैं। यह बालक में कल्पनाओं के विकास को दर्शाता है जो साधारणतया बचपनावस्था में विकसित होता है। जैसे बच्चों का बनावटी फोन पर बात करना। कई बार आप बच्चों को खेल के समय उनके माता-पिता, सगे-संबंधियों, आसपास के लोगों या टेलीविजन के कलाकारों की भाँति बातें करते हुए देख सकते हैं। पियाजे का मानना है कि इस प्रकार के खेलों के द्वारा बालक अपने नए मानसिक कौशल का अभ्यास करता है।

बच्चों में कल्पना के विकास को हम उस समय भी देख सकते हैं जब वे किसी परिस्थिति का वर्णन करते हैं या कहानियाँ सुनाते हैं। कई बार बच्चे ऐसी घटनाएँ जो वास्तविक जीवन में नहीं घटी होती हैं, उनका भी वर्णन ऐसे करते हैं जैसे वो वास्तव में घटी हों। हालांकि बच्चे जो परिस्थिति बताते हैं वो घटित नहीं होती हैं परन्तु यह वास्तव में झूठ नहीं होता। यह बच्चों में परिकल्पना करने का अभ्यास है। जैसे किसी चिड़ियाघर में घूमने के पश्चात् बालक जानवरों से संबंधित काल्पनिक कहानियाँ बना सकता है। कई बार आप यह देखेंगे कि बच्चा अपने एक 'काल्पनिक दोस्त' से बातें करता है जो वास्तव में नहीं होता है। यह केवल बच्चे की परिकल्पना का उत्पाद होता है। यह दोस्त मनुष्य या जानवर कोई भी हो सकता है और प्रारम्भिक वर्षों के दौरान बच्चों को असली लग सकता है। हालांकि आयु वृद्धि के साथ उसका यह काल्पनिक दोस्त गायब हो जाता है।

12.4.3 आत्मकेन्द्रित सोच

तीन साल की प्रीति अपने दोस्त के साथ खेल रही होती है कि तभी बारिश शुरु हो जाती है। प्रीति आसमान की तरफ देखती है और बोलती है कि "आसमान रो रहा है क्योंकि सूरज उसपे गुस्सा है"। इस उदाहरण में प्रीति का मानना था कि सूरज और आकाश मनुष्यों की तरह रोते हैं और गुस्सा करते हैं। ऐसी घटना जिसमें बच्चे मानवीय गुणों को निर्जीव वस्तुओं के साथ जोड़ते हैं, उसे आत्मवाद (Animism) कहा जाता है। शायद आपने देखा होगा कि कैसे एक बच्चा अपनी गुड़िया को एक सजीव बच्चे की तरह खिलाता है, नहलाता है। इस उम्र के बच्चे मानते हैं कि निर्जीव वस्तुओं में भी सजीव वस्तुओं के गुण होते हैं। पियाजे ने इसे आत्मकेन्द्रित सोच कहा है। आत्मकेन्द्रितता स्वयं की सोच व दूसरे व्यक्ति की सोच में अन्तर ना कर पाने की असक्षमता है। अर्थात इस उदाहरण में चूँकि प्रीति में सजीव गुण जैसे रोना, गुस्सा आदि उपस्थित हैं तो उसका मानना है कि निर्जीव वस्तुओं में भी ये गुण विद्यमान होंगे।

कई बार आपने यह भी गौर किया होगा कि बच्चे खेलते समय स्वयं से बातें भी करते हैं। पियाजे ने पूर्वविद्यालयी बच्चों में इस प्रकार के भाषा व्यवहार को आत्मकेंद्रित भाषा की संज्ञा दी है। उनका

मानना था कि इस प्रकार की भाषा बच्चों में आत्मकेंद्रित सोच का प्रतिबिम्ब है क्योंकि इसमें बच्चे किसी और के साथ प्रभावी रूप से संवाद स्थापित करने के बजाय स्वयं से बातें करते हैं। इस तरह की भाषा को सामान्यत: "निजी भाषा" के रूप में जाना जाता है जिसके बारे में आप विस्तृत रूप से भाग 12.5.1 में पढ़ेंगे।

बच्चे की पूर्वविद्यालयी अवस्था के दौरान विकसित आत्मकेंद्रित सोच पियाजे के 'तीन पहाड़ी के प्रयोग' में भी देखी जाती है। इस प्रयोग में एक बच्चे को तीन पहाड़ियों वाला माँड़ल दिखाया गया जिसके तीनों पहाड़ सभी दिशाओं से अलग-अलग रंगों एवं आकार के थे। बच्चे को माँड़ल के एक तरफ तथा एक गुड़िया को उसकी विपरीत दिशा में बैठाया गया। उसके बाद बच्चे को माँड़ल के सभी दिशाओं से लिए गए चित्र दिखाए गए। फिर बच्चे से उस चित्र को इंगित करने को कहा गया जो गुड़िया को दिख रहा है। पूर्वसंक्रियात्मक बालक गुड़िया के परिप्रेक्ष्य से लिए गए चित्र को इंगित करने में असमर्थ होता है। परन्तु वह अपने स्थान से चित्र को पहचान सकता है। इस तीन पहाड़ी के प्रयोग द्वारा पियाजे ने यह सिद्ध किया कि पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था में बालक किसी दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने में असमर्थ होता है।

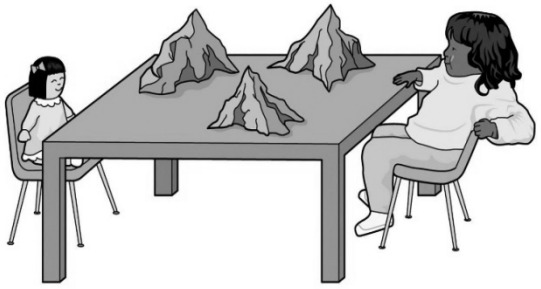

चित्र 12.1: पियाजे का का तीन पहाड़ी प्रयोग

12.4.4 तर्क की शुरुआत

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में अल्पविकसित तार्किक कौशल की शुरुआत हो जाती है। इस आयु में बच्चे "क्यों" प्रश्न पूछना पसंद करते हैं। यह जिज्ञासा बच्चों की तर्क की क्षमता के प्रति रुचि को दर्शाती है। हालांकि तर्क करने की क्षमता इन वर्षों में अधिक परिष्कृत नहीं होती है। कई बार बच्चे किन्हीं दो वस्तुओं में सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्ठा करते हैं जो वास्तव में आपस में सम्बन्धित नहीं होते। जैसे एक पूर्वसंक्रियात्मक बालक कह सकता है कि "सूरज इसलिए उगा है क्योंकि मुझे विद्यालय जाना है"।

12.4.5 पूर्वसंक्रियात्मक बालक की संज्ञानात्मक सीमाएँ

इकाई के पूर्व के खण्डों में चलते हैं तथा विचार करते हैं कि इस अवस्था को पियाजे ने पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था क्यों कहा है? इसे समझने के लिए हमें 'संचालन' शब्द का अर्थ समझना

होगा। पियाजे के अनुसार, संचालन के अंतर्गत वह मानसिक क्रियाएँ आती हैं जो तार्किक नियमों का अनुसरण कर बच्चे को किसी भी कार्य को शारीरिक रूप से करने से पूर्व मानसिक रूप से करने हेतु अनुमति देती हैं। इसके अंतर्गत संरक्षण, क्रमबद्धता तथा वर्गीकरण जैसी मानसिक क्रियाएँ आती हैं। पियाजे ने प्रारम्भिक बाल्यावस्था को पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था इसलिए कहा है क्योंकि इन बच्चों के साथ प्रयोगों तथा कुछ संज्ञानात्मक क्रियाओं के पश्चात् उन्होंने यह जाना कि ये बच्चे अभी भी इन कार्यों को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। हालांकि पियाजे के अनुसार वे इन क्रियाओं को संज्ञानात्मक विकास की अगली अवस्था, स्थूल संक्रियात्मक अवस्था में कर सकते हैं।

आइए पियाजे द्वारा आयोजित कुछ क्रियाओं के विषय में जानें जो इस आयु में बच्चों की मानसिक स्थिति का आकलन करने में मदद करती हैं।

संरक्षण: संरक्षण का अर्थ यह समझने की क्षमता से है कि किसी वस्तु की बाहरी दिखावट बदल देने से उस वस्तु के मूल गुणों में बदलाव नहीं होता है। जैसे एक वयस्क के तौर पर आप यह समझ सकते हैं कि सेब के कटे हुए दो हिस्से तथा पूरा सेब एक ही बात है। एक छोटे पूर्व विद्यालयी बालक के लिए इस अवधारणा को समझना कठिन होता है। वह यह समझता है कि दो हिस्सों में कटा हुआ सेब एक पूरे सेब की तुलना में कम है। पियाजे ने बच्चों की संरक्षण को ग्रहण करने की क्षमता को समझने हेतु कई प्रयोग किए। संरक्षण क्रियाओं में बच्चे को पहली प्रस्तुति में कुछ दिखाया जाता था। दूसरी प्रस्तुति में बच्चों के सामने ही इनमें बदलाव किए जाते थे। नीचे दी गई तालिका यह दिखाती है कि पूर्वविद्यालयी बालकों ने इन प्रयोगों की किस तरह की प्रतिक्रियाएँ दीं।

संरक्षण कार्य	प्रथम प्रस्तुति	दूसरी प्रस्तुति में किए गए बदलाव (बच्चों के समक्ष किए गए)	द्वितीय प्रस्तुति
अंकों का संरक्षण	क्या प्रत्येक पंक्ति में सिक्कों की संख्या समान है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: हाँ	दूसरी पंक्ति को बढ़ा दिया गया।	क्या प्रत्येक पंक्ति में सिक्कों की संख्या समान है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: नहीं
द्रव्यमान का संरक्षण	क्या प्रत्येक गोले में समान मात्रा में आटा है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: हाँ	एक गोले को चपटा कर सिलेण्डर के आकार में बदल दिया गया।	क्या प्रत्येक गोले में समान मात्रा में आटा है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: नहीं

लम्बाई का संरक्षण	क्या इन दोनों छड़ियों की लम्बाई समान है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: हाँ	एक छड़ी को दाईं तरफ खिसका दिया गया।	क्या इन दोनों छड़ियों की लम्बाई समान है? पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: नहीं
द्रव्य (तरल) का संरक्षण	क्या दोनों गिलासों में समान मात्रा में पानी भरा है? 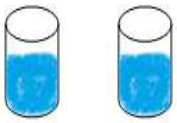 पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: हाँ	एक गिलास के पानी को चौड़े बर्तन में डाल दिया गया।	क्या दोनों गिलासों में समान मात्रा में पानी भरा है? 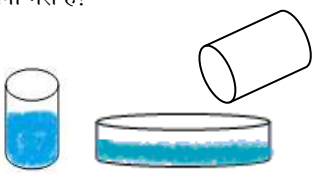 पूर्वविद्यालयी बालक का उत्तर: नहीं

बच्चे के सामने ही बदलाव किए जाने पर भी वह, विशेषकर छोटी आयु का पूर्वविद्यालयी बालक, संरक्षण के सिद्धांत को समझने में असमर्थ रहता है। इसका एक कारण यह भी है कि बच्चा इन दोनों प्रस्तुतियों को आपस में सम्बन्धित नहीं मानता तथा बदलाव की तरफ ध्यान नहीं देता। दूसरा कारण यह है कि छोटे बच्चे वस्तुओं की अवधारणात्मक उपस्थिति से विचलित हो जाते हैं। तीसरा कारण उनके सोचने का एक अन्य पहलू है जिसे केन्द्रीयकरण कहते हैं। इसमें बच्चा सामने प्रस्तुत की गई वस्तु का केवल एक ही पहलू देखता है तथा अन्य पहलुओं को नकार देता है। जैसे अंकों के संरक्षण कार्य में बच्चे ने सिर्फ सिक्कों द्वारा ली गई जगह पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, उनके बीच जगह में अंतर तथा सिक्कों की वास्तविक संख्या पर नहीं।

पूर्वविद्यालयी अवस्था के छोटे बालक अपनी सोच को उलट पाने में सक्षम नहीं होते जिसके कारण वे संरक्षण के कार्यों को नहीं कर पाते हैं। इस क्षमता द्वारा कोई भी व्यक्ति पूर्व में हुई घटनाओं या परिस्थितियों के चरणों को मानसिक रूप से दोहरा पाने में सक्षम होता है। जैसे द्रव्य के संरक्षण के कार्य में बच्चा इस सोच को मानसिक रूप से दोहरा नहीं पाता कि दूसरे आकार के गिलास में पानी भर देने से पानी की मात्रा में कमी नहीं हुई है।

आप देखेंगे कि बच्चे भिन्न-भिन्न संरक्षण के कार्यों को अलग तरीके से कर सकते हैं। जैसे हो सकता है कि बालक वस्तु के द्रव्यमान का संरक्षण भली-भाँति कर पाए परन्तु तरल वस्तु का संरक्षण नहीं। हालांकि बाद में कुछ शोधकर्ताओं ने पियाजे के इस सिद्धांत को नकारा तथा यह बताया कि 4 वर्ष का छोटा बालक भी उचित प्रशिक्षण द्वारा संरक्षण के सिद्धांत को समझ सकता है।

वर्गीकरण तथा क्रमबद्धता: पियाजे ने प्रयोगों द्वारा बच्चों की समान गुणों के आधार पर वस्तुओं को वर्गीकृत करने की क्षमता का भी अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि 2-3 वर्ष का बालक वस्तुओं

के समूहीकरण की अवधारणा को नहीं समझ पाता जबकि बड़े पूर्वविद्यालयी बालक वस्तुओं का बहुत सरल वर्गीकरण कर लेते हैं। जैसे एक रंग की बॉलों को एक समूह में रखना।

क्रमबद्धता वस्तुओं को आकार के घटते या बढ़ते क्रम में रखने की क्षमता है। पियाजे का मानना था कि पूर्वविद्यालयी बालक क्रमबद्धता के कार्यों को करने में सक्षम नहीं होते हैं। जैसे बच्चे का 10 अलग-अलग लम्बाई की लकड़ियों को उनके आकार के क्रम में न रख पाना। हालांकि बाद में हुए शोधों के आधार पर यह माना गया ऐसा जरूरी नहीं है कि यह हर बार सही हो।

क्या पूर्वविद्यालयी बालक की सोच सीमित होती है?

पूर्व की जानकारियों द्वारा आप यह समझ गए होंगे कि पियाजे के अनुसार पूर्वविद्यालयी बालक की सोच सीमित होती है। परन्तु हाल के शोधों ने पियाजे के सिद्धांत को चुनौती दी और कई पहलुओं को गलत भी साबित किया। यह पाया गया कि यदि पियाजे के कार्यों को थोड़ा परिवर्तित कर दिया जाए तथा कम जटिल बना दिया जाए तो यह सिद्ध हो जाता है कि पूर्वविद्यालयी बालकों की सोच सीमित नहीं होती है। उदाहरण के लिए क्रमबद्धता के कार्य में बालक 10 छड़ियों को उनकी लम्बाई के क्रम में रख पाने में असमर्थ होता है परन्तु यदि छड़ियों की संख्या कम कर दी जाए तो वह इस कार्य को आसानी से कर पाता है। इसी प्रकार तीन पहाड़ी वाले तथा संरक्षण के प्रयोगों में थोड़ा बदलाव करने पर पियाजे का यह विश्वास गलत साबित होता है कि 6-7 वर्ष तक बालक कई संज्ञानात्मक कार्यों को कर पाने में असमर्थ होते हैं जिन्हें वह स्थूल संक्रियात्मक अवस्था में कर पाते हैं। जबकि संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास धीरे-धीरे होता है जिसके अंतर्गत बालक कुछ अवधारणाओं को पूर्वविद्यालयी अवस्था के प्रारम्भिक वर्षों में प्राप्त करते हैं जो आयु वृद्धि के साथ और अधिक परिष्कृत हो जाती हैं।

पूर्वविद्यालयी बालक उतने आत्मकेन्द्रित नहीं होते हैं जितना पियाजे द्वारा बताया गया है। कई स्थितियों में वे अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोणों को समझ सकते हैं। यह भी पाया गया कि हालांकि इस आयु में उनकी सोच जादुई होती है परन्तु ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ पर वे वास्तविक तथा काल्पनिक वस्तुओं में स्पष्ट रूप से अंतर कर सकते हैं।

हालांकि पियाजे की पूर्वविद्यालयी बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के बारे में समझ शत प्रतिशत सही नहीं थी परन्तु उन्होंने इस आयु वर्ग के बारे में हमारी जानकारी में वृद्धि की। वह उन प्रमुख विचारकों में थे जिनके सिद्धांतों एवं तरीकों को कई दशकों पश्चात आज भी मानव विकास के विद्यार्थियों द्वारा बच्चों के अध्ययनों में प्रयोग किया जाता है। उनके सिद्धांत शैक्षणिक कार्यक्रमों में बच्चों के दृष्टिकोण को केन्द्रित करते हैं। यह परिप्रेक्ष्य पाठ्यक्रमों, पुस्तकों, खेल सामग्री आदि के निर्माण के दौरान बच्चे की आयु तथा क्षमताओं का ध्यान रखने में सहायक होता है।

अगले भाग में हम वाइगोत्स्की के सिद्धांत द्वारा इस आयु में संज्ञानात्मक विकास को समझेंगे।

12.5 वाइगोत्स्की का सिद्धांत: बालक के संज्ञान पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

वाइगोत्स्की एक रूसी मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् थे जिन्होंने देखा कि बालक के सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का उसके सीखने की क्षमता तथा विकास में महत्वपूर्ण योगदान होता है। वाइगोत्स्की का मानना था कि सामाजिक संपर्क उन बच्चों में सोच विकसित करने के लिए उपकरण प्रदान करते हैं जो सक्रिय शिक्षार्थी होते हैं। उन्होंने यह भी महसूस किया कि भाषा तथा बच्चों की वाणी उनके संज्ञानात्मक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वाइगोत्स्की ने भी अपने निष्कर्षों के लिए पियाजे की भाँति बच्चों की प्रतिक्रियाओं पर ध्यान दिया। जैसा कि आपने पूर्व में जाना कि कैसे छोटे बच्चे खेलते समय अक्सर स्वयं से ही बातें करते हैं। पियाजे ने बच्चे के इस तरह के भाषा व्यवहार को उसकी आत्मकेन्द्रित सोच माना था। हालांकि वाइगोत्स्की बच्चों में भाषा व्यवहार के पियाजे के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं थे।

12.5.1 निजी भाषा

वाइगोत्स्की का मानना है कि यदि बच्चे कोई गतिविधि करने या खेलते समय अपने विचारों को ऊँचे स्वर में बोलते हैं तो यह उनका अपने व्यवहार को निर्देशित करने का एक तरीका होता है। उन्होंने पूर्वविद्यालयी बच्चों के इस तरह के उच्चारणों को निजी भाषा की संज्ञा दी है। निजी भाषा संचार का माध्यम नहीं है बल्कि बच्चों के मन में चलने वाले विचारों की अभिव्यक्ति है। वाइगोत्स्की का मानना है कि निजी भाषा कई अन्य उच्च संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे ध्यान, स्मरण, योजना, समस्या का हल, आत्म-प्रतिबिम्ब की शुरुआत है। हाल के शोधकर्ताओं ने पियाजे की अपेक्षा वाइगोत्स्की के निजी भाषा के सिद्धांत का समर्थन किया है। शोधों द्वारा यह पाया गया है कि बच्चे निजी भाषा का प्रयोग तब ज्यादा करते हैं जब वह अधिक मुश्किल कार्य कर रहे होते हैं। जो बच्चे निजी भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं वे प्रदर्शन कार्यों में अधिक सफल होते हैं। इसलिए निजी भाषा बच्चे के विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभाती है।

12.5.2 समीपस्थ दूरी का क्षेत्र

वाइगोत्स्की ने इस बात पर महत्व दिया कि सही मार्गदर्शन होने पर "बच्चा क्या करने में सक्षम" है। उन्होंने समीपस्थ विकास के क्षेत्र का विचार दिया। समीपस्थ विकास के अंतर्गत वह कार्य आते हैं जो बच्चा स्वयं नहीं कर पाता परन्तु एक कुशल व्यस्क या साथी की सहायता से कार्य किया जा सकता है। शिक्षा में यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि यह बताता है कि शिक्षक अथवा एक साथी बालक भी संज्ञानात्मक विकास एवं अधिगम क्षमता को बढ़ाने में किस प्रकार मदद कर सकता है। यह सहायता मौखिक प्रोत्साहन, प्रदर्शन और प्रत्यक्ष अनुदेश के रूप में हो सकती है।

अन्य कई सिद्धान्तों की भाँति वाइगोत्स्की के सिद्धान्त की भी कुछ आलोचनाएँ हैं। कुछ लोग मानते हैं कि विचारों के विकास में भाषा की भूमिका आलोचनात्मक होती है। कुछ का मानना है कि यह सिद्धान्त संज्ञानात्मक विकास के कई पहलुओं की पूर्ण रूप से व्याख्या नहीं करता। इसके बावजूद वाइगोत्स्की के सिद्धान्त की व्यापक रूप से सराहना की जाती है क्योंकि इसका बच्चों की शिक्षा के तरीकों पर सीधा असर होता है।

12.6 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने के तरीके

बच्चे अपने आसपास के वातावरण में घुलने-मिलने तथा बातचीत से सीखते हैं। इसलिए या आवश्यक है कि बच्चों को सीखने हेतु अच्छा वातावरण मिले। बालक हेतु कोई भी वातावरण सीखने का वातावरण हो सकता है। यह वातावरण घर, बच्चों का केंद्र, धार्मिक पूजा स्थल या डॉक्टर का कार्यालय भी हो सकता है जहाँ भी बच्चे को सीखने के अवसर मिल जाए।

बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के लिए निम्न बातें एक अच्छा सीखने के वातावरण का निर्माण करने में मदद करती हैं:

- एक अच्छा सीखने का वातावरण सुरक्षित होना चाहिए। किसी भी दुर्घटना या चोट से बच्चे को सुरक्षित रखना चाहिए।
- इसके साथ यह वातावरण विशिष्ट आयु हेतु कई उचित उद्दीपक सामग्रियाँ तथा गतिविधियाँ उपलब्ध कराने वाला होना चाहिए जो बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में मदद करे।
- बच्चे के आसपास के लोग जैसे माता-पिता, शिक्षक तथा साथी बच्चे भी संज्ञानात्मक विकास हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करने में मदद कर सकते हैं।
- कई बार किसी नई वस्तु की खोज करते हुए बालकों को कई नई बातों का ज्ञान होता है। बच्चे का ध्यान रखने वाले व्यक्ति को उससे बात कर के तथा सवाल पूछ के उस वातावरण को सीखने के वातावरण में परिवर्तित करने का प्रयास करना चाहिए। बच्चे को सवाल पूछने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- बच्चों को जल्दी सीखने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। उन्हें अपनी गति से सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि हर बच्चे के सीखने की एक गति होती है, इसलिए बच्चों की आलोचना तथा आपस में तुलना नहीं करनी चाहिए।
- बच्चों के संज्ञानात्मक कौशल को विकसित करने के लिए खेल एक बहुत महत्वपूर्ण माध्यम है। संवेदी उत्तेजनाओं, समस्या को सुलझाने और तर्क, वर्गीकरण, मिलान, संरक्षण, स्मृति, अंकों का कौशल और समय तथा स्थान की अवधारणाओं को बढ़ावा देने वाले खेल बालक के संज्ञानात्मक विकास में सहायता करते हैं।

- आमतौर पर 3-5 वर्ष की आयु में बच्चे पूर्व-स्कूल, आंगनबाड़ी, प्रारम्भिक शिक्षा केंद्रों में जाते हैं जहाँ पर सीखने के कई अवसर प्रदान किए जाते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा केंद्र उन औपचारिक शिक्षा केंद्रों से भिन्न होने चाहिए जहाँ पर बड़े बच्चे जाते हैं। प्रारम्भिक शिक्षा केंद्रों में बच्चे खेल, आसपास के वातावरण तथा लोगों से बातचीत द्वारा सीखते हैं।

अब हम कुछ खेल सामग्रियों तथा गतिविधियों पर दृष्टि डालेंगे जो बालकों के संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित करती हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेल सामग्री चाहे प्रारम्भिक शिक्षा केंद्र में हो या घर पर, आसानी से बच्चे की पहुँच में होनी चाहिए।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित करने वाली गतिविधियाँ तथा खेल सामग्री

क्रियाएँ/खेल	खेल सामग्री
• **स्मृति खेल:** गोलाई में बैठे बच्चों को 6-7 वस्तुएँ दिखाई जाती हैं। कुछ देर बच्चों को ध्यानपूर्वक यह वस्तुएँ देखने दें और फिर इन्हें कपड़े से ढ़क दें। फिर बिना कपड़ा हटाए बच्चों को इन वस्तुओं को याद करने को बोलें। • **खजाने की खोज:** बच्चे को किसी फल या सब्जी का चित्र दिखाएँ। फिर कमरे में दूसरी जगह पर रखा उसी चित्र के जैसा दूसरा चित्र ढूंढ़ने को बोलें। • **आकार में कूदना:** शिक्षक चॉक की मदद से बड़े-बड़े आकार जैसे गोला, वर्ग या त्रिभुज बना सकता है। फिर शिक्षक आकार का नाम बोलता है। बच्चे उस आकार को पहचान कर उसके अंदर कूदते हैं।	• **वर्गीकरण कार्ड:** छोटे कार्डों में 2-3 रंगों का कोई भी एक आकार बनाएँ। बच्चे एक जैसे रंग के कार्डों को वर्गीकृत कर सकते हैं। बच्चों के लिए खेल सामग्री को और कठिन बनाने हेतु आप भिन्न-भिन्न आकारों के कार्ड बना सकते हैं। • **सरल पहेली:** गत्ते के कार्ड पर किसी जानवर का रंगीन चित्र बनाएँ। छोटे बच्चों के लिए आसान पहेली बनाने हेतु इस गत्ते को दो भागों में काट लें। • **संख्या कार्ड्स तथा गोलियाँ:** जैसा कि नीचे दिया गया है संख्या कार्डों के साथ समान संख्या की गोलियाँ भी जुड़ी हुई हैं। 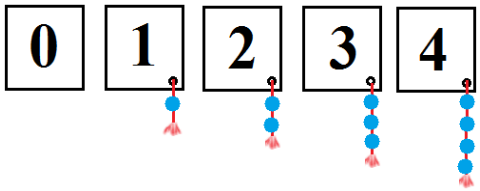
और भी कई प्रकार के खेल हो सकते हैं जो बालक के संज्ञानात्मक विकास में मदद करते हैं। इसी प्रकार के कोई दो खेलों के बारे में लिखिए।	और भी कई प्रकार की खेल सामग्रियाँ हो सकती हैं जो बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में मदद करती हैं। इसी प्रकार की किन्हीं दो

1. 2.	सामग्रियों के बारे में लिखिए। 1. 2.

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. पियाजे तथा वाइगोत्स्की दोनों का मानना है कि बच्चे के संज्ञानात्मक कौशल के विकास में खेल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।
   b. "छोटे बच्चे खेल के दौरान अकसर स्वयं से बातें करते हैं"। वाइगोत्स्की ने इन उच्चारणों को आत्मकेंद्रित वाणी बताया है।
   c. पियाजे के तीन पहाड़ियों वाले प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्वसंक्रियात्मक अवस्था में बालक संरक्षण हेतु सक्षम नहीं होता है।
   d. वस्तुओं को घटने या बढ़ने के क्रम में रखने की क्षमता को क्रमबद्धता कहते हैं।
   e. वाइगोत्स्की का मानना था कि संज्ञानात्मक विकास में भाषा की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
   f. एक तीन वर्ष का बालक किताब से फिसलकर गिर जाने पर अपनी माँ से कहता है कि "किताब को मुझसे माफी माँगनी चाहिए"। प्रारम्भिक वर्षों में काल्पनिक मित्र होने का यह एक उदाहरण है।
2. एक तीन वर्ष का बालक पियाजे के संरक्षण कार्यों को सफलतापूर्वक नहीं कर पाता है। इसके क्या संभावित कारण हो सकते हैं?

.....
.....
.....

3. समीपस्थ विकास के क्षेत्र से आप क्या समझते हैं? सउदाहरण समझाइए।

.....
.....
.....

4. पाँच ऐसी रणनीतियाँ बताइए जिन्हें एक बच्चे का ध्यान देने वाले व्यक्ति के रूप में उसके संज्ञानात्मक विकास को प्रोत्साहित करने हेतु आप अपना सकते हैं।

.....

.....

.....

12.7 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास

जन्म से लेकर 6-7 वर्षों तक बच्चों में आश्चर्यजनक दर से भाषा विकास होता है। मौन संचार की अवस्था से बालक कुछ ही वर्षों में एक कहानी बताने में विशेषज्ञ होने की अवस्था तक पहुँच जाता है। ऐसा बच्चे किस प्रकार कर पाते हैं?

प्रथम दृष्टिकोण बताता है कि अपनी संज्ञानात्मक क्षमता को बढ़ाने हेतु बच्चे अपने सामाजिक वातावरण से भाषा को एक प्राकृतिक उत्पाद की भाँति चुनते हैं। बच्चे अपने आसपास की ध्वनियों के आधार पर भाषा सीखने की अपनी रणनीति बनाते हैं। भाषा सीखने का दूसरा दृष्टिकोण यह समझाता है कि हम सभी भाषा समझने तथा सीखने के जन्मजात गुण के साथ उत्पन्न हुए हैं। पहला दृष्टिकोण भाषा के विकास में पालन-पोषण तथा सामाजिक सम्पर्क की भूमिका बताता है तथा दूसरा दृष्टिकोण यह मानता है कि प्रकृति तथा हमारी आनुवंशिक प्रवृत्तियाँ भाषा सीखने की हमारी क्षमता को प्रभावित करते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि दोनों ही दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं क्योंकि भाषा सीखने की क्षमता बच्चे के सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण, संज्ञानात्मक कौशल तथा उनकी भाषा समझने की जन्मजात क्षमता द्वारा प्रभावित होती है। इस इकाई में हम मुख्य रूप से 2-6 वर्ष के बच्चों में भाषा विकास पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों का भाषा कौशल अधिक प्रबल हो जाता है तथा वे वाक्य बोलना आरंभ कर देते हैं। 3 वर्ष की आयु तक बच्चे सभी स्वर ध्वनियों तथा अधिकतर व्यंजनों का उच्चारण करने लगते हैं। इन वर्षों के दौरान वे कहानियाँ तथा कविताएँ सुनना पसन्द करते हैं। आपने इस इकाई की शुरुआत में जाना कि इस आयु में बच्चों में प्रारम्भिक साक्षरता कौशल दिखाई देते हैं। ये वे कौशल होते हैं जिनके बारे में लिखने एवं पढ़ने में सक्षम होने से पूर्व जानना जरूरी है। निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दें:

- एक 2½ वर्ष का बालक चेहरे पर एकाग्रता के साथ पुस्तक के पन्ने पलटता है।
- एक 3 वर्ष का बालक विभिन्न आकारों को बनाने तथा उनमें रंग भरने में आनंद लेता है।
- एक 4 वर्ष का बालक किसी दुकान का नाम नहीं पढ़ सकता परन्तु वह उस दुकान का नाम उस पर लगे चिह्न द्वारा जान लेता है।

बच्चों में पढ़ने-लिखने के प्रति एक प्राकृतिक झुकाव होता है। इस झुकाव को विकसित करने हेतु उन्हें उचित अवसर प्रदान करना आवश्यक है। प्रारम्भिक साक्षरता कौशल में आकारों को समझना, मुद्रित सामग्री के प्रति जागरुकता, चित्रों को पढ़ना आदि सम्मिलित हैं।

12.7.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा के प्रमुख सीमा चिह्न

निम्न तालिका उन प्रमुख चिह्नों के बारे में बताती है जिन्हें बच्चे प्रारम्भिक बालयावस्था में प्राप्त करते हैं:

आयु	भाषा के सीमा चिह्न
2-4 वर्ष	• 2 वर्ष की आयु में 200-300 शब्दों तथा 4 वर्ष की आयु तक 1500-1600 शब्दों का शब्द भण्डार होना चाहिए। • 5-10 मिनट की कहानियों पर ध्यान देकर सुनने की क्षमता होनी चाहिए। • अपने विचारों को शब्दों तथा सरल वाक्यों में व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए। • वस्तुओं को पहचानने तथा उनका नाम बताने में साथ ही चित्र में दिखाई गई गतिविधियों की व्याख्या करने में भी सक्षम होना चाहिए। • बच्चे इस आयु में निजी भाषा में संलग्न हो जाते हैं।
4-6 वर्ष	• 15-20 मिनट की कहानियों पर ध्यान देकर सुनने की क्षमता होनी चाहिए। • जटिल वाक्यों का प्रयोग करने में सक्षम होना चाहिए। • वाक्यों में 'और', 'अगर' तथा 'लेकिन' जैसे संयोजकों का प्रयोग करने में सक्षम होना चाहिए। • चित्रों के आधार पर अपनी कल्पना द्वारा कहानी बनाने की क्षमता होनी चाहिए। • इस आयु में बच्चों की भाषा एक वयस्ककी भाँति होती है।

आइए, अब हम 2-6 वर्षों के दौरान भाषा विकास पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

12.7.2 शब्द भण्डार

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चों का शब्द भण्डार तेजी से बढ़ता है। जैसे आपने जाना कि 2 वर्ष की आयु में बालक का शब्द भण्डार 200-300 शब्दों का होता है जो 4 वर्ष की आयु तक 1500-1600 शब्दों का हो जाता है। यह संख्या आयु वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है। कुछ अध्ययनों द्वारा यह पाया गया है कि 18 माह से 6 वर्षों के बीच बच्चा प्रत्येक घण्टे में एक नया शब्द सीखता है। विशेषज्ञों का मानना है कि बच्चों के शब्दकोश में यह नाटकीय वृद्धि 'तीव्र मानचित्रण' कहलाती है जिसमें सीमित पहुँच के पश्चात भी बच्चे शब्दों को चुनकर उनका अर्थ समझते हैं। जब बच्चे कोई नया शब्द सीखते हैं वे उसकी तुलना उन शब्दों से करते हैं जिन्हें वे पूर्व से जानते हैं और देखते हैं कि

वह नया शब्द उनके शब्द कोश हेतु कहाँ पर उपयुक्त है। शब्दों का सामाजिक स्थितियों में प्रयोग बच्चों को उन शब्दों के प्रयोग हेतु मार्गदर्शित करता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चे कई स्रोतों से शब्द सीखते हैं। आपने कई अभिभावकों को यह कहते हुए सुना होगा कि पूर्व-विद्यालय केन्द्र में जाने के बाद उनका बालक घर के तरीकों तथा शिष्टाचार के विपरीत बात कर रहा है। आप देखेंगे कि इस आयु में बच्चे नए-नए शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा कभी-कभी पूर्व से पता शब्दों के आधार पर नए शब्दों का निर्माण करते हैं। जैसे 3 वर्ष की प्रिया माली को 'पानी काका' कह कर संबोधित कर सकती है क्योंकि उसने माली को पौधों में पानी देते हुए देखा है। कभी-कभी बच्चे उन स्थानों पर भी अपने भाषा नियम प्रयोग करने की कोशिश करते हैं जहाँ पर उनकी आवश्यकता नहीं होती है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी बालक को यह पता हो कि अंग्रेजी के शब्दों के अंत में 'S' जोड़ने से वह शब्द बहुवचन बन जाता है तो वह 'foot' के बहुवचन शब्द 'feet' बोलने के स्थान पर 'foots' बोल सकता है। इस अवधि में प्रारम्भिक शब्दों के प्रयोग में इस साधारण गलती को 'अति नियमितीकरण (Over regularization)' कहा जाता है।

12.7.3 व्याकरण

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा को नियन्त्रित करने वाले नियमों अर्थात व्याकरण के प्रति बालक की समझ में वृद्धि देखी जाती है। शैशवावस्था के अंत में बालक संज्ञा एवं क्रियाओं का प्रयोग करना प्रारंभ कर देते हैं। पूर्वविद्यालयी वर्षों में व्याकरण में सुधार होता है तथा बच्चे संज्ञाओं तथा संबंध सूचक अव्ययों (preposition) के बहुवचन शब्दों का प्रयोग करना शुरु कर देते हैं जैसे पर, में आदि।

इस अवस्था में बालक कालों (tenses) का प्रयोग करना सीख जाते हैं। शुरुआत में बच्चे वर्तमान काल का प्रयोग करते हैं जैसे मैं खाना खा रहा हूँ, तत्पश्चात भूतकाल का जैसे मैंने खाना खाया। भविष्य काल का प्रयोग बड़े पूर्व विद्यालयी बच्चों में अधिक देखा जाता है जो अपनी माँ को बता सकते हैं कि वे क्या खाना चाहते हैं जैसे मैं रात में चावल खाऊँगा। इस अवधि में बच्चे तुलनात्मक शब्दों जैसे लम्बा-छोटा,यहाँ-वहाँ, अंदर-बाहर आदि का प्रयोग करना भी शुरु करते हैं। तुलनात्मक शब्दों का प्रयोग बच्चों में इस अवधारणा को स्पष्ट करता है कि दो वस्तुएं किस प्रकार समान या भिन्न हैं। छोटे पूर्वविद्यालयी बालक उन वस्तुओं में तुलना करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं जिनमें बहुत कम अन्तर होता है। जैसे दो पेन्सिलों की लगभग समान लम्बाई होना। बड़ा तथा छोटा सामान्यतया वे तुलनात्मक शब्द हैं जिनका प्रयोग बालक सर्वप्रथम करते हैं।

जटिल वाक्यों का प्रयोग: पूर्वविद्यालयी अवस्था में बालक में वाक्यों के निर्माण हेतु शब्दों के सही प्रयोग की समझ में वृद्धि देखी जाती है। यही कारण है कि एक 20 माह का बालक शब्दों को

तोड़कर अपनी बात कहता है जैसे भूख लगने पर बालक बोलेगा, 'मैं दूध'। जबकि 3-4 वर्ष का बालक भूख लगने पर पूरा वाक्य बोलेगा, जैसे 'मुझे दूध चाहिए'। बड़े पूर्वविद्यालयी बालक संयोजकों का प्रयोग भी कर पाते हैं, जैसे 'मुझे दूध और बाबा को चाय चाहिए'।

3 वर्ष के छोटे बालक को निष्क्रिय वाक्य (जैसे यह सेब मेरे द्वारा खाया गया) का प्रयोग सक्रिय वाक्य (जैसे मैंने सेब खाया) की तुलना में कठिन लगता है। हालांकि 5 वर्ष की आयु तक उनकी यह कठिनाई दूर हो जाती है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में एक अन्य क्षमता का विकास होता है, वह है नकारात्मक वाक्यों का प्रयोग करना। 2 वर्ष का बालक जब किसी बात को नकारता है तो वह शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करता है जैसे 'जूता नहीं'। दूसरी तरफ एक पूर्वविद्यालयी बालक पूर्ण वाक्यों का प्रयोग करता है जैसे 'मुझे जूता नहीं पहनना है'। आप देख सकते हैं कि पूर्वविद्यालयी बालक के नकारात्मक वाक्यों के अर्थ छोटे बालक से ज्यादा स्पष्ट होते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था से पूर्व बच्चे 'क्या', 'कहाँ' जैसे शब्दों का प्रयोग कर प्रश्न पूछने लगते हैं। जैसे मम्मी कहाँ? परन्तु अब बच्चे पूर्ण प्रश्न पूछने में सक्षम होते हैं जिनमें वे 'कौन', 'कब', 'क्यों', 'कहाँ' आदि शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। जैसे मम्मी कब वापस आ रही हैं?

इस अवधि में बालक रूपकों का प्रयोग करना भी आरंभ कर देते हैं। इस आयु के बच्चों को आपने यह कहते हुए सुना होगा जैसे 'यह कार मेरा पेट है' या 'बादल रुई की गेंद है'। 5-6 वर्ष तक बच्चे भाषा के ज्यादातर नियमों का प्रयोग करने लगते हैं तथा उनकी भाषा वयस्कों की भाँति होने लगती है।

12.7.4 वार्तालाप कौशल

इस आयु में बच्चे न सिर्फ नए शब्दों को जानते हैं बल्कि वे उन शब्दों का विभिन्न स्थितियों में प्रयोग करना भी सीखने लगते हैं। 2 वर्ष की आयु तक बच्चे दूसरे लोगों से बातचीत करने का कौशल प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात वे यह जान लेते हैं कि बातचीत करने हेतु उन्हें स्वयं के बोलने की बारी की प्रतीक्षा करनी होगी तथा दूसरे व्यक्ति की बातें भी सुननी होंगी। 4-5 वर्ष की आयु तक बच्चा यह सीख जाता है कि विभिन्न परिस्थितियों में उसे कैसे वार्तालाप करना है। उनकी व्यस्कों तथा छोटे बालकों से बात करने की भाषा तथा तरीका भिन्न-भिन्न होता है।

12.8 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके

आपने पूर्व में पढ़ा होगा कि जन्म से 6-7 वर्ष की आयु बच्चों में भाषा विकास की संवेदनशील अवधि है। जिन बच्चों को इस आयु में भाषा विकास हेतु उचित वातावरण नहीं मिलता उन बच्चों

का भाषा कौशल अपनी अधिकतम क्षमता तक विकसित नहीं होता है। निम्न तरीकों को ध्यान में रखकर भाषा विकास हेतु एक अच्छे वातावरण का निर्माण किया जा सकता है:

- एक भाषा पूर्ण वातावरण बच्चों को वयस्कों तथा उनके साथियों के साथ बातचीत तथा घुलने-मिलने के पर्याप्त अवसर देता है। अच्छे वक्ताओं से बातें करने पर बच्चे भाषा नियम तथा व्यवहार सीखते हैं।
- बच्चों का ध्यान रखने वाले व्यक्तियों को सचेत रहना चाहिए तथा उनकी बातें ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए।
- बच्चों को उनके साथियों के साथ खेलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- बच्चों को पूर्ण वाक्य बोलने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि बालक गलत व्याकरण का प्रयोग कर रहा है तो सहजता के साथ, बिना आलोचना किए तथा बालक को हतोत्साहित किए बिना उसे भाषा का सही प्रयोग बताना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करने पर ही बच्चे स्वतंत्र रूप से बात करते हैं।
- बच्चे के प्रारम्भिक साक्षरता कौशल के विकास हेतु उसे अधिक से अधिक मुद्रित सामग्री जैसे पुस्तकें, पत्रिकाएं, पोस्टर, अखबार आदि उपलब्ध करानी चाहिए जिसमें लिखित शब्दों तथा चित्रों को देखने के बालक को अधिकतम अवसर प्राप्त हों।
- बच्चे को भाषा के अन्य स्रोतों जैसे कठपुतली का खेल,कहानियाँ सुनाना, गीत, रेडियो आदि से भी अवगत कराना चाहिए। संगीत भाषा विकास में सकारात्मक प्रभाव डालता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चे जो भी अपने आसपास सुनते हैं, वे वही सीखते हैं तथा उसे ही दोहराते हैं। इसलिए यह अति आवश्यक है कि उन्हें भाषा व्यवहार के अच्छे उदाहरण दिए जाएं। बच्चों की देखरेख करने वाले व्यक्ति को भाषा के उच्चारण तथा तीव्रता पर ध्यान देना चाहिए।
- बच्चे के भाषा विकास में उसकी मातृभाषा या घर पर बोली जाने वाली भाषा का पढ़ाई के माध्यम के रूप में प्रयोग महत्वपूर्ण है।
- घर तथा पूर्व विद्यालय केन्द्रों में की जाने वाली क्रियाएं भी बच्चे के भाषा विकास में मदद करती हैं। कुछ उदाहरण नीचे दी गई तालिका में दिए गए हैं:

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास को प्रोत्साहित करने वाली गतिविधियाँ तथा खेल सामग्री	
गतिविधियाँ/खेल	**खेल सामग्री**
• चीनी कानाफूसी खेल: इस खेल में बच्चे गोलाई में बैठते हैं। धीरे से एक शब्द बच्चे के कान में बोला जाता है। वह बच्चा वही शब्द अपनी दाईं तरफ बैठे बच्चे के कान में बोलता है। यह तब तक चलता है जब तक अंतिम	• धातु के डिब्बों में अलग-अलग आकार के कंकड़ों को भरिए। ये कंकड़ हिलाने पर अलग-अलग आवाज करते हैं। • संगीतिक यंत्र जैसे बांसुरी, ड्रम आदि। • कहानी सुनाने के दौरान शिक्षक द्वारा प्रयोग की जाने

बच्चा वह शब्द जोर से ना बोले। • दिखाओ और बताओ: आसपास के पार्क में प्राकृतिक भ्रमण के दौरान बच्चे कुछ वस्तुएं जैसे गिरे हुए पत्ते, पंख आदि इकट्ठा करते हैं तथा कक्षा में इन वस्तुओं के बारे में बात करते हैं। • चित्र पढ़ना: बच्चों को दिखाए गए चित्र के आधार पर उन्हें कहानियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। ऐसे कई अन्य खेल हो सकते हैं जो बच्चों में भाषा विकास को बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार की किन्हीं दो गतिविधियों के बारे में नीचे दिए गए स्थान में लिखिए। 1. 2.	वाली सामग्री जैसे कहानी के कार्ड जिसमें कहानी का चित्रित वर्णन होता है। • कठपुतली: हाथों की कठपुतली, छड़ी कठपुतली, दस्ताने वाली कठपुतली। ऐसी कई अन्य खेल सामग्रियाँ हो सकती हैं जो बच्चों में भाषा विकास को बढ़ावा देती हैं। इस प्रकार की किन्हीं दो खेल सामग्रियों के बारे में नीचे दिए गए स्थान में लिखिए। 1. 2.

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 2 वर्ष की आयु में बालक के पास लगभग ..... शब्दों का शब्द भण्डार होता है।
   b. कभी-कभी बच्चे उन स्थानों पर भी अपने भाषा नियम प्रयोग करने की कोशिश करते हैं जहाँ पर उनकी आवश्यकता नहीं होती है। इस क्रिया को ..... कहते हैं।

c. ..... कौशलों में आकारों की समझ, मुद्रित सामग्री की जागरुकता तथा चित्रों को पढ़ना सम्मिलित है।

d. ..... आमतौर पर बच्चों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले पहले तुलनात्मक शब्द हैं।

2. 5 रणनीतियों के बारे में बताइए जिन्हें बच्चे की देखरेख करने वाले व्यक्ति उनके भाषा कौशल विकास हेतु अपना सकते हैं।

.....

.....

.....

.....

.....

12.9 सारांश

शैशवावस्था की तुलना में प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अधिक कुशलता से बातें कर पाते हैं। छोटे बच्चों से बातचीत के दौरान हम उनकी सोच एवं संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रियाओं को समझ सकते हैं। इसके द्वारा ही हम यह जान पाते हैं कि कैसे एक बालक का मस्तिष्क एवं सोच एक वयस्क से भिन्न होती है। 2-6 वर्षों के दौरान बालक का संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। इन वर्षों में बच्चे प्रतीकात्मक रूप से विचार करने लगते हैं जिस कारण वे कई संज्ञानात्मक कौशल तथा प्रारम्भिक साक्षरता कौशल, वर्गीकरण,तर्क आदि की अवधारणाओं को सीख पाते हैं। इस अवधि में कल्पना तथा परिकल्पनाएं भी भाषा विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पियाजे तथा वाइगोत्स्की के सिद्धांतों द्वारा मानव विकास के प्रति हमारी समझ में वृद्धि हुई है। इस अवधि में बच्चों के बढ़ते हुए शब्द भण्डार, बेहतर व्याकरण तथा वार्तालाप के कौशल के कारण उनके भाषा विकास में तेजी से वृद्धि होती है। बच्चों की देखभाल करने वाले व्यक्ति के रूप में हमें उन्हें ऐसा वातावरण उपलब्ध कराना चाहिए जो उनका संज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास दोनों को प्रोत्साहित करे।

12.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **आत्मवाद (Animism):** ऐसी घटना जिसमें बच्चे मानवीय गुणों को निर्जीव वस्तुओं के साथ जोड़ते हैं।
- **निजी भाषा:** बच्चों के मन में चलने वाले विचारों की अभिव्यक्ति।

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सही
   b. गलत
   c. गलत
   d. सही
   e. सही
   f. गलत
2. संभावित कारण हैं:
   - संरक्षण के प्रयोग में पूर्व विद्यालयी बालक ने दोनों प्रस्तुतियों में कोई संबंध नहीं बताया तथा परिवर्तनों को नकार दिया।
   - बालक वस्तुओं की अवधारणात्मक उपस्थिति से विचलित हुए।
   - केन्द्रीकरण: बालकों ने उनके सामने प्रस्तुत केवल एक पक्ष पर ध्यान दिया तथा अन्य पक्षों को नकार दिया।
   - पूर्वविद्यालयी अवस्था के छोटे बालक विचारों को प्रतिवर्तित करने में सक्षम नहीं होते हैं।
3. खण्ड 12.5.2 देखें।
4. खण्ड 12.6 देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 200-300
   b. अति नियमितीकरण (Over regularization)
   c. प्रारम्भिक साक्षरता
   d. बड़ा एवं छोटा
2. खण्ड 12.8 देखें।

12.12सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.

2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
3. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
4. Ruth Strang, (1971), An Introduction to Child Study, Fourth edition, The Macmillan Company, New York.
5. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
6. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.

12.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्व बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक उपलब्धियों की चर्चा कीजिए।
2. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत के विभिन्न गुणों की व्याख्या कीजिए।
3. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने के तरीकों पर टिप्पणी कीजिए।
4. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा के प्रमुख सीमा चिह्नों के बारे में लिखिए।
5. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास को प्रोत्साहित करने के तरीकों की विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई13: सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 स्व-धारणा का विकास
13.4 जाति की अवधारणा
13.5 एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत: स्वायतता तथा नेतृत्व क्षमता का विकास
13.5.1 बचपनावस्था के दौरान स्वायतता का विकास
13.5.2 पूर्व विद्यालयी वर्षों के दौरान पहल करने की क्षमता का विकास
13.6 संवेगों का विकास
13.6.1 संवेगों को प्रकट करना
13.6.2 संवेगों को समझना
13.6.3 संवेगों का विनियमन
13.7 बच्चे का सामाजिक विकास
13.7.1 ब्रानफेनबैनर का पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत
13.7.2 बच्चे का परिवार
13.7.3 दोस्त एवं खेल
13.8 पूर्व बाल्यावस्था के दौरान सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके
13.9 सारांश
13.10 पारिभाषिक शब्दावली
13.11अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 प्रस्तावना

बच्चा जैसे जैसे बड़ा होता है उसकी भावनाओं में विस्तार होता जाता है। वह अपने तथा दूसरों के बारे में जानने लगता है तथा स्वयं एवं दूसरों के मध्य विभिन्नताओं एवं समानताओं को भी समझने लगता है। पूर्व बाल्यावस्था ही यह तय करती है कि बच्चा बड़ा होकर किस प्रवृत्ति का होगा।

इस इकाई में आप यह पढ़ेंगे कि सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास की दृष्टि से बच्चे का क्या विकास हुआ है। ये दोनों विकास साथ-साथ होते रहते हैं। अत: कई किताबों में इसे एक सम्मिलित विषय " सामाजिक संवेगात्मक विकास" के रूप में दिया जाता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप निम्न बातें जान पायेंगे:

- बच्चे में स्व:धारणा का विकास;
- बचपनावस्था के दौरान स्वायत्तता तथा पूर्व विद्यालयी वर्षों के दौरान पहल करने की क्षमता का विकास';
- पूर्व बाल्यावस्था के दौरान संवेगात्मक विकास तथा यह कि बच्चा अपनी भावनाओं को किस प्रकार व्यक्त करता है, समझता है तथा नियंत्रित करता है;
- पारिस्थितिकी तंत्र सिद्धांत को समझना; तथा
- परिवार, साथी तथा खेल के साथी बच्चे के सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

13.3 स्व-धारणा का विकास

मैं कौन हूँ? यह प्रश्न थोड़ा चकित करने वाला होता है। यदि आपसे पूछा जाए कि आप कौन हैं तो आप स्वयं के बारे में कैसे बताएँगे? इस सम्बन्ध में नीचे दिए गये स्थान पर लिखिए।

अपने बारे में बताने के लिए आप अपना नाम, लिंग, व्यक्तित्व गुण, संवेगात्मक स्थिति, पेशा, आदर्श, पसंद तथा नापसंद आदि के सम्बन्ध में लिखेंगे। यही स्व-धारणा कहलाता है।

मानवजाति में स्व-धारणा का विकास पूर्व बाल्यावस्था से ही शुरु हो जाता है। बचपनावस्था के दौरान ही बच्चे को स्वयं का एहसास होने लगता है तथा उन्हें अपने शरीर का ज्ञान भी होने लगता है। उदाहरणार्थ एक 3 वर्ष की उम्र का बच्चा अपने बारे में निम्न कथन कह सकता है कि मेरा नाम माया है। मैं एक लड़की हूँ। मेरे काले बाल हैं और मेरे पास लाल रिबन है। पूर्व विद्यालयी बच्चा अपने द्वारा किए जा रहे क्रियाकलाप के सम्बन्ध में बता सकता है। 4 से 5 वर्ष का बच्चा अपने बारे में बताते हुए अपनी भावनाएं भी व्यक्त कर सकता है जैसे मैं आइसक्रीम खाकर बहुत खुश होती हूँ।

आपने यह बात गौर की होगी कि मैं कौन हूँ? इस प्रश्न का जवाब देने के लिए आपको खुद की आलोचना या मूल्यांकन करना पड़ेगा। पूर्वविद्यालयी बच्चा स्वयं का मूल्यांकन करने में सक्षम होता है। कभी-कभी उनका यह मूल्यांकन वास्तविकता से बहुत दूर होता है तथा वह स्वयं के बारे में कुछ ज्यादा ही सकारात्मक बातें करते हैं जैसे एक 5 वर्ष की रिंकी कहती है कि "वह कभी नहीं डरती है"। स्व-धारणा का विकास केवल स्व मूल्यांकन से ही नहीं हो जाता है अपितु उस प्रतिक्रिया से भी होता है जो उसे अपने माता-पिता या देखभाल करने वालों से मिलती है क्योंकि यह प्रतिक्रिया ही यह निश्चित करती है कि बच्चे में किस प्रकार के गुण, व्यवहार, क्षमताएं तथा मूल्य प्रदर्शित होंगे। इतना ही नहीं यह प्रतिक्रिया बच्चे के आत्मबल तथा आत्म सम्मान को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस समय यदि बच्चे के माता-पिता उसकी उपलब्धियों की सराहना नहीं करते या नकारात्मक टिप्पणियाँ करते हैं तो बच्चे के मन में अपनी एक खराब छवि बनने लगती है।

13.4 जाति की अवधारणा

जाति किसी भी व्यक्ति की स्व-धारणा का एक महत्वपूर्ण भाग है। एक वयस्क व्यक्ति के रूप में हम सभी की अपनी जातीय पहचान है अर्थात हम सभी को यह ज्ञात है कि हमारे अंदर एक महिला के लक्षण हैं या एक पुरुष के।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह जातीय पहचान करने की क्षमता किस प्रकार विकसित होती है। जातीय पहचान करने की क्षमता का विकास भी सामाजिक विकास की भांति पूर्व बाल्यावस्था के शुरुआती वर्षों में ही आरम्भ हो जाता है। बचापनावस्था के दौरान बच्चा एक महिला और एक पुरुष में उनकी वेश भूषा तथा बाहरी विशेषताओं के आधार पर अंतर कर सकता है जैसे कपड़े तथा सिर पर बालों की लम्बाई। लगभग 3 वर्ष की आयु पर बच्चा स्वयं को एक लड़का या लड़की के रूप में पहचान सकता है। हालाँकि यह पहचान बहुत निश्चित तथा परिभाषित नहीं होती है। इस आयु का बच्चा यह सोच रहा होता है कि वह स्वयं या कोई भी व्यक्ति अपनी जाति बदल सकता है। इसके साथ-साथ वह यह भी सोचता है कि कोई भी व्यक्ति अपने पहनावे में परिवर्तन कर अपनी जाति बदल सकता है। अत: एक 3 वर्ष की बच्ची यह सोच सकती है कि वह लड़कों वाले कपड़े पहनकर लड़का बन सकती है।

4 वर्ष की आयु तक बच्चे में जातीय स्थायित्व आ जाता है अर्थात वह यह समझ जाता है कि वह जीवन पर्यंत एक ही जाति का रहेगा। 5 से 6 वर्ष की आयु में बच्चा जातीय स्थिरता को प्राप्त कर लेता है अर्थात वह समझ जाता है कि कपड़े बदल लेने से जाति नहीं बदलती।

बच्चों में जातीय पहचान करने की क्षमता के विकास का निर्धारण एक अन्य पहलू **घिसी पिटी जातीय भूमिका** द्वारा होता है। घिसी पिटी जातीय भूमिका से अर्थ है कि किसी व्यक्ति से उसकी

जाति (पुरुष/महिला) के अनुरूप व्यवहार करने, सोचने तथा महसूस करने की आशा करना जिससे कि वह उस जाति की भूमिका निभा सके। इसका एक बहुत सामान्य उदाहरण है किसी लड़के के रोने पर यह कहना कि लड़के नहीं रोते हैं। कुछ अन्य जातीय भूमिकाएं निम्न हैं: खाना पकाना महिला का कार्य है, महिला घर संभालती है और पुरुष काम पर जाते हैं। यह सभी घिसी पिटी भूमिकाएं हमारे समाज द्वारा ही बनायी हुई हैं। हालाँकि एक लड़के और लड़की में कई जैविक विभिन्नताएं होती हैं किन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि लड़का हो या लड़की दोनों ही मानव जातियां हैं तथा दोनों में विभिन्नताओं से ज्यादा समानताएं होंगी। समस्या तब उत्पन्न होती है जब कुछ विशेषताओं को सामान्यीकृत कर दिया जाता है तथा उसे किसी एक जाती पर सख्ती से लागू कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ लड़कियों को गुड़िया से खेलना अच्छा लगता है इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी लड़कियों को गुड़िया से खेलना अच्छा लगता हो या वो अन्य खिलौनों की अपेक्षा गुड़िया से खेलने को प्राथमिकता देती हों। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि गुड़ियों से केवल लड़कियाँ खेल सकती हैं या लड़कों को गुड़िया से खेलना पसंद नहीं होता है। दुर्भाग्यवश ये सभी भूमिकाएं हमारे समाज द्वारा ही बनायी गयी हैं तथा माता-पिता भी जब खिलौने लेने जाते हैं तो वह भी लड़की के लिए गुड़िया तथा लड़के के लिए कार आदि खरीदते हैं।

इस समय माता-पिता को बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है कि कोई नकारात्मक सोच बच्चे पर ना लागू कर दी जाए जिससे एक स्वस्थ शरीर का निर्माण हो सके।

13.5 एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत: स्वायत्तता तथा नेतृत्व क्षमता का विकास

एरिक्सन एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार सभी मानव जातियों को नवजात अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक 8 अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है और इन अवस्थाओं के दौरान प्रत्येक व्यक्ति एक संघर्ष से रूबरू होता है। एरिक्सन के अनुसार यदि व्यक्ति के इन संघर्षों का परिणाम सकारात्मक होता है तो व्यक्ति अच्छे विकास की ओर अग्रसर होता है और यदि नकारात्मक होता है तो यह व्यक्ति की आने वाली अवस्थाओं में विपरीत प्रभाव डालता है। ये अवस्थाएँ तथा उनमें होने वाले संघर्ष निम्लिखित हैं:

अवस्था	संघर्ष
नवजात अवस्था	आस्था बनाम अनास्था
बचपनावस्था	स्वायत्तता बनाम सन्देह
पूर्व विद्यालयी वर्ष	पहल बनाम ग्लानि
विद्यालयी वर्ष	परिश्रम बनाम हीनता

किशोरावस्था	अस्तित्व बनाम भूमिका द्वन्द
पूर्व वयस्कावस्था	आत्मीयता बनाम पार्थक्य
वयस्कावस्था	उत्पादकता बनाम निष्क्रियता
वृद्धावस्था	सत्यनिष्ठा बनाम निराशा

इस इकाई में हम पूर्व बाल्यावस्था पर चर्चा करेंगे। अत: हम स्वायत्तता बनाम सन्देह तथा पहल बनाम ग्लानि संघर्ष के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

13.5.1 बचपनावस्था के दौरान स्वायत्तता का विकास

बचपनावस्था के दौरान जैसे जैसे बच्चे में स्व-धारणा का विकास होता है वह यह भी समझने लगता है कि वह अपने कई कार्य स्वयं कर सकता है। यह स्वतंत्र व्यवहार ही स्वायत्तता कहलाता है। स्वायत्तता के साथ-साथ आत्मबल तथा आत्मसम्मान की भावना भी विकसित होती है। इस आयु में पर्यावरण के प्रति जिज्ञासा का विकास होता है। बालक में आत्म-नियंत्रण एवं इच्छा-शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मनियंत्रण एवं इच्छा शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है तथा बालक में आत्मविश्वास बढ़ता है। इसके विपरीत दण्डित किए जाने पर शर्म, हीनता तथा निराशा का विकास होता है। मजाक बनाने पर उसे अपनी क्षमता पर सन्देह होने लगता है।

आइये अब उन बातों पर चर्चा करें जिससे माता-पिता बच्चे की स्वायत्तता को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

- **सामान्य चयन की स्वतंत्रता**

  बच्चे को अभिभावकों द्वारा कुछ सामान्य वस्तुओं के चयन की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उदाहरण के लिए वह किस रंग के जूते पहनेगा या कौन से कपड़े पहनेगा आदि। इसके साथ-साथ अभिभावकों द्वारा उसके इस चयन की सराहना की जानी चाहिए।

- **बच्चा आश्रित एवं स्वतंत्र दोनों होता है**

  बचापनावस्था में बच्चे कुछ कार्य स्वतन्त्र रूप से करते हैं वहीं दूसरी ओर वह अपने माता-पिता पर भी आश्रित होते हैं। अत: माता-पिता द्वारा उसका सही मार्गदर्शन किया जाना चाहिए।

- **बच्चे के लिए कड़ी सजा या कड़े शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए**

  इस समय बच्चा सभी कार्य सीख रहा होता है। अत: कोई कार्य गलत हो जाने या कार्य में देरी हो जाना स्वाभाविक है। अत: माता-पिता को धैर्य से काम लेना चाहिए।

13.5.2 पूर्व विद्यालयी वर्षों के दौरान पहल करने की क्षमता का विकास

पूर्व विद्यालयी वर्षों के दौरान बच्चों को अधिकतर कार्यों में पहल करना पसंद होता है, उदाहरणार्थ बच्चा किसी भी नये कार्य को करने की शुरुआत करने को उत्सुक रहते हैं फिर चाहे वह फ़िसलपट्टी पर फिसलना हो या साइकिल चलाना। इस समय बच्चे माता-पिता की सहायता लेने में भी दिलचस्पी लेते हैं जिससे फिर उन्हें कार्य करने में आसानी हो। माता-पिता को चाहिए कि वह बच्चे की इस पहल करने की आदत को प्रोत्साहित करें। जो वे निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

- उनकी उपलब्धियों को बढ़ावा देकर।
- उन्हें स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के लिए उत्साहित करके।
- बच्चे को कुछ ऐसी गतिविधियां कराकर जो उन्हें उनके विकास में सहायता करें।

यदि बच्चे को बहुत ज्यादा रोक टोक की जाए या उनके किए गए कार्य में बहुत कमियां निकाली जाएँ तथा उनकी छोटी छोटी गलतियों पर सजा दी जाये तो बच्चा अपराधबोध का शिकार हो जाता है तथा उसकी कार्य की पहल करने की क्षमता समाप्त होती जाती है और इस सबसे बच्चे का विकास प्रभावित होता है।

13.6 संवेगों का विकास

पूर्व बाल्यावस्था के दौरान जैसे जैसे बच्चे की स्वधारणा का विकास होता है उसमें विभिन्न प्रकार की भावनाओं को प्रकट करने की क्षमता का भी विकास हो जाता है। वह स्वयं तथा दूसरों की भावनाओं को समझने लगता है। इसके साथ-साथ वह अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करना भी सीख लेता है।

13.6.1 संवेगों को प्रकट करना

एक 2 वर्ष का बच्चा किसी कार्य के सही या गलत की पहचान उसी प्रकार करेगा जैसे उसके माता-पिता उसे बताएँगे। इस आयु में क्योंकि बच्चे में स्वधारणा का विकास हो रहा होता है अत: वह अपनी बात बहुत दृढ़तापूर्वक रखने की कोशिश करता है तथा इस कारण वह जिद्दी भी हो जाता है। इसके अलावा इस आयु में बच्चे को किसी भी प्रकार का इंतज़ार करना नहीं भाता है और यदि ऐसा हो तो यह स्थिति बच्चे में निराशा तथा **आक्रामकता** का रूप ले लेती है।

नीचे आक्रामकता के प्रकार दिए गए हैं:

आक्रामकता के प्रकार

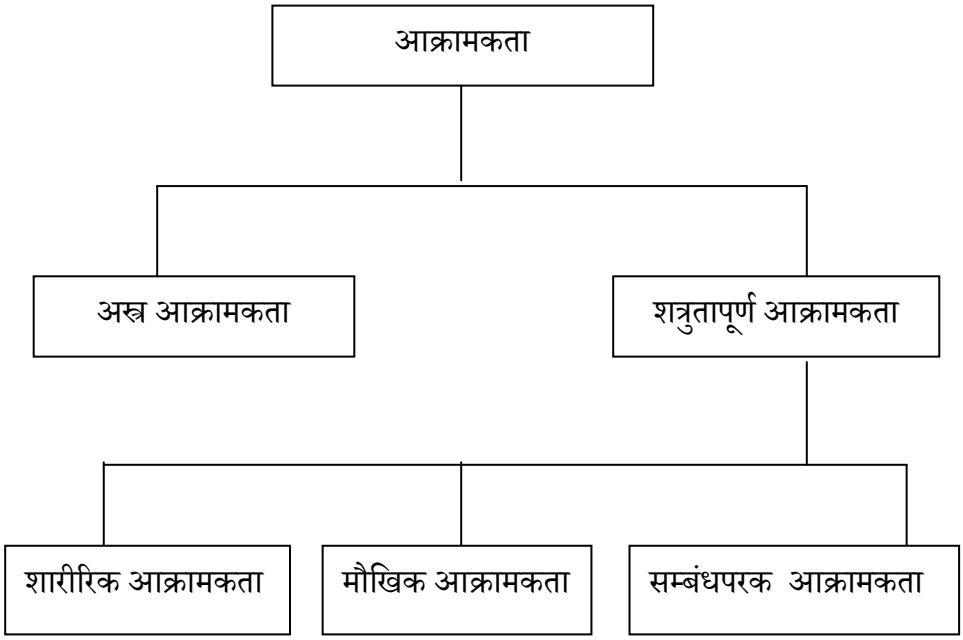

- **अस्त्र आक्रामकता**

इसके अंतर्गत धक्का देना, खींचना, पैर मारना, चिल्लाना तथा दूसरे व्यक्ति पर हमला करना आदि आते हैं।

- **शत्रुतापूर्ण आक्रामकता**

जैसे किसी व्यक्ति को जानबूझकर नुकसान पहुंचाना। पुराने पूर्व विद्यालयी बच्चों में यह आक्रामकता पायी जाती है यह तीन प्रकार की होती है :

- **शारीरिक आक्रामकता**
  यह वह स्थिति है जब बच्चा किसी व्यक्ति या सामान को शारीरिक हानि पहुंचाता है।
- **मौखिक आक्रामकता**
  किसी से अपशब्द बोलना।
- **संबंधपरक आक्रामकता**
  इसमें बच्चा रिश्तों को हानि पहुंचाता है।

एक अन्य संवेग है **भय**। भय वह आतंरिक अनुभूति है जिसमें प्राणी किसी खतरनाक परिस्थिति से दूर भागने का प्रयास करता है। बचपनावस्था में अधिकाँश बच्चे जानवरों, अँधेरे स्थान, ऊँचे स्थान,

अकेलेपन, पीड़ा, अनजान व्यक्तियों और वस्तुओं तथा तीव्र ध्वनि आदि से डरते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चे को सहारा देना चाहिए तथा उसके साथ सकारात्मक व्यवहार करना चाहिए जिससे बच्चा किसी सदमे का शिकार न हो जाए।

बच्चे के संवेग माता-पिता, शिक्षक तथा अभिभावकों की प्रतिक्रिया से बहुत प्रभावित होते हैं। अत: अभिभावकों तथा शिक्षकों को चाहिए कि बच्चे के कार्यों की सराहना करें न कि विवेचना जिससे बच्चे का सकारात्मक विकास हो सके।

13.6.2 संवेगों को समझना

इस समय बच्चे स्वयं के ही नहीं दूसरों के संवेगों या मनोभावों को भी समझने लगते हैं। 4 से 5 वर्ष की आयु में बच्चे विभिन्न संवेगों के कारणों को भी समझने में सक्षम हो जाते हैं। इन वर्षों के दौरान बच्चे में दूसरों के लिए संवेदना या हमदर्दी की क्षमता विकसित हो जाती है। संवेदना का अर्थ है दूसरे की भावनाओं या नजरिये को समझना।

13.6.3 संवेगों का विनियमन

पूर्व विद्यालयी वर्षों में बच्चे में अपने संवेगों को परिस्थिति के अनुसार बदलने की क्षमता आ जाती है। उदाहरणार्थ टिंकू घर पर टीवी देखे जाने को मना करने पर नाराज होकर घर से निकलता है किन्तु विद्यालय जाने पर वह पुन: सामान्य हो जाता है। इसका अर्थ है कि वह अपने संवेगों को परिवर्तित कर सकता है। इसके साथ-साथ बच्चा अपने संवेगों का विनियमन अपने अभिभावकों से भी सीखता है। अभिवावक बच्चे के प्रेरणास्त्रोत होते हैं क्योंकि बच्चा लगातार उनका अवलोकन कर रहा होता है तथा यह भी देख रहा होता है कि वे किस प्रकार अपने संवेगों पर नियंत्रण करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्न में सही या गलत बताइये।
   a. अभिभावकों या देखभाल करने वालों की बच्चे में स्वधारणा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
   b. 4 वर्ष से छोटे बच्चे में शत्रुतापूर्ण (होस्टाइल) आक्रामकता दिखायी देती है।
   c. पूर्वविद्यालयी बच्चे संवेदना या सहानुभूति नहीं दिखा पाते क्योंकि वो बहुत छोटे होते हैं।
   d. शुरुआती विद्यालयी वर्षों में बच्चे अपने सामान के प्रति बहुत आधिकारिक हो जाते हैं।
2. अभिभावक या देखभाल करने वाले व्यक्ति बच्चे की स्वायत्तता को किस प्रकार प्रोत्साहित कर सकते हैं, समझाइये।

---

3. पूर्व बाल्यावस्था के दौरान बच्चे में दिखायी देने वाली विभिन्न प्रकार की आक्रामकताओं के बारे में बताइये।

13.7 बच्चे का सामाजिक विकास

एक नवजात शिशु का संसार उसके अभिभावक होते हैं अर्थात वह उसके परिवार तक ही सीमित होता है। जैसे ही बच्चा बाल्यावस्था में प्रवेश करता है उसका समाज या संसार बढ़ता जाता है तथा वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज के अन्य तत्त्वों के संपर्क में आता है।

आइये अब पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत के सम्बन्ध में पढ़ें जिसमें यह बताया गया है कि समाज के विभिन्न तत्व क्या हैं तथा ये बच्चे को किस प्रकार प्रभावित करते हैं।

13.7.1 ब्रानफेनबैनर का पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत

अब आप यह तो समझ ही चुके हैं कि बच्चे का विकास आनुवंशिक तथा वातावरणीय कारकों से प्रभावित होता है। पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत यह बतलाता है कि किस प्रकार ये कारक बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं। यह सिद्धांत यह भी बताता है कि बच्चे के विकास को जैविक कारक जैसे आयु तथा व्यक्तित्व आदि कैसे प्रभावित करते हैं तथा इसके साथ-साथ वातावरणीय कारक जिसमें भौतिक कारक जैसे घर की सफाई व्यवस्था तथा सामाजिक कारक जैसे बच्चे के परिवार के सदस्य तथा उनकी संस्कृति आते हैं, किस प्रकार प्रभावित करते हैं। चित्र 13.1 में पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत का प्रतिरूप दिखाया गया है जिसमें बच्चा केंद्र पर है। तंत्र के विभिन्न चरण हैं जो बच्चे के विकास को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। ये चरण निम्न प्रकार हैं:

I. सूक्ष्म तंत्र या माइक्रोसिस्टम (Microsystem)

यह सबसे भीतर का घेरा है जिसका बच्चे के विकास पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इस भाग के अंतर्गत बच्चे के अभिभावक तथा उसका परिवार आता है।

II. **मध्य तंत्र या मीसोसिस्टम (Mesosystem)**

सूक्ष्म तंत्र के अंतर्गत आने वाले कारकों के आपसी सम्बन्ध का भी बच्चे के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है, ये सब इस तंत्र के अंतर्गत आते हैं।

III. बाह्य तंत्र या एक्सोसिस्टम (Exosystem)

वो वातावरणीय कारक जो बच्चे को प्रभावित तो करते हैं किन्तु उतनी तीव्रता से नहीं जितनी तीव्रता से विद्यालय तथा घर प्रभावित करते हैं।

IV. दीर्घ तंत्र या मेक्रोसिस्टम (Macrosystem)

ये कारक बच्चे के विकास को बहुत कम प्रभावित करते हैं। इस तंत्र के अंतर्गत उस राष्ट्र के नियम तथा संस्कृति आती है जहां बच्चा रह रहा होता है।

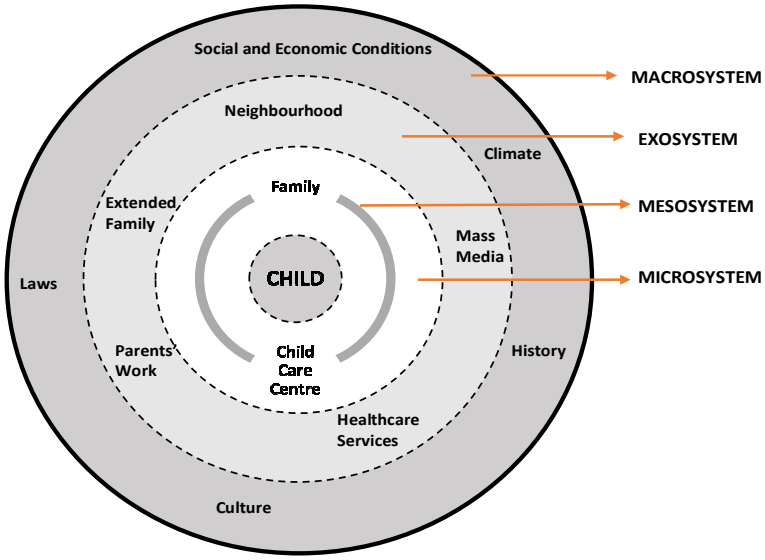

चित्र 13.1 पारिस्थितिक तंत्र सिद्धांत का प्रतिरूप

इन सभी तंत्रों तथा उनके प्रभाव को आप इस चित्र की सहायता से आसानी से समझ सकते हैं। यह सिद्धांत हमें यह बात स्पष्ट करता है कि परिवार के अतिरिक्त कई ऐसे विषय हैं जो बच्चे के विकास को प्रभावित करते हैं जैसे आस पड़ोस, स्वास्थ्य सेवाएं, नियम क़ानून, कार्यस्थल आदि।

13.7.2 बच्चे का परिवार

सम्पूर्ण बाल्यावस्था में मनोसामाजिक विकास पर बच्चे के परिवार का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पुराने समय में अधिकतर भारतीय परिवार संयुक्त परिवार होते थे। किन्तु आजकल परिवारों में

बहुत विविधता आ गयी है जैसे संयुक्त परिवार, विस्तारित परिवार, एकाकी परिवार तथा एकल अभिवावाक परिवार।

बच्चे के सामाजीकरण में परिवार की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें बच्चा समाज के सामाजिक तथा सांस्कृतिक मानदंडों, भाषा तथा रीति रिवाज के सम्बन्ध में सीखता है जिससे कि वह भी समाज का हिस्सा बन सके। सामाजीकरण द्वारा बच्चा यह सीखता है कि किस प्रकार की परिस्थिति में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

हालाँकि बच्चा सबसे अधिक अपनी माँ से जुड़ा होता है किन्तु परिवार के अन्य सदस्य जैसे पिता, दादा दादी तथा भाई बहन आदि भी बच्चे के सामाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बच्चे के भाई बहन उसके खेलने के साथी ही नहीं होते हैं अपितु उसे समय समय पर भावनात्मक सहारा भी प्रदान करते हैं (चित्र 13.2)।

चित्र 13.3 एक बच्चा अपनी बड़ी बहन के साथ

इन सबके अतिरिक्त बच्चे के सामाजीकरण पर बच्चे के लिए लागू परवरिश शैली का भी प्रभाव पड़ता है। ये परवरिश शैलियाँ निम्न प्रकार हैं:

1. सत्तावादी परवरिश

इस प्रकार की परवरिश में माता-पिता बच्चे के साथ बहुत सख्ती से पेश आते हैं तथा बच्चे को स्वयं को प्रकट करने कि बहुत स्वतंत्रता नहीं होती है। उससे आज्ञाकारी बने रहने की आशा की जाती है और ऐसा न होने पर बच्चे को दंड भी दिया जाता है। इस प्रकार की परवरिश प्राप्त बच्चा दुखी, ड़रा हुआ तथा निम्न आत्म सम्मान वाला हो जाता है जिससे उसका सामाजिक विकास बहुत हद तक

प्रभावित हो जाता है। लड़कों के मामले में इस प्रकार की परवरिश से वह अति आक्रामक हो जाते हैं।

2. प्रजातांत्रिक परवरिश

परवरिश की यह शैली सबसे सफल शैली है। इसमें माता-पिता बच्चे को बहुत प्यार दुलार से रखते हैं तथा बच्चे को स्वयं को प्रकट करने की स्वतंत्रता होती है। इससे बच्चा स्वतंत्र बनता है तथा नये नये कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित होता है। इस शैली में माता-पिता बच्चे से गलती हो जाने पर दंड देने के स्थान पर उसे समझाकर उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार की परवरिश प्राप्त बच्चे अच्छे आत्म सम्मान युक्त, अच्छे आत्म नियंत्रण वाले तथा सामान्यतया कार्य में अच्छा प्रदर्शन करने वाले होते हैं।

3. अनुज्ञाप्रद या अनुमतिपूर्ण परवरिश

इस प्रकार की परवरिश में माता-पिता बच्चे को उसके मन का हर कार्य करने की अनुमति देते हैं तथा माता-पिता का बच्चे पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। बच्चा अपनी इच्छानुसार जो चाहे वो खा सकता है जितना चाहे उतना टी.वी. देख सकता है फिर चाहे उससे बच्चे को नुकसान ही क्यों न हो जाए। इस प्रकार की परवरिश से बच्चा कम आत्म नियंत्रण वाला हो जाता है, उसे किसी भी कार्य को करने में कठिनाई होती है तथा बच्चे को दोस्त बनाने में भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

4. लापरवाह परवरिश

इसमें माता-पिता बच्चे की जिंदगी के किसी फैसले में सम्मिलित नहीं होते हैं तथा बच्चे के प्रति बहुत चिंतित भी नहीं होते हैं। चाहे बच्चा कुछ सही करे या गलत किन्तु लापरवाह माता-पिता की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। ऐसी परवरिश के बच्चों में अक्सर आत्म सम्मान की कमी, आत्म नियंत्रण की कमी तथा मित्र बनाने में कठिनाई जैसी समस्याएं दिखायी देती हैं।

13.7.3 दोस्त एवं खेल

पूर्व बाल्यावस्था के दौरान बच्चा अपने साथियों के साथ खेलना सबसे अधिक पसंद करता है। मुख्य रूप से जब वह शिशु विद्यालय जाता है उस समय वह नये दोस्त बनाने में बहुत दिलचस्पी लेता है। माता-पिता या शिक्षक के साथ बच्चा अधीनस्थ के रूप में रहता है जबकि बच्चे का अपने दोस्तों के साथ बराबरी का रिश्ता बनता है। इस प्रकार एक एक दूसरे के साथ खेलते खेलते बच्चे अच्छे दोस्त बन जाते हैं।

खेल से बच्चे के दोस्त तो बनते ही हैं इसके साथ-साथ बच्चा सामाजिकता भी सीखता है। उसे मनोभावों की समझ हो जाती है तथा वह अपने मनोभावों को प्रकट करना भी सीख लेता है। इस सबके अतिरिक्त बच्चे को खेलने में बहुत आनंद आता है।

बच्चे को निम्न प्रकार के खेलों में सम्मिलित किया जा सकता है:

- **स्वतंत्र या खुला खेल:** इस खेल में बच्चा चारों ओर देखता रहता है तथा उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं होता है।
- **एकाकी खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा अकेले खेल सकता है तथा उसे किसी साथी की आवश्यकता नहीं होती है।
- **दर्शक खेल:** इसमें बच्चा दूसरे बच्चों को खेलते हुए देखता है किन्तु खेल में भाग नहीं लेता है।
- **समानांतर खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा दूसरे बच्चों के साथ-साथ खेलता है किन्तु उनकी आपस में कोई बातचीत नहीं होती है। कभी-कभी तो वो एक ही प्रकार की वस्तु से खेल रहे होते हैं तथा एक दूसरे के बारे में जानते भी हैं लेकिन आपस में बात नहीं करते हैं।
- **संबद्ध खेल:** इसमें बच्चे एक दूसरे के आस पास खेल रहे होते हैं तथा आपस में सामान भी बाँट रहे होते हैं लेकिन साथ में नहीं खेलते हैं।
- **सहयोगी खेल:** इस खेल में बच्चे एक समूह में खेलते हैं तथा उनके खेल के नियम सभी के लिए सामान होते हैं और वे एक सामान लक्ष्य के लिए खेलते हैं।

बच्चे की आयु के अनुसार उसे उपरोक्त खेल खिलाए जाते हैं जो भिन्न-भिन्न आयु वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

13.8 पूर्व बाल्यावस्था के दौरान सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को प्रोत्साहित करने के तरीके

किसी भी विकास के दौरान सभी बच्चों को शुरुआत में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसा ही पूर्व बाल्यावस्था के बच्चों के साथ भी होता है। जब उनका सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास हो रहा होता है तो वे नियमों को तोड़ सकते हैं, भाई बहनों से लड़ते हैं, किसी भी ऐसी वस्तु को पाना चाहते हैं जो उनके लिए लाभप्रद नहीं है तथा अपने गुस्से तथा अपनी भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। इस प्रकार की स्थिति में माता-पिता को चाहिए कि वो इस समय बच्चे पर अधिक ध्यान दें तथा निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखें:

- अभिभावकों को बच्चे की आवश्यकता, उसकी रुचि, स्वभाव आदि को समझने का प्रयास करना चाहिए।
- प्रत्येक बच्चे के व्यक्तित्व तथा संस्कृति का आदर करना चाहिए।

- एक ऐसा वातावरण बनाना चाहिए जहाँ बच्चा खुद को भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करे। बच्चे को अपनी भावनाओं तथा विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित भी करना चाहिए।
- बच्चे को विभिन्न प्रकार के खेल खेलने का अवसर देना चाहिए।
- बच्चे की स्वायत्तता तथा नेतृत्व क्षमता को बढ़ावा देना चाहिए।
- बच्चे को कुछ जिम्मेदारी वाले कार्य दें, जैसे पेड़ों को पानी देना या कक्षा का रजिस्टर भरना आदि।
- कक्षा में सभी बच्चों से एक समान व्यवहार करना चाहिए उनमें जाति, लिंग या अन्य किसी वजह से भेदभाव नहीं करना चाहिए।
- जब आप बच्चों के किसी समूह से बात कर रहे हैं तो ये ध्यान रखें कि सभी बच्चों पर आप समान ध्यान दे रहे हों।
- बच्चे की देखरेख करने वाला व्यक्ति ही बच्चे का प्रेरणा स्त्रोत होता है अत: कोई भी कार्य करने से पहले ये ध्यान रखें कि बच्चा हर कार्य में आपका अनुसरण कर रहा होता है।
- बच्चे को किसी कार्य को करने का केवल आदेश ना दें बल्कि उसे यह भी समझाएं कि आप उससे यह कार्य क्यों करवाना चाहते हैं।
- एक बच्चे की दूसरे बच्चे से तुलना कभी ना करें, इससे बच्चे के आत्म सम्मान में कमी होती है तथा उसमें हीनता की भावना आती है।
- बच्चे को दंड के नाम पर उसके साथ मार पीट ना करें या कोई अन्य कठोर सजा ना दें। इससे बच्चे का विकास अवरोधित हो सकता है। बच्चे को प्यार से समझाने का प्रयास करें या थोड़ा बहुत डाँटकर समझाएं।
- बच्चे से कोई ऐसा वादा ना करें जिसे आप पूरा ना कर सकें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. बच्चे के पालन पोषण की विभिन्न विधियों का वर्णन करें। इन विधियों में से बच्चे के विकास के लिए सबसे उपयुक्त विधि कौन सी है, समझाइये क्यों?

   ---

2. संबद्ध और सहयोगी खेलों के मध्य अंतर बताइये।

---

3. पूर्व बाल्यावस्था के दौरान सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बच्चे की देखरेख करने वाले व्यक्ति को कौन सी बातें ध्यान में रखनी चाहिए?

13.9 सारांश

इस इकाई में हमने यह पढ़ा कि बच्चे में स्वधारणा का विकास किस प्रकार होता है। बच्चे में लड़का या लड़की वाली भावना किस समय तथा किस प्रकार पैदा होती है या बच्चे में जाति की अवधारणा किस प्रकार विकसित होती है। इसके अतिरिक्त हमने एरिक एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्दांत भी पढ़ा जिसमें यह बताया गया है कि बच्चे में विभिन्न आयु वर्गों में किस प्रकार सामाजिक तथा मानसिक विकास होता है। पूर्व बाल्यावस्था में यह स्वायत्तता तथा नेतृत्व क्षमता के विकास के रूप में होता है। अंत में हमने उन बिंदुओं को पढ़ा जो बच्चे की देखरेख करने वाले या अध्यापक या अभिभावक को ध्यान में रखने चाहिए जिससे कि बच्चे का उचित विकास हो सके। आइये एक बार पूर्व बाल्यावस्था में बच्चे की प्रमुख उपलब्धियों को ध्यान से पढ़ें।

आयु	**मनोसामाजिक उपलब्धियाँ**
2 से 4 वर्ष	• बच्चे को अपने शरीर का ज्ञान हो जाता है। बच्चा अपने प्रत्यक्ष गुणों का वर्गीकरण कर सकता है। • बच्चा खुद को एक लड़के या लड़की के रूप में पहचान सकता है। • बच्चा अच्छे या बुरे की पहचान कर सकता है। • बच्चे में स्वायत्तता की भावना विकसित होने लगती है। • बच्चे को दूसरे व्यक्ति की परेशानियों का एहसास होने लगता है। • बच्चा अपने सामान के प्रति अधिकारात्मकता दिखाने लगता है।
4 से 6 वर्ष	• बच्चे में जाति स्थायित्व आ जाता है।

	• बच्चा कई संवेगों का कारण समझने लगता है। • बच्चे में नेतृत्व क्षमता का विकास हो जाता है। • बच्चे में समूह में खेलने तथा कार्य करने का गुण आ जाता है। • दूसरों की भावनाओं के प्रति बहुत जागरुक हो जाता है।

13.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **डर:** किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के प्रति मन में होने वाला तर्कहीन भय जिससे वास्तव में कोई खतरा नहीं होता है।
- **स्वभाव:** व्यक्तित्व की वो विशेषताएं या स्वरूप जिनके साथ व्यक्ति जन्म लेता है।
- **संवेगों का विनियमन:** अपने संवेगों या अपनी भावनाओं पर नियंत्रण।

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही या गलत बताइये।
   a) सही
   b) गलत
   c) गलत
   d) सही
2. 13.5.1 भाग देखें।
3. 13.6.1 भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. 13.7.2 भाग देखें।
2. 13.7.3 भाग देखें।
3. 13.8 भाग देखें।

13.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Berk, L.E. (2008). Exploring lifespan development. Pearson Education, Inc.: Boston.

2. Santrock, J.W. (2011). Child Development (13th ed.). McGraw-Hill: New York.

3. Kapoor, S. & Singh, A. "Development in Early Childhood". In Foundations of Human Development: A life Span Approach (2015). Edited by Asha Singh. Orient Blackswan Pvt. Ltd.: New Delhi